
दूसरी दुनिया का यथार्थ

दूसरी दुनिया का यथार्थ

संपादक

रमणिका गुप्ता

शिल्पायन

पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स

दिल्ली-110032

ISBN : 978-93-81610-06-0

© रमणिका फाउण्डेशन
प्रकाशक

शिल्पायन

पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स

10295 लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क

शाहदरा, दिल्ली-110032

दूरभाष : 011-22326078

email: shilpayan2005@yahoo.co.in

मूल्य : 400.00

संस्करण : 2012

आवरण-सज्जा

उमेश शर्मा

शब्द-संयोजन

उमेश लेज़र प्रिंट्स, दिल्ली

मुद्रक

रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-32

DUSRI DUNIYA KA YATHARTH
Edited by Ramnika Gupta

भूमिका

हिन्दी में अभी दलित साहित्य की अवधारणा का सवाल ही उठाया जा रहा है। यह एक साजिश और दुष्क्र है। आखिर इस मसले को उलझाया क्यों जा रहा है? सीधा उत्तर है कि नदी है, तो पानी है, फिर चाहे वह नदी महज बारिश में ही नदी क्यों न दिखाई देती हो। उसी तरह अगर देश में दलित हैं तो दलित साहित्य भी है, फिर चाहे उसे 'साहित्य' की कसौटी पर कस कर खारिज किया जाए या मंजूर किया जाए।

यानी यह भी अकाट्य सत्य है कि हिन्दी दलित साहित्य मौजूद है और इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता कि सदियों से जो प्रताड़ित, तिरस्कृत, शोषित और बहिष्कृत रहे हैं, यह साहित्य उनका है। उन्हीं के द्वारा लिखित है और इस साहित्य का मूल स्वर प्रतिरोधी, प्रतिरोषी और प्रतिवादी है।

मैं मराठी दलित लेखकों से निकट रूप से सम्बद्ध रहा, क्योंकि वे भारतीय भाषाओं के समांतर साहित्य आन्दोलन में लगातार शिरकत करते रहे हैं और सन् 1987 में मराठी दलित साहित्य सम्मेलन, औरंगाबाद अधिवेशन की अध्यक्षता करने का सौभाग्य भी मुझे मिला है, इसलिए अपने अनुभव से मैं कह सकता हूँ कि मराठी साहित्य में भी अपनी रचना की अस्मिता और पहचान के लिए दलित साहित्य को एक लम्बी जद्दोजहद करनी पड़ी है। यही स्थिति आज हिन्दी में भी मौजूद है। इसका मूल कारण यही है कि भारत की हर भाषा का साहित्य कुलीनताग्रस्त है, इसलिए जब भी किसी भाषा में दलित-साहित्य का सवाल उठता है, तो उसे दिशाभ्रमित करने और उसे नकारने हेतु सबसे पहले उसकी अवधारणा पर प्रश्नचिह्न लगाया जाता है। और साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र को तय करने वाले कुलीन आलोचक और लेखक तब सामन्ती दृष्टि का परिचय देते हुए मनुवादी साहित्य संहिता के तहत रचना के प्रामाणिक यथार्थ को बरतरफ करते हुए रचना के रचनात्मक होने का सवाल उठा देते हैं। वे साहित्य की शुचिता के संरक्षण-मोह से ग्रस्त होकर दलित-लेखन को खुलकर नकार तो नहीं पाते, पर उसकी अस्मिता और अस्तित्व को मानवीय मूल्यों की सरहदों के पार ले जाकर साहित्यिक मान-मूल्यों की कसौटी पर कसना शुरू कर देते हैं। यानी वे मनुष्य के यथार्थ और उसकी प्रताड़ित आत्मा का अपमान करके 'साहित्य की आत्मा' तलाशने लगते हैं।

यही हिन्दी में हो रहा है। मूलतः भारतीय मानस परिवर्तन-विरोधी नहीं है, पर भारतीय मानस सक्रिय होने में देर लगाता है। यह 'देरी' ही यथास्थितिवाद को जन्म देती है और हमारे साहित्य के कुलीन सामन्तों के काम आती है।

दलित साहित्य को इसी देर से सक्रिय होने वाली मानसिकता की आड़ लेकर नकारा जा रहा है और इस विवाद में प्रेमचन्द को भी लथेड़ा जा रहा है। प्रेमचन्द दलित लेखक नहीं हैं, ये दलित लेखन के पुरोधा या पोषक भी नहीं हैं यहाँ तक कि हिन्दी कहानी की नई कहानी की वर्तमान पीढ़ी या परवर्ती पीढ़ियाँ भी हिन्दी दलित लेखन की भूमिका तैयार नहीं करतीं। वे केवल सहानुभूति की भूमिका निभाती हैं।

प्रेमचन्द से नई कहानी और परवर्ती कहानी तक का एक ही सूत्र दलित लेखन से जुड़ा हुआ है वह है यथार्थ और प्रामाणिक अनुभव का सूत्र! इस सूत्र की भी परिव्याप्ति और परिभाषा वह नहीं है, जो पिछली कहानी में थी। दलित लेखन की तीखी सामाजिक दृष्टि उत्तर यथार्थवाद और उत्तर आधुनिकतावाद से बहुत अलग उत्तर-इतिहासवादी है, जो मौजूदा इतिहास का संशोधन नहीं करती, बल्कि खुद एक नये इतिहास का सूत्रपात कर रही है! दलित लेखन की यह उत्तर इतिहासवादी दृष्टि सदियों के इतिहास से उत्तर भी नहीं माँगती, वह प्रतिवाद की तथाकथित सहनशीलता और संयम की नपुंसकता से आहत और त्रस्त है, इसीलिए वह सम्यक् परिवर्तन की शक्ति और ऊर्जा से प्लावित है! शक्ति के साथ उत्तेजना और ऊर्जा के साथ आक्रोश की ऊष्मा कोई अनहोनी बात नहीं है! बहरहाल...

इस कथा संकलन की कहानियों को वकालत और सहानुभूति की जरूरत नहीं है। यह कहानियाँ सदियों के संताप की कहानियाँ हैं। यह 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ को, पच्चीस चौका सौ' बनाने वाली कहानियाँ हैं। अगर इस संकलन की दस कहानियाँ ही उठा ली जाएँ, तो यह दलित साहित्य के सघन संताप को साहित्य के दर्जे तक भी पहुँचाती हैं और 'युद्धरत आम आदमी' की प्रचण्ड जिजीविषा को उत्कीर्ण भी करती हैं।

राणा प्रताप की कहानी 'अन्ततः' उसी उत्तर-इतिहासवाद की कहानी है, जो लोककथा की सहजता से नव-मार्क्सवाद को भारतीय सन्दर्भ में विश्लेषित करती है। रमणिका गुप्ता की कहानी 'बहू जुठाई', मोहनदास नैमिशराय की 'अपना गाँव', सूरजपाल की 'साजिश', प्रेमकुमार मणि की 'जुगाड़', ओमप्रकाश बाल्मीकि की 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' एक सामाजिक संताप और सम्यक् परिवर्तनवादी शक्ति से भरपूर हैं। मोहनदास नैमिशराय और रमणिका गुप्ता की कहानियाँ तो कहानियाँ नहीं, वे सदियों के संताप का दस्तावेज हैं।

इसी के साथ परदेशी राम वर्मा की 'फाँसी', जय प्रकाश कर्दम की 'चमार' और प्रह्लाद चन्द्र दास की 'लटकी हुई शर्त' और गौरी शंकर नागदंश की 'जंगल की आग' उस आदमी की कहानियाँ हैं, जो सदियों के सफर से गुजरते हुए आज तक की दारुण

स्थितियों को कुलीन समाज के परिदृश्य में नहीं, अपने समय के सन्दर्भ में सम्प्रेषित करती हैं।

दलित साहित्य की कहानियाँ हमारे मानस संसार को बदल रही हैं और जड़-संस्कृति तथा न्याय-अन्याय की परिभाषा को भी बदल रही हैं।

दलित साहित्य की दुनिया वह है, जो साहित्य की स्वीकृत रचनावादी दुनिया नहीं है। इसलिए इस नई शापित, प्रताड़ित और संतापित दुनिया को पहचानना और इसके रचना मूल्यों को समझना हमारे स्थापित कुलीन सामन्तवादी साहित्य-पुरुषों के लिए एक चुनौती बन गई है!

सोचिए श्योराज सिंह 'बेचैन' जैसा दलित विचारक आज इतिहास से क्यों अलग होना चाहता है? सिर्फ इसलिए कि वह विचारक इतिहास को बदलना ही नहीं चाहता बल्कि नया इतिहास लिखना चाहता है।

इस संकलन की यह सारी कहानियाँ जिनमें उत्तेजना और रचनात्मकहीनता के दोष-दंश भी हैं वे अपनी आवाज में गैर-रचनात्मक होते हुए भी प्रताड़ित मनुष्य की नियति की नई रचना करना चाहती हैं।

इस दूसरी दुनिया के सत्य और यथार्थ को देखना एक अनिवार्यता है। यदि इसे नहीं देखा गया तो साहित्य निर्वासित और प्रताड़ित मनुष्य के जीवन का हिस्सा नहीं रह जाएगा। दलित समाज को आज राजनीति से ज्यादा साहित्यिक सहकारिता की जरूरत है और अपनी अस्मिता को स्थापित करके इस दुनिया को मानव शुभ के लिए बदलने की जरूरत है।

कमलेश्वर

दूसरी दुनिया का यथार्थ

इतने दलित लेखकों की कहानियों का हिन्दी में यह प्रथम संकलन है। एक साथ इतनी कहानियाँ जुटाना काफी समय-लेवा और मशक्कत का काम था।

चूँकि अपने कार्य क्षेत्र में मैं स्वयं इन कहानियों के पात्रों जैसे सचमुच के पात्रों के बीच में कार्यरत हूँ, इसलिए ये कहानियाँ मुझे बिल्कुल आस-पास की, आम आदमी से जुड़ीं, अपनी-सी लगेंगी। ये ऐसे लोगों की कहानियाँ हैं, जो गरीबी के कारण तो सताए ही जाते हैं बल्कि इसलिए भी तिरस्कृत, बहिष्कृत और उपेक्षित किए जाते हैं क्योंकि वे किन्हीं खास जातियों में जन्मे हैं।

मजदूर आन्दोलन, वह भी कोयला खदानों में काम करने वाले सबसे नीचे तबके के कोयला काटने वाले मलकट्टों और कामिनों के आन्दोलन से जुड़े रहने के कारण मैं उनके दैनन्दिन कार्यों में उनके साथ रहकर भागीदारी करती रही हूँ, जो प्रायः अनुसूचित जातियों व जनजातियों तथा अत्यन्त पिछड़ी जातियों के मजदूर होते हैं। इसलिए जब उनके अपने ही मजदूर साथी धार्मिक अनुष्ठानों एवं भोज-भातों में उनसे भेदभाव बरतते हैं, तो उनके भीतर पनपती हीन-भावना को झेलना ही, मैं सिर्फ देखती नहीं रही, बल्कि उसे समाप्त न कर पाने की विवशता-अक्षमता को भी सहती रही हूँ। बड़ा हुआ वेतन, शिक्षा, अधिकार व हक हासिल करने का सामूहिक सुख भी उन्हें सामाजिक स्तर पर आपसी बराबरी नहीं दिला सका; हाँ, इधर जब से इनकी राजनैतिक हिस्सेदारी और आरक्षण की बात चली है, तब से तनाव के साथ-साथ शोषक जातियों में एक भय जरूर व्यापा है और शोषित जातियों में आत्मविश्वास जगने लगा है। पर यह जागृति अभी बहुत ही कम मात्रा में, बहुत ही कम लोगों में, आई है। इसमें भटकाव का भी खतरा है। न्याय और समानता की जगह बदले की भावना का भी अन्देशा है। उच्च जातियों की कुप्रथाओं की नकल करने का खतरा तो और भी बढ़ गया है। उच्च जातियों की बराबरी का अर्थ लोग तिलक-दहेज माँगना, औरतों पर बंदिशें लगाना एवं अन्तर्जातीय विवाह का विरोध करना, जिसके कारण हेन्देगढ़ जैसा घृणित कांड हजारीबाग में घटा मानने लगे हैं।

लेकिन यह जागृति ऊँट के मुँह में जीरे के बराबर है। अभी करोड़ों लोग भाग्य

की, कर्मों के फल की, पूर्व जन्म के पापों की दुहाई देकर अपमानित और तिरस्कृत होने पर भी सन्तुष्ट होकर जी रहे हैं, उस मजदूर जमात के लोग भी जो अपने आर्थिक हकों की लड़ाई के लिए कन्धे से कन्धा मिला कर मालिक के खिलाफ अड़ जाते हैं सामाजिक स्तर पर, विशेषकर जातीय सन्दर्भ में कहीं दबा-दबा, कटा-कटा, हीन-हीन, घुटा-घुटा महसूस कर, चुप रह जाते हैं।

नई पीढ़ी अवश्य अब राजनीति में, नौकरियों में, भागीदारी के नारे लेकर अति उत्साहित होकर जुटने लगी है पर उसकी अपनी जाति में जाति का मनुवादी बँटवारा फिर उनकी एकता में कहीं सँध मार देता है और अधिकारी अभिजात वर्ग उन्हें मिलने वाली सुविधाओं से वंचित रखने में कामयाब हो जाता है।

‘दूसरी दुनिया का यथार्थ’ उनका यथार्थ है जो मनुष्य-योनि नहीं प्रत्युत पशु-योनि के काबिल समझे जाते रहे हैं और अभी भी लगभग वैसी ही स्थिति में है। इस धारणा पर शास्त्रों की मोहर तो लगी ही है, इसे स्वयं वह जमात भी मन से स्वीकारे हुए है। इस सदी में एक तरफ डा. अम्बेडकर द्वारा इस धारणा को तोड़कर उनकी हीन-भावना को समाप्त करने की चेष्टा शुरू हुई, तो दूसरी तरफ वामपंथी जनवादी शक्तियों द्वारा उनके वर्ग-संघर्ष की धार पैनी कर, उन्हें हकों का अहसास कराया गया। स्वतंत्रता आंदोलन में भी गाँधी के ‘अछूतोद्धार’ अभियान ने इनकी तरफ पहली बार ध्यान खींचा। लेकिन वह अछूतोद्धार इन्हें वर्ण व्यवस्था में रखते हुए इनकी तरफदारी करता था। उनके लिए बराबरी के दर्जे की बात नहीं, बल्कि दया की, सहानुभूति की याचना करता था। उनका मुद्दा था सहानुभूति और दया दलितों का हक नहीं।

अम्बेडकर और वामपंथी विचारधारा वास्तव में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। लेकिन दुर्भाग्यवश ये दोनों संघर्ष साथ-साथ चलने की बजाय एक दूसरे की खिलाफत तक करते देखे गए। अब इधर आकर वामपंथियों ने भी बाबा साहब के इस विश्लेषण को स्वीकारा है कि दलित की प्रतिष्ठा-सम्मान की लड़ाई लड़ना, भारतीय परिस्थितियों में जरूरी है, केवल आर्थिक लड़ाई से इनके सामाजिक-स्तर पर कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं है।

ये सामाजिक बदलाव को लाने का आह्वान करती कहानियाँ हैं। इन कहानियों में आक्रोश है, आग है, लावा है, गुस्सा है तो साथ-साथ संवेदना, मानवीयता और सब्र भी है। न्याय की उत्कट लालसा है, समानता की तीव्र ललक है, भाईचारे की भावना है, तो आदर पाने की बलवती इच्छा भी है। भले कुछ एक कहानियों में बदले की भावना है जैसे ‘शर्त’ कहानी में। लेकिन लेखक ने उसे ‘चमत्कार’ की शैली में बदलकर प्राकृतिक न्याय का रूप दे दिया है। इससे ‘बदले’ की बात हलकी पड़ गई। दलित साहित्यकार शोषक का स्थान लेने की कल्पना नहीं करते। ‘शर्त’ में ऐसी एक शर्त रखी गई जो उचित नहीं है और न हो सकती है। लेकिन यह शर्त कौन रख रहा

है इसे भी देखना होगा। यह एक ऐसा व्यक्ति रख रहा है जो समाज में ऐसी ही व्यवस्था में जीता है, जहाँ हर रोज ऐसी ही शर्तों को सक्षम लोगों द्वारा बलजबरी पूरा किये जाते हुए देखा जाता है। पंजाब में एक घटना ठीक ऐसी ही घटी थी, जब सचमुच गाँववालों ने लगभग सर्वसम्मत फैसला दिया था कि जिसके पुत्र ने बलात्कार किया है उसकी निर्दोष बेटी के साथ, बलात्कारित लड़की का भाई बलात्कार करे। यह भारतीय सवर्ण-मानसिकता का निर्णय था, जिससे गाँव के सवर्ण-असवर्ण दोनों सहमत थे।

सी.पी.एम. के कार्यकर्ताओं ने इसका कड़ा विरोध किया तब ये फैसला रुका। महिलाओं के सन्दर्भ में ऐसी बर्बर मानसिकता भारत में ही नहीं दुनिया भर में व्याप्त है। इसलिए कहीं दंगे-फसाद होते हैं, तो वहीं अड़ोसी-पड़ोसी, जो एक दूसरे की बहन-बेटियों को बेटी, बहन, दीदी कहते नहीं थकते, उनकी इज्जत लूटने में आगे रहते हैं। आखिर यह दरिन्दगी आई कहाँ से? क्या ये धार्मिक कट्टरता की देन नहीं है? चाहे हिन्दुत्व हो या इस्लाम या ईसाई, सभी धर्मों में ऐसा होता रहा है।

इसलिए ऐसी 'शर्त' जो उस बलात्कारित लड़की का बाप रखता है, वह दलित होने के नाते नहीं बल्कि उसी मनुवादी, धार्मिक कठमुल्लेपन के नाते रखता है, जिसमें औरत को दलित से भी कम दर्जा दिया गया है। वहाँ विश्वव्यापी पुरुष दंभ भी प्रभावी है। पुरुष दलित हो या अभिजात-सवर्ण औरत के प्रति दोनों का रवैया एक ही जैसा है। चूँकि दोनों का समाज पितृ-प्रधान है, जिसमें औरत की इज्जत लूट कर दुश्मन से बदला लिया जाता है। दोषी पुरुष दण्ड नहीं पाता दण्ड उसकी औरतें भुगतती हैं।

दरअसल जब सदियों से संतापित व्यक्ति अभिव्यक्ति की शक्ति पाता है या संगठन का बल महसूस करता है, तो उसकी पहली प्रतिक्रिया उस जुल्म के खिलाफ गुस्से का इजहार ही हो सकती है। बदले की भावना भी सम्भव है घृणा होना भी स्वाभाविक या एक अनिवार्य प्रतिक्रिया हो सकती है। धीरे-धीरे गुस्सा कम होता है, तो सन्तुलन आता है और न्याय की लड़ाई व्यक्ति से हटकर व्यापक और सामूहिक बनने लगती है। विचार का विकास हो या संघर्ष का, दोनों की विकास-प्रक्रिया समान ही होती है। कहानीकार हो या कवि या नाटककार अथवा साहित्य की किसी भी विधा का लेखक सभी को इस विकास-प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। इसलिए इस पुस्तक की कहानियों में विकास-प्रक्रिया के विभिन्न स्तर, रूप और रस मिलेंगे। गुस्से से लेकर घृणा से गुजरता हुआ, बदले की भावना तक पहुँचा है लेखक, लेकिन उचित-अनुचित का ध्यान उसे तब भी रहता है। इसलिए 'शर्त' में 'चमत्कार' द्वारा बदला लेता है लेखक। भले ही यह स्वाभाविक न लगे लेकिन लेखक की मंशा सचमुच में बदला लेने की नहीं लगती अन्यथा वह अन्त को चमत्कार से समाप्त नहीं करता। ऐसे यह चमत्कार भी उसी परम्परावादी सोच का नतीजा है, जहाँ जो नहीं हो सकता हो, या

किए जाने लायक न हो, उसे चमत्कार के रूप में दिखा दिया जाता है। इससे इस कहानी का अन्त कुछ हलका जरूर हो गया है। दूसरी तरफ इन कहानियों में संगठित होकर गलीज बर्बर परम्पराएँ हों या जमींदार व पुलिस का जुल्म या अधिकारियों का पक्षपातपूर्ण साजिश भरा रुख सब के खिलाफ लड़ने का संकल्प है। कहीं-कहीं तो पात्र स्वयं भी दोषी को दण्डित करने की क्षमता हासिल करने के स्तर तक पहुँच गए हैं।

सवर्ण साहित्यकारों या शास्त्र रचयिताओं ने अपने साहित्य और शास्त्रों तक में एक साजिश के तहत विकृत ढंग की संस्कृति की संहिता का निर्माण कर, दलितों-पिछड़ों को पढ़ने-लिखने से वंचित कर दिया। उन्हें गरीब रखने से लेकर भेदभाव-पूर्ण ढंग से दण्डित करने के, पशुवत जीवन जीने के विधान रचे और उस नारकीय जीवन को सच्चा बताकर, उनकी संवेदना को कुन्द कर दिया या नष्ट कर दिया। उन्हें धार्मिक अनुष्ठानों से बहिष्कृत तो कर ही दिया, साथ ही धार्मिक कथाओं में चमत्कार और बे-सिर-पैर के अन्धविश्वासों पर आधारित कथाएँ गढ़कर, उन्हें भयभीत भी किया। लेकिन उसी प्रकार का साहित्य दलित साहित्यकार लिखना नहीं चाहते। न वे लिख रहे हैं। वे तो केवल उन झूठों को जिन्हें गौरवान्वित कर उनपर थोपा गया है नकार रहे हैं। वे कोई मिथक भी नहीं गढ़ रहे। वे तो भाग्य, भगवान, आस्था, अवतार, चमत्कार, अन्धविश्वास, रूढ़ि, विकृत-परम्परा, हिन्दुत्ववाद, मनुवाद को नकार रहे हैं। कुछ लोगों के ऐश्वर्य के लिए बनी संस्कृति के बदले, वे समानता, भाईचारा, आजादी की न्यायपरक सामाजिक व्यवस्था को लाना चाहते हैं, जिसमें जाति का अस्तित्व ही न हो। पर ये सब तो सवर्णों को ही करना होगा, तब सब मिटेगा, चूँकि जाति के जन्मदाता-पोषक-रक्षक वही हैं। दलित साहित्यकार तो बाबा साहब के 'शिक्षा-संघर्ष और संगठन' एवं 'अप्पदीपो भवः' के सिद्धांत पर आधारित रचनाएँ लिख रहे हैं। आत्मकथाएँ, जो जीवन के अत्यन्त नजदीक और सबसे अधिक विश्वसनीय होती हैं, लिखकर वे अपनी शर्म, अपनी पीड़ा को समाज से जोड़कर, उन्हें मिटाने के प्रयास में लगे हैं। वे इस कोशिश में हैं कि वह उदार सवर्ण-वर्ग भी न्याय की लड़ाई में उनके साथ आए, जिसके पूर्वजों ने ये गुनाह किए। कम से कम वह वर्ग अपने पुरखों के गुनाहों को स्वीकार कर एक साझे भविष्य का निर्माण तो करे।

लेखक के गाली के औचित्य को स्वीकारा नहीं जा सकता। लेकिन पात्रों के स्तर, परिस्थिति की यदि माँग हो, तो गाली भी अनुचित नहीं होगी। सवर्णों को चिढ़ाने के लिए गाली दिया जाना गलत है लेकिन कथा के प्रसंग में उसकी जरूरत हो, तो वह स्वीकार्य हो सकती है। पाश जैसे प्रगतिशील जनवादी कवि की कविताओं में भी गालियाँ हैं, तो ओमप्रकाश बाल्मीकि यदि हजारों वर्षों के शोषण को याद कर जातिप्रथा को गाली दें, तो प्रश्न क्यों उठाया जाता है?

ऐसे दो गलतियाँ मिलकर एक सही कदम नहीं हो सकतीं, लेकिन जिसकी जाति को ही गाली वाचक बना दिया गया हो अथवा जिसे युगों से गाली से ही पुकारा जाता रहा हो, यदि वह आज कुछ बोलता है गाली ही देकर सही, तो बुरा क्यों लगता है? सदियों से वह सवर्णों की इस गाली देने की बुरी आदत को सहता रहा है। आज एक दशक भी नहीं बीता, अब जब दलित गाली देने लगे हैं, तो कितना अखरता है? कम से कम यह सोचकर भी सवर्णों को उन्हें अब गाली देना बन्द कर देना चाहिए और उनकी उपेक्षा करना भी बन्द कर देना चाहिए। समय किसी का इन्तजार नहीं किया करता। दलित के पास संख्या बल है ही, बुद्धि बल भी वे जुटा रहे हैं। तब अल्पसंख्यक अभिजात वर्ग को उस वर्ग के बल पर मिलने वाली सुविधाएँ छिन जाएँगी यह सोचकर भी सवर्णों को समय रहते अपना रवैया बदलना चाहिए।

इसलिए दलित साहित्य की कहानी हो या कविता, नाटक या लेख, उसे जानने के लिए सवर्णों को नई दृष्टि अपनानी होगी। ये बौखलाए हुए आदमी की कहानियाँ नहीं हैं, उस सताए हुए समाज की कहानियाँ हैं, जो मनुष्यता का दावा करना सीख गया है और बराबरी का हक माँग रहा है। दूसरी दुनिया के यथार्थ को वह अपनी नियति मानने के लिए तैयार नहीं है अब। वह मूलधारा में मनुष्यत्व में मानव श्रेणी में आने के लिए कटिबद्ध है। उसके लिए धर्म, भगवान, भाग्य, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, अन्धविश्वास, सब निरर्थक हैं। वह इन सबके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ है, चूंकि निषेध किए बिना इन्हें नष्ट करना सम्भव नहीं। इन्हें नष्ट किए बिना नये मूल्य बन नहीं सकते और न ही उनसे उसकी मुक्ति सम्भव है।

हमारी संस्कृति में बहुत कुछ अच्छाइयाँ हो सकती हैं हैं भी। लेकिन ये अच्छाइयाँ केवल एक अल्पसंख्यक वर्ग की संस्कृति के हितों तक सीमित थीं। उन्हीं की गौरव गाथाएँ थीं। वह संस्कृति पूरे समाज के हित के लिए नहीं थी। वे केवल अपनी और अपने वर्ग की सुविधाओं को बरकरार रखने के लिए त्याग, बलिदान और शौर्य का प्रदर्शन करते थे। जन-कल्याण उनकी अपनी जाति या समाज तक ही सीमित था। असंख्य लोग उनके दायरे से बाहर यूँ ही नहीं थे बल्कि एक साजिश के तहत वे बाहर रखे गए थे, ताकि वे इनकी सेवा करते रहें। ये असंख्य लोग दूसरी दुनिया के लोग थे, जिनकी दुनिया इन सवर्णों की दुनिया से भिन्न थी और सभी अधिकारों से वंचित। आज इसी 'दूसरी दुनिया का यथार्थ' हकीकत पहचान गया है। वह सब कुछ पुराने को, जो उनके विनाश का कारण था, जो सवर्णों के ऐश्वर्य का स्रोत था, जो अपनी कायरता और छल-कपट को भी गौरवान्वित करता था, इसलिए नष्ट कर देना चाहते हैं कि जब तक वह झूठ गौरवान्वित होता रहेगा, तब तक इनके मेहनतकश, देश-निर्माता, उत्पादककर्ता सच को, यथार्थ को, प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती।

जब तक ब्राह्मण मनुवाद के अनुसार ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय बाँहों से उत्पन्न

माने जाते रहेंगे तब तक शूद्रों को पाँव से उत्पन्न माना जाता रहेगा। इसलिए उस कारण को ही मिटाना होगा, जो इस धारणा का जन्मदाता है। धारणाएँ जल्दी नहीं बदलतीं। उनकी उत्पत्ति का स्रोत नष्ट कर उन्हें मारा जा सकता है। यानी कि वे उन शास्त्रों को जो इन्हें पशु कहते हैं को अविश्वसनीय बनाकर नष्ट किए बिना, वर्ण के कटघरे से दलितों को निजात दिलाना सम्भव नहीं है।

‘दूसरी दुनिया का यथार्थ’ की कहानियाँ सदियों के खिलाफ आवाज ही नहीं उठातीं बल्कि कुछ सवाल भी पूछती हैं। वे एक गौरवशाली समृद्ध कही जाने वाली संस्कृति की शोषणपरक, एकपक्षीय, अल्पसंख्यक वर्ग की सुख-सुविधा के लिए एक विशाल जनसमूह को ‘दास’ से भी नीचे, पशुवत जीवन में सुखी महसूस करवाने वाली षड्यंत्रकारी आचार-संहिता को नकारती हैं। ये कहानियाँ इस संहिता को बेनकाब करती हैं, तोड़ती हैं। समानता, भाईचारे और आजादी की नई संहिता बनाने की, अपने को मनुष्य मानने की, शिक्षित-संगठित होकर सामाजिक न्याय और बदलाव का झण्डा बुलन्द करने की ओर बढ़ती हैं ये कहानियाँ।

एक विशाल जनसमूह को जड़ और असंवेदनशील बना दिया गया अपने प्रति भी और जीवन की जरूरतों के प्रति भी। वह दूसरे जन्म की पिछले व अगले जन्म की ही सोच रहा है सदियों से। इस जन्म को तो वह प्रायश्चित मानकर जीता है। उसकी वेदना-पीड़ा उसके साथ किए गए अमानुषिक बर्बर व्यवहार, सबके प्रति सदियों से वह स्वयं असंवेदनशील रहा है। उन्हें नियति मानकर सहता रहा है। प्रेमचन्द का घीसू-माधव बना दिया गया है उसे। इन कहानियों में घीसू-माधव घीसू-माधव नहीं रहा वह माधो, राधो, राजू, मुकुन्द, सहदेव यादव, सिलिया, सुनीता, नत्थू, शान्ती, सुक्खू, रमिया, छमिया, हरिया, सम्पत, सुदीप, आदि के रूप में ही नहीं बल्कि एक पूरी जमात के रूप में उठ खड़ा हुआ है। सदियों से चली आ रही बहू-जुठाई की प्रथा हो या कर्ज में गलत हिसाब कर ठगने की, पुश्तैनी पेशों में शोषित रखने की साजिश हो या गाँव में जीने के रास्ते बन्द करने का षड्यंत्र अथवा जमींदारों और पुलिस का जुल्म वह अब घीसू-माधव की तरह कफन बेचकर दारू नहीं पी जाता वह इन सबके खिलाफ लड़ने को खड़ा हो जाता है।

इन कहानियों में सुदीप बचपन से पच्चीस चौका डेढ़ सौ ही सुनता आया था अपने पिता से। पढ़-लिखकर वह अपने पिता को समझाने में कामयाब हो जाता है कि पच्चीस चौका डेढ़ सौ नहीं होते सौ होते हैं। तब सदियों का विश्वास टूट कर कहता है ‘तेरे कीड़े पड़ेंगे चौधरी, कोई पानी देने वाला भी नहीं बचेगा’। (ओम प्रकाश बाल्मीकि) दूसरी दुनिया का बूढ़ा यथार्थ भी उठ खड़ा होता है झूठ से मुकाबला करने के लिए। अस्सी बरस का हरिया अपनी बहू कबूतरी को जमींदार-पुत्र द्वारा नग्न घुमाए जाने से सन्न तो हो जाता है लेकिन पथराता नहीं। भाग्य में लिखा मानकर भी

चुप नहीं बैठता। वह बेटे को शहर से बुलाता है। लोगों को थाने भेजता है। पुनः थाने का जुल्म झेलते हुए भाई और बेटे को देखता है पर फिर भी हारता नहीं हरिया। विरादरी की पंचायत बैठती है, औरतें भी शामिल हैं। उनकी विरबानी (औरत) को भी वैसे ही नंगा करके घुमाएँ इस प्रस्ताव को हरिया यह कहकर रोक देता है 'हमारी और उनकी विरबानी क्या अलग-अलग हैं?' विवेक नहीं गँवाता हरिया। 'फसल जला दो' एक आवाज आई। 'अन्न को भी कोई तबाह करता है?' अन्न उत्पादक हरिया बात काट देता है। हरिया अस्सी बरस की उमर में 'नया गाँव' बसाने का दम रखता है। प्रेमचन्द के घीसू-माधव की तरह कफन बेच दारू पीने वाली जमात अब हरिया का रूप ले रही है। बूढ़े जिस्म से विद्रोह की भाषा उभर रही है। दूसरी दुनिया के लोगों को सचमुच एहसास होने लगा है कि वे गुलाम हैं, इसलिए वे अब गुलाम न रहने का संकल्प लेने लगे हैं। (मोहनदास नैमिशराय)

बेटे को पढ़ाने के जुर्म में गाँव के सवर्ण सुक्खा का बहिष्कार कर देते हैं पर सुक्खा हारता नहीं। उसमें स्वाभिमान जग चुका है। दूसरी दुनिया जिसका यथार्थ हीनभावना, दबूपन, झुककर चलना, सलाम दागते रहना, भाग्य के सहारे जीना, जीवन भर बंधुआ बने रहने पर भी संतुष्ट रहना है, इन कहानियों में वह यथार्थ अब जिन्दगी के रास्ते खोलने लगा है स्वाभिमान पालने लगा है "वह भूखा प्राण तज देने को तैयार है पर बेटे को नरक देने को नहीं।" (जयप्रकाश कर्दम)

बाप-बेटा मिलकर किसी दलित लड़की को अपनी हवस का शिकार बना, उसके गर्भ में बीज डालकर निश्चित होकर बैठ जाते हैं, यही दूसरी दुनिया का यथार्थ है। 'नन्दकेसरी' बनी कई महिलाएँ जमींदारों की राह अगोरती रहती हैं जिन्दा रहने के लिए। माँ-बेटी साझा रूप में बारी-बारी बाप-बेटों के लिए बिछती रहती हैं। उनका बाप जमींदारों के यहाँ बंधुआ मजदूर होता है, वह यह सब आँखों से देखकर भी चुप रहने को मजबूर है। गाँव का जमींदार जवाहर सिंह, जिसकी नन्दकेसरी रखल थी, उसकी बेटी लाजो पर भी डोरे डालने लगा। साथ ही जवाहर सिंह का बेटा दशरथ भी लाजो पर मुग्ध हो गया। बाप-बेटा दोनों का मिश्रित बीज कुँआरी लाजो के गर्भ से पैदा हुआ, तो दोनों बच्चे का बाप बनने से नट गए। पर नन्दकेसरी चुप नहीं बैठी। वह बच्चे को उठाकर जवाहर के घर, उसके बैठकी में जा पहुँची जहाँ बाप-बेटा दोनों गाँव के कई लोगों के साथ बैठे थे। सबके सामने सीना तानकर खड़ी हो गई नन्दकेसरी और बच्चे को उनके गोड़ (पाँव में) रखकर बोली "जान से मार दे, लेकिन ई बेटा के स्वीकारे तो पड़ेगा ही बाबू साहेब। चाहे तो एकरा के (इसे) नाली-नाला में फेंक दे, चाहे तो पोस-पाल।" नन्दकेसरी अकेली लोक-लाज क्यों झेले? वे भी हराम की पहचान कर झेलें, जो इसके जिम्मेदार हैं। यह कहने की हिम्मत आ रही है नन्दकेसरियों में। (बिपिन बिहारी)

ऐसे ही एक सवर्ण सेठ को पढ़ी-लिखी मैट्रिक पास शूद्र लड़की से विवाह करने के प्रस्ताव को ठुकराने का साहस 'सिलिया' में आ गया है। चूंकि वह किसी की दया पर जीना नहीं चाहती। अपने स्वाभिमान के साथ जीना चाहती है। उसकी स्मृति में बचपन से जवानी तक के वे सभी सन्दर्भ बाईस्कोप-से घूम जाते हैं जहाँ उसे और उसके समाज को सवर्णों ने अपमानित किया था। उसकी जाति जान जाने पर, पढ़ी-लिखी अच्छी खिलाड़ी होने पर भी तुरन्त उसके प्रति उनका रूख बदल गया था, व्यवहार बदल गया था। कैसे सिलिया उनके घर एक अछूत बनकर अमीरी में रहना स्वीकार करे जबकि उसका पूरा समाज उस दूसरी दुनिया को छोड़ने को तैयार नहीं? वह पढ़ेगी पूरे स्वाभिमान के साथ, पूरे समाज को लेकर जाएगी दूसरी दुनिया में। (सुशीला टाकभौरे) यह संकल्प दूसरी दुनिया के सदियों के यथार्थ को बदलने के लिए लिया जा रहा है। जगह-जगह, हर-जगह; भले हर मन में नहीं पर एक जमात छोटी ही सही प्रतिबद्ध होकर खड़ी हो रही है। यही इन कहानियों की ताकत है।

कावेरी की 'सुमंगली' दुःख भरी गाथा है लेकिन पढ़ने वालों के मन में दुख देने वालों के लिए घृणा और क्रोध पैदा करती है। यही उसकी सफलता है।

रजत रानी मीनू की सुनीता, आत्मविश्वास से भरी-पूरी, जरा बड़बोली लड़की की कहानी है जो धुन की पक्की है। वह सब विरोधों के बावजूद अपना रास्ता खुद बनाती चलती है। अपने पिता को भी उसकी गलती का अहसास कराने से नहीं चूकती। पिता जो दलित हीन-भावना और पुरुष दम्भ दोनों का प्रतिनिधित्व करता है, भी सुनीता की सफलता पर अपना रवैया बदलता है (जो सभी पुरुषों का स्वभाव होता है)। इस कहानी में पिता जड़ परम्परा है और सुनीता गतिशीलता की प्रतीक। जड़ता को झकझोरना जरूरी होता है नहीं तो बढ़ते कदमों के बँधने का खतरा हो जाता है। पिता-माँ-भाई और समाज एवं लोक-लाज के दबाव, लिहाज और आतंक के कारण ही तो औरत गुलामी सहती है। सुनीता उस लिहाज के दबाव को नकारती ही नहीं, झटके से उसे तोड़ती भी है। यह औरतों के लिए जरूरी है। इसलिए इस कहानी का शिल्प कमजोर और सपाट होने पर भी प्रेरणादायक है खासकर महिलाओं के लिए। वैसे यह कहानी और अच्छी बन सकती थी। सुशीला टाकभौरे की सिलिया अन्तर्मुखी है, तो रजतरानी मीनू की सुनीता बहिर्मुखी। यही दोनों के चरित्र का अन्तर है। सुनीता जो सोचती है, उसे बोलती भी है उसके लिए डटकर मुकाबला भी करती है। अपनी बात मनवाने की धुन और जिद दोनों हैं उसमें। नेतृत्व का गुण है। वह अवसर की ताक में समय पर चुप रहना भी जानती है। सब सुनती है पर करती अपने मन की है। सिलिया में भी जिद है, पर वह एक ही बार निर्णय लेती है और एक ही बार में फैसला करवा लेती है। सिलिया नम्र है। वह परम्परा को अपने पक्ष में मोड़ती है यानि अपनी माँ को भी। माँ का सपना बदला लेने का है कि वह भी सवर्णों को अपने घर में नौकर

रखेगी, लेकिन सिलिया की यह सोच नहीं है। जिन्हें सिलिया बदलना चाहती है वे जड़ परम्पराएँ और उन पर आधारित लोग हैं। वह नेता कम, समाज सुधारक अधिक हैं।

आज नत्थू और शान्ता अपनी जमात को पुश्तैनी धंधों में बरकरार रखने की साजिश के खिलाफ उठ रहे हैं। वे अपना हित समझ रहे हैं वे अब सूअर पालन के लिए नहीं, गाड़ी के लिए कर्ज माँगने लगे हैं। (सूरज पाल चौहान)

ये बात सही है कि दलित समाज की स्थिति में बदलाव लाने के लिए ये प्रयास अभी 'ऊँट के मुँह में जीरा' के समान हैं। इन्हें जमात बनकर उठना होगा और दूसरों को भी साथ लेना होगा।

हमने कोशिश की है कि अधिक से अधिक हिन्दी दलित लेखकों को एक मंच पर लाएँ। सम्भवतः हिन्दी में यह प्रथम प्रयास है जब उनतीस लेखक एक साथ छपे हों। इस प्रयास में डा. मैनेजर पाण्डे और नागेश्वर लालजी के हम आभारी हैं, जिन्होंने घंटों समय देकर धैर्य से इन कहानियों को सुना। हम आभारी हैं साथी दयानन्द बटोही, डॉ. एन. सिंह, श्योराज सिंह बेचैन, मोहनदास नेमिशराय और डॉ. विमल-कीर्ति के, जिन्होंने सम्पर्क सूत्र दिए। अजय वर्मा जी ने प्रूफ में मदद की जिसे भुलाया नहीं जा सकता। हम आभारी हैं हंस के भारत भारद्वाज जी के, जिनके 'समकालीन सृजन' में कहानियों की चर्चा पढ़ कर हमारे प्रशंसक एवं लेखक बढ़े। ऐसे 'हंस' के हम एक और कारण से भी आभारी हैं। 'हंस' ने जिन दो कहानियों को नकारकर वापिस किया, उन्हीं कहानियों पर सबसे अधिक प्रशंसात्मक प्रतिक्रियाएँ मिलीं।

कमलेश्वर जी को किन शब्दों में धन्यवाद दिया जाए? उन्होंने इतनी व्यस्तता के बावजूद सभी कहानियाँ पढ़कर भूमिका लिखी और दलित लेखन की दिशा स्पष्ट की।

रमणिका गुप्ता

चिंगारी को अलाव में बदलने का प्रयास

हिन्दी में पहली कहानी किसने और कब लिखी। इस पर विवाद हो सकता है। लेकिन यह निर्विवाद है कि कहानी का जन्म, मनुष्य के जन्म के साथ ही हुआ है। कहानी सुनने की परम्परा उतनी ही पुरानी है, जितनी कि मनुष्य के जैविकीय विकास की कथा। लेकिन हिन्दी की पहली कहानी 1900 के बाद ही प्रकाशित हुई 'सरस्वती' में। यह युग हिन्दी कहानी के विकास का प्रारम्भिक काल है। यह युग ऐसा है, जिसमें दलितों का विद्रोह धीरे-धीरे सुलगता हुआ सामाजिक धरातल तक आ पहुँचा था। एक तो स्वतंत्रता आंदोलन के क्षितिज पर महात्मा गाँधी का जन्म हो चुका था, जिन्होंने पहली बार समझा था कि यह लड़ाई किसी एक वर्ग या जाति के लड़ने से नहीं जीती जा सकती। इसमें सभी जातियों, धर्मों और वर्गों ने सहयोग दिया, जिनमें अछूत भी थे। तभी अपनी विस्फोटक विद्रोही चेतना लेकर डॉ. अम्बेडकर भी भारत के राजनीतिक फलक पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए आ पहुँचे थे, जो केवल भारत की आजादी ही नहीं चाहते थे, बल्कि अछूतों की हिन्दू धर्म से मुक्ति भी चाहते थे। अम्बेडकर कहीं अपने मिशन में सफल न हो जाएँ। अतः गाँधीजी ने कांग्रेस के अन्दर ही 'अछूतोद्धार' कार्यक्रम प्रारम्भ किया, जिसके कारण एक प्रकार की गाँधीवादी सहानुभूति हिन्दुओं में अछूतों के प्रति देखने को मिलने लगी थी। हिन्दी के प्रारम्भिक युग के कथाकारों की कहानियों में यही सहानुभूति देखने को मिलती है। खासतौर पर सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और यशपाल की कहानियों में। 'निराला' की दो लम्बी कहानियों या लघु उपन्यासों, 'चतुरी चमार' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' को हम ले सकते हैं। जहाँ तक यशपाल का प्रश्न है, सन् 1936 के आस-पास हिन्दी साहित्य में 'प्रगतिशील विचारधारा' का प्रवेश हो चुका था, जिसके कारण शोषित, स्त्री और मजदूरों के प्रति सहानुभूति प्रगट करती हुई रचनाएँ लिखी गईं। अतः यशपाल की कहानियों में भूख, गरीबी, शोषण का अत्यन्त दारुण चित्रण हुआ है। मूल रूप में यही दलित चेतना है। उनकी 'परदा' जैसी कहानी इसी का प्रतिनिधित्व करती है।

हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द का पदार्पण एक अभूतपूर्व घटना है। पण्डित बनारसी दास चतुर्वेदी ने लिखा है कि प्रेमचन्द अपने समय के एकमात्र ऐसे साहित्यकार

थे, जिनके कारण साहित्य देश की सीमाएँ लाँघकर विदेशों तक पहुँचा और यह सच भी है। प्रेमचन्द साहित्य का अनुवाद दुनिया की हर भाषा में हो चुका है। हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचन्द ही ऐसे कथाकार हैं, जिन्होंने पहली बार भारतीय (हिन्दू) समाज में नरक भोगते दलित को अपनी कहानियों का विषय बनाया, उसकी सम्पूर्ण यातनाओं के साथ।

भारतीय समाज में अछूतों और सवर्णों की स्थिति के दो उदाहरण डॉ. अम्बडेकर ने अपनी पुस्तक 'इनहिलेशन ऑफ कास्ट' में दिए हैं। इनमें से पहला विवरण शिमला पहाड़ की किसी देशी रियासत का है। हरिजनों ने अपनी स्थिति का वर्णन करते हुए 'हरिजन सेवक' (सम्पादक महात्मा गाँधी) में सम्पादक के नाम पत्र लिखा था, जिसमें कहा गया था कि

1. जब किसी ऊँची जाति के हिन्दू का कोई डंगर मर जाता है, तो डंगर का मालिक उसे खुद छूने में छूत मानता है और हरिजनों को उसे ले जाकर गाड़ना पड़ता है।
2. कोई ब्राह्मण किसी हरिजन के यहाँ सत्यनारायण की कथा कहने या कोई यज्ञ करने नहीं आता।
3. किसी ऊँची जाति के लिए किसी हरिजन की स्त्री या लड़की को जबरदस्ती ले जाना कोई जुर्म या दोष नहीं माना जाता।
4. कोई हरिजन हिन्दू तरीके से कन्यादान करके अपनी लड़की की शादी नहीं कर सकता।
5. सरकारी अफसरों के दौरे के वक्त दूध, लकड़ी, घास और हर तरह की बेगार हरिजनों से ली जाती है। ऊँची जाति वालों से यह सब चीजें नहीं ली जाती। इन चीजों की कीमत कोई अफसर देता भी है, तो वह नम्बरदार वगैरह ले लेते हैं, हरिजनों को नहीं मिलती।
6. ऊँची जाति वालों की तुलना में उतनी ही जमीन की मालगुजारी हरिजनों से दुगुनी ली जाती है। इस पर हरिजनों को जमीन का मौरुसी हकदार नहीं माना जाता।
7. जो हरिजन इस तरह के अत्याचारों पर एतराज करते हैं, उन पर झूठे मुकदमे चलाए जाते हैं।
8. रियासतों के प्रजामंडलों में ऊँची जाति वाले लोग हरिजनों को प्रजामण्डल के मेम्बर नहीं बनने देते। अगर बनने भी देते हैं तो उन्हें चुनाव वगैरह में बराबरी का हक नहीं देते।

दूसरा विवरण इन्दौर रियासत के 15 गाँव के सवर्णों का है, जिन्होंने वहाँ के अस्पृश्यों को निम्नलिखित आज्ञाओं का पालन करने को कहा था, अन्यथा गाँव छोड़कर चले जाने की धमकी दी थी।

1. कोई पुरुष सुनहरी किनारी की पगड़ी न लगाए, रंगीन किनारी की धोती न पहने।
2. किसी हिन्दू के मर जाने पर उसके रिश्तेदारों को खबर दें, भले ही वह दूर क्यों न रहता हो।
3. हिन्दुओं के शादी-ब्याह में बाजा बजावें।
4. अछूतों की औरतें सोने-चाँदी के गहने तथा फैंसी लहंगा और जाकेट न पहनें।
5. हिन्दू औरतों को बच्चा पैदा होने के समय वे दाई का काम करें।
6. अछूतों को चाहिए कि वे बिना वेतन हिन्दुओं के यहाँ नौकरी करें और जो उन्हें खुश होकर दे दिया जाए, उसे स्वीकार कर लें।

प्रेमचन्द की कहानियों में शूद्रों और सवर्णों की इन सभी प्रकार की मानसिक और सामाजिक स्थितियों का चित्रण हुआ है। 'ठाकुर का कुआँ' उनकी दलित चेतना की सर्वोत्कृष्ट कहानी है। इस कहानी का मूल स्वर यह है कि इन्सान होने की हैसियत से जीने के लिए हरिजन का प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं पर अधिकार नहीं है। स्वच्छ हवा और पानी, जिस पर किसी भी व्यक्ति का निजी स्वामित्व नहीं है, उसे भी वह अपनी मर्जी से नहीं पा सकता। समाज में अलग-अलग जातियों के लिए अलग-अलग कुएँ हैं। किन्तु हरिजनों को छोड़कर, शेष सभी सवर्णों के कुएँ से पानी निकाल सकते हैं। हरिजन मात्र हरिजनों के लिए बने कुएँ से ही पानी निकाल सकते हैं। 'ठाकुर का कुआँ' का पात्र जोखू बीमार है। हरिजनों के कुएँ में कोई जीव गिरकर मर गया है। पानी सड़ गया है। सड़ा पानी पीकर जोखू मर भी सकता है। जोखू की पत्नी गंगी दूसरे कुएँ से पानी लाकर जोखू को पिलाना चाहती है। किन्तु जोखू सवर्णों के रवैये को जानता है और गंगी को ऐसा न करने के लिए कहता है "हाथ-पाँव तुड़वा आएगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्राह्मण देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहू एक के चार लेंगे। गरीबों का दुख-दर्द कौन समझता है? हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झाँकने नहीं आता, कन्धा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएँ से पानी भरने देंगे?"

जोखू के इस कथन की गंगी पर जबरदस्त प्रतिक्रिया होती है और वह बोल उठती है "क्यों?" उसका विद्रोही दिल रिवाजों-पाबंदियों पर चोट करने लगता है "हम क्यों नीच हैं और ये क्यों ऊँचे हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं। यहाँ तो जितने हैं, एक से एक छटे हैं। चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें, झूठे मुकदमे ये करें। अभी इसी ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे एक गड़रिए की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद में मार कर खा गया था। इन्हीं पंडित जी के घर में तो बारहों मास जुआ होता है। यही साहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजदूरी देते नानी मरती है।"

किसी हरिजन महिला के मुँह से इस तरह की बातें सुनकर और ठाकुर के कुएँ से पानी निकालने की हिम्मत देखकर, किसी का भी मन प्रसन्न हो सकता है। लेकिन जैसे ही इन पंक्तियों पर दृष्टि पड़ती है, तो मन हरिजनों के प्रति हो रहे अत्याचार के प्रति विद्रोह कर उठता है “जब मैदान किसी तरह खाली होता है और गंगी पानी खींचती है, तभी ठाकुर का दरवाजा खुलता है। शेर का मुँह भी शायद इतना भयानक न होगा। गंगी के हाथ से रस्सी छूट जाती है और वह भागती हुई घर पहुँचती है, देखती है कि जोखू लोटा मुँह से लगाए वही गन्दा पानी पी रहा है।” प्रेमचन्द की यही कहानी हिन्दू समाज में दलित जीवन के अन्तर्विरोधों एवं अन्तर्सम्बन्धों को बड़ी सहजता से अभिव्यक्त करती है।

वस्तुतः अछूत भावना या अस्पृश्यता, मुख्यतः तीन रूढ़िवादी मान्यताओं पर आधारित है ‘खान-पान’ से सम्बन्धित नियम, ‘शादी का सम्बन्ध’ तथा ‘धार्मिक उत्सव’। अछूत के साथ बैठकर भोजन करना तो दूर की बात है, उनके छूने मात्र से सवर्ण हिन्दू शरीर को अशुद्ध मानते हैं। मन्दिर प्रवेश तथा धार्मिक उत्सवों में अछूत का सहयोग तो दूर, वह मन्दिर में रखी हुई मूर्ति का दर्शन भी नहीं कर सकता है। प्रेमचन्द ने इन तीनों रूढ़िवादी मान्यताओं के प्रति विद्रोह किया है, जिसका प्रमाण उनकी ‘ठाकुर का कुआँ’, ‘घासवाली’, ‘दूध का दाम’, ‘सद्गति’, ‘मन्दिर’, ‘मन्त्र’ तथा ‘बाबा का भोग’ आदि कहानियाँ हैं। श्री ब्रजकुमार पाण्डेय ने दलित चेतना के सन्दर्भ में प्रेमचन्द का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि “प्रेमचन्द द्वारा वर्णित हरिजन पात्रों और उनकी समस्याओं को हम दो स्तरों पर देखते हैं 1. सामाजिक स्तर पर, 2. आर्थिक स्तर। सामाजिक स्तर पर ये समस्याएँ छूआछूत, मन्दिर प्रवेश निषेध, वेदपाठ निषेध से जुड़ती हैं, तो दूसरी ओर आर्थिक स्तर पर खेत-मजदूरों की समस्या से। महात्मा गाँधी ने हरिजन समस्या को सामाजिक समस्या के रूप में देखा था और उन्होंने उसका समाधान भी उसी स्तर पर किया था। उन्होंने हरिजन आंदोलन चलाया था। इस आंदोलन की मूल प्रेरणा थी शूद्रों के प्रति सवर्णों की दयावृत्ति को उकसाना। इसका एक परिणाम तो यह हुआ कि अर्थनीति के कारणों से सवर्णों के प्रति शूद्रों में, जो घृणा, विद्वेषमय संघर्ष बढ़ रहा था, वह धीमा पड़ गया। यह आन्दोलन बुद्ध, महावीर और स्वामी रामानन्द से आगे जाने की प्रेरणा नहीं रखता था। उस आन्दोलन से शूद्रों को कुछ मन्दिरों में प्रवेश करने का आत्मसंतोष प्राप्त हुआ, पर अर्थनीतिक व्यवस्था के बदलने में इन आंदोलनों का कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। सामान्यतः समूह रूप में हरिजन गुलाम के आर्थिक पहलुओं को उजागर करते हैं और उस पर चोट करते हैं।”

प्रेमचन्दोत्तर कहानी विशेषकर नई कहानी मूलतः मध्यवर्गीय नगरीय जीवन के यथार्थ से जुड़ी रही है। इस कहानी का संसार मानव-मानव के बनते-बिगड़ते सम्बन्धों

और उनके बदलते मूल्यों की तलाश, परम्पराबोध और आधुनिकता की टकराहट, सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों से उत्पन्न मानवीय विकृतियों को भोगे हुए यथार्थ के धरातल पर चित्रित करता है। इतना होते हुए भी दलित इन कथाकारों द्वारा नजर अन्दाज कर दिया गया। सातवें दशक की कहानी में भी दलित चेतना को उभारने का प्रयास नहीं किया गया। हिन्दी कथा साहित्य में दलित चेतना की अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से आठवाँ दशक महत्वपूर्ण है। श्री रमेश कुमार ने अपने लेख 'आधुनिक हिन्दी कहानियों में दलित-चेतना' में लिखा है कि "आठवें दशक में समानान्तर कहानी आंदोलन के माध्यम से समाज के कमजोर वर्ग की समस्या को कहानी का केन्द्र बनाया गया। स्वतंत्रता के पचास वर्ष बाद भी निम्न दलित वर्गों का जीवन बद से बदतर होता चला गया है। ऐसी स्थिति में दलित उन्नायकों ने अपनी कहानियों के माध्यम से इस वर्ग के जीवन का यथार्थ निरूपण किया है। इन कहानियों में दलित मानव की वेदना, निरन्तर संघर्ष करते रहने की अनिवार्यता, सुविधा-भोगी लोगों के प्रति उनकी विरोध मुद्रा, प्रतिकूल नरकीय स्थिति में भी जीने की विवशता और अपने मानवीय अधिकारों की प्रगति हेतु आत्म-सजगता जागृत हुई है।"

इस आत्म-सजगता का कारण वस्तुतः शूद्रों के प्रति सवर्णों का उपेक्षापूर्ण व्यवहार है। खासकर गाँव के पढ़े-लिखे हरिजन युवक को भी गाँव का सवर्ण असम्मान की दृष्टि से देखता है, जिसके कारण वह गाँव से पलायन करके शहर आ जाता है। यहाँ पर उसे केवल एक ही सुविधा है आजीविका की। लेकिन यहाँ पर वह अपने सामाजिक परिवेश से हटकर जीने लगता है। अतः उसके सामने अपनी पहचान का संकट पैदा हो जाता है। फिर वह अपनी पहचान के लिए संघर्ष करने लगता है। यह संघर्ष तीन धरातलों पर है एक राजनीतिक, दूसरा आर्थिक तथा तीसरा साहित्यिक। सांसद और विधान सभाओं में स्थान आरक्षित होने के कारण वह सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष करता है। लेकिन इसके मूल में केवल व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ ही रही हैं। अम्बेडकर के बाद भारत की संसद में सौ सवा सौ सांसद आरक्षित श्रेणी के सदस्य ही रहे हैं, लेकिन देशभर में दलितों की स्थिति में क्या परिवर्तन हुआ? यही स्थिति प्रदेश की विधान सभाओं की भी रही। यहाँ भी हमारे गूंगे-बहरे और अकर्मण्य प्रतिनिधि ही पहुँचाए जाते रहे। दूसरे आर्थिक धरातल पर भी संघर्ष हुआ। लेकिन जो दलित युवक पढ़-लिखकर नौकरी पा जाता है, वह अपने समाज से, जाति से कटकर जीने लगता है। एक तरह से वह दूसरा सवर्ण ही हो जाता है।

अस्मिता के लिए तीसरा और सबसे सशक्त संघर्ष साहित्यिक धरातल पर हुआ। क्योंकि जिस शूद्र के लिए शिक्षा प्राप्त करना निषेध था, उसके लिए साहित्य में प्रवेश किस प्रकार सम्भव हो सकता था। वह साहित्य में आया भी तो गुलाम, दास या बन्धुआ की हैसियत से ही और यदि शूद्र स्त्री आई तो केवल भोग्या, दासी या मजदूरनी

की हैसियत से। इस स्वतंत्रता के बाद पढ़-लिखकर साहित्य में आए दलितों ने भी कलम पकड़ी। उसका प्रारम्भ तो कविता से ही हुआ। धीरे-धीरे वह कहानी की ओर भी आए। दलित कथाओं की चेतना के रूप में श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', शिवप्रसाद सिंह आदि ने एक पृष्ठभूमि प्रदान की और उस पर जिन दलित कथाकारों ने दलित-कथा का सृजन करने का प्रयास किया उनमें सर्वश्री ओमप्रकाश बाल्मीकि, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, मोहनदास नैमिशराय, दयानन्द बटोही, रघुनाथ प्यासा, शिवचन्द्र उमेश, कालीचरण स्नेही, बी. एल. नय्यर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सभी कथाकारों की कहानियाँ परम्परा के विरोध की कहानियाँ हैं, जो परम्परा से पहले संघर्ष, फिर विरोध और अन्ततः उसे नकार देती हैं।

हिन्दी साहित्य में दलित पृष्ठभूमि पर कितने ही उपन्यास लिखे गए और कहानियाँ भी, लेकिन पहली बार दलित चेतना का प्रश्न प्रेमचन्द के सन्दर्भ में उठा, जिसने हिन्दी हल्कों में एक अच्छा-खासा तूफान-सा उठा दिया। जब कमलेश्वर ने 'सारिका' तथा डॉ. महीप सिंह ने 'संचेतना' के दलित साहित्य विशेषांक प्रकाशित किए, तो उस समय हिन्दी क्षेत्रों में जो प्रशंसा का भाव था, यह तूफान उससे बिल्कुल अलग तरह का था। एक तरह से आक्रामक-सा। सम्भवतः जब तक दलित चेतना मराठी आदि अन्य भाषाओं में अभिव्यक्ति पाने लगी, तो हिन्दी वालों को अच्छा नहीं लगा। यही कारण है कि बड़े-बड़े नामवर आलोचक अभी तक भी हिन्दी में दलित-साहित्य की स्थिति से इन्कार करते हैं। दरअसल रमणिका गुप्ता द्वारा सम्पादित 'दूसरी दुनिया का यथार्थ' ऐसे आलोचकों के लिए सशक्त जवाब है, जिसमें हिन्दी के दलित तथा गैर-दलित कहानीकारों की दलित चेतना की उनतीस कहानियाँ संकलित हैं।

इस पुस्तक की कहानियों से गुजरते हुए एक बात स्पष्ट होकर सामने आई कि कुछ दलित कहानीकार ऐसे हैं, जिनके पास कथ्य की पकड़ और अभिव्यक्ति का शिल्प उत्कृष्ट कोटि का है, जो देर-सबेर हिन्दी कथा साहित्य में निश्चय ही अपना स्थान बना लेंगे। इनमें ओमप्रकाश बाल्मीकि, प्रेम कपाड़िया तथा विपिन बिहारी के नाम लिए जा सकते हैं। ओमप्रकाश बाल्मीकि की कहानी 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' बड़ी सहजता से शिक्षा को शोषण से मुक्ति का साधन बताती है। ऐसी कहानी का मुख्य पात्र सुदीप जब अपनी पहली तनखाह के रुपयों को गिनकर अपने अशिक्षित पिता को समझाता है कि पच्चीस चौका डेढ़ सौ नहीं, सौ होते हैं और जब वे समझ जाते हैं, तो कह उठते हैं "कीड़े पड़ेंगे, चौधरी...कोई पानी देने वाला नहीं बचेगा।" सुदीप के पिताजी का यह आक्रोश ही मुक्ति का वह रास्ता है, जो दलितों को शिक्षा की ओर ले जाएगा।

विपिन बिहारी की कहानी दलित औरतों के दैहिक शोषण को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। गाँव के जमींदारों द्वारा दलित युवतियों की अस्मत् से खेलना आम

बात रही है। खेतिहर मजदूर लोकनाथ और नन्दकेसरी की बेटी लाजो के साथ कभी उसकी राजी से और कभी जबरदस्ती पिता-पुत्र दोनों जवाहर बाबू और दशरथ सिंह सम्भोग करते हैं, लेकिन जब उसे गर्भ रह जाता है, तो कोई भी स्वीकार नहीं करता। अन्ततः लाजो अवैध बच्चे को जन्म देती है और लाजो की माँ जर्मींदार की बैठक पर जाकर बच्चे को पिता-पुत्र के पैरों में रख आती है। तथा लाजो के पूछने पर कि “का हुआ, कहाँ गइल थी?” नन्दकेसरी उत्तर देती है “बेटा होयल था, ओकरे बाप के गौड़ में डाल आई। हमनी ही काहे लोक लज्जा झेलेंगे, तू भी झेल, हराम के पहचान कर।” नन्दकेसरी का यह साहस प्रेमचन्द की कहानी ‘घासवाली’ मूलिया की बरबस याद दिला देता है।

दरअसल दलित महिलाओं के यौन शोषण को लेकर दलित कहानीकारों द्वारा प्रायः कहानियाँ लिखी जाती रही हैं। इस संकलन में भी उनकी संख्या कम नहीं है। इन कहानियों में कावेरी की ‘सुमंगली’, रत्नकुमार सांभरिया की ‘शर्त’, शत्रुघ्न सिंह ‘अनाम’ की ‘राम नाम सत्त है’, कृष्ण गोपाल की ‘छमिया’, गुरुचरण सिंह की ‘काली सड़क’, सी. बी. भारती की ‘भूख’, मोहनदास नैमिशराय की ‘अपना गाँव’, गौरीशंकर नागदंश की ‘जंगल की आग’ आदि प्रमुख हैं। लेकिन रमणिका गुप्ता की कहानी ‘बहू जुठाई’ इस कथ्य को एक नया आयाम प्रदान करती है। इस कहानी में आंचलिकता और विचार का अद्भुत समन्वय है, जो संगठन और विद्रोह का सन्देश देता है? इस कहानी को पढ़ते समय मेरे मस्तिष्क में दो प्रश्न एक साथ उठे। एक, दलित महिलाओं का यौन शोषण क्यों किया जाता है? दो, दलित और दलित कथाकार दोनों ही दलितों पर लिखते समय दलित महिलाओं के यौन शोषण को ही क्यों चुनते हैं? **किसी जाति की चेतना को तोड़ने का सबसे सहज तरीका उसकी महिलाओं के साथ बलात्कार करना है।** उच्च-वर्ण दलितों की चेतना को तोड़ने के लिए सदियों से आजमाए जा रहे इस सिद्ध नुस्खे को आज भी आजमा रहा है। हमारे कथाकार इस मर्म बिन्दु पर चोट कर दलित चेतना को जगाने का काम कर रहे हैं। जैसे ‘बहू जुठाई’ में रमणिका गुप्ता करती हैं। सदियों से चली आ रही अमानवीय परम्परा के विरोध में जब कुछ युवक खड़े होते हैं तो गाँव के ही नहीं, आसपास के गाँवों के लोग भी संगठित हो जाते हैं और ‘बहू जुठाई’ की परम्परा टूट जाती है। ‘राम नाम सत्त है’ की परबतिया के यौन शोषक मोहन सिंह की भी हत्या युवक कर देते हैं। दरअसल ये सभी शोषण से विद्रोह और अन्ततः उससे मुक्ति के संकेत हैं। कभी-कभी मुझे ऐसा भी लगता है कि कथाकार अपनी कहानी में रस उत्पन्न करने के लिए भी इस प्रकार के कथ्यों का चुनाव कर लेते हैं। जैसे विपिन बिहारी की कहानी ‘पहचान’ का यह अंश देखें ‘लाजो से रोज उलझने लगे थे जवाहर बाबू। उसके लिए अलग से समय निकालते थे वे। लाजो की छाती पर रोज हाथ फेरते थे और प्रसन्न होते थे। यदा-कदा छाती से उतर कर उनके

हाथ लाजो की जांघ तक जुंबिश करते थे। लाजो नासमझ, मासूम कुछ समझ नहीं पा रही थी।”

इस दौरान जवाहर बाबू ने लाजो के साथ कुछ ऐसा कर बैठने की कोशिश की थी, जिसकी कल्पना तक सम्भव न थी। वे लाजो के चेहरे के हाव-भाव देख रहे थे। कोई अतिरिक्त और आपत्तिजनक तकलीफ तो नहीं हो रही है। जब तक जवाहर बाबू ने लाजो के चेहरे पर अतिरिक्त तकलीफें नहीं देखी थीं, तब तक कोशिश करते रहे थे। जैसे ही लाजो के चेहरे पर अतिरिक्त तकलीफ का बोध हुआ था, अपनी कोशिश छोड़ दी थी लाजो को खूब पुचकारने लगे थे, लाड़ करने लगे थे। उसे पाँच का नोट भी दिया था उन्होंने। लाजो समझने लगी थी कि वह जवान हो गई या होने वाली है। जवाहर बाबू अपनी कोशिश कई बार सफल कर चुके थे। उन्होंने कुछ ऐसा किया लाजो को अतिरिक्त तकलीफ नहीं हुई, बल्कि गुदगुदा रही थी। कौमार्य का रक्तस्राव नहीं हुआ था। लाजो समझने लगी कि उसके साथ क्या किया जाता रहा और क्या हुआ और उसे अब क्या करना चाहिए। तो जवाहर बाबू से उसकी जिद बढ़ गई थी और वे पूरी करने लगे। इस उद्धरण से ऐसा लगता है कि यह जान-बूझकर रसोत्पत्ति के लिए सृजित किया गया है। हमारा मानना है कि दलित कथाकारों को ऐसी स्थितियों से बचना चाहिए, क्योंकि दलित कथा की शक्ति शिल्प में नहीं, सत्य में है।

दलित नेता और बुद्धिजीवी शेष सवर्ण समाज के बराबर यह बात कहते रहे हैं कि जब तक उनके साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं जोड़ा जाएगा, तब तक असमानता का विष हिन्दू समाज से दूर नहीं होगा। लेकिन अन्तर्जातीय विवाह की कुछ छिटपुट घटनाएँ घटती हैं, तो उन्हें न तो दलित समाज द्वारा ही सहजता से लिया जाता है और न सवर्णों द्वारा ही। इस मुद्दे को लेकर भी कई कहानियाँ लिखी गई हैं। जैसे भगीरथ मेघवाल की ‘सूरज की चिता’ की नायिका चंदा देवी गाँव के जमींदार ठाकुर की बेटी, अपने खेत मजदूर से प्यार करने लगती है और एक दिन उसे साथ लेकर दिल्ली भाग आती हैं। लेकिन उसके भाई एक दिन पता लगाते हुए उसके पास पहुँच कर उन दोनों को ठाकुर साहब द्वारा माफ कर दिए जाने की बात कहकर गाँव लौटा लाते हैं और हवेली में सारे गाँव के सामने सूरज को जलाकर मार दिया जाता है। गिरीराज अग्रवाल की कहानी ‘अस्वीकृति’ का नायक दलित युवक जब आई.ए.एस. होकर अपने ब्राह्मण गुरु से, जिनकी पुत्री नेहा, जो स्वयं विक्रम से प्यार करती है और उससे विवाह करना चाहती है, जब विवाह की अनुमति चाहता है, तो गुरुजी के सारे आदर्श और समानता की बातों का छद्म खुल जाता है। राणा प्रताप की कहानी ‘अन्ततः’ इस सिक्के का दूसरा पहलू हमारे सम्मुख रखती है, जब ब्राह्मण शिक्षक मोहन मिसिर अपनी घरेलू नौकरानी फुलवा को पढ़ा-लिखा देता है और उससे परिवार के सदस्य की तरह व्यवहार

करता है, लेकिन इससे फुलवा के बाप को मिसिर पर शक हो जाता है और वे उन पर फुलवा से विवाह करने का दबाव डालने लगते हैं। मिसिर चूँकि फुलवा से प्यार करता है अतः विवाह करने के लिए राजी हो जाता है। लेकिन चमार बिरादरी के लोग उस पर जाति बदलने की शर्त रख देते हैं।

चन्द्रेश्वर कर्ण की कहानी 'सुरंग से गुजरते हुए' भी इस समस्या पर केन्द्रित है। इस कहानी का नायक ठाकुर कलक्टर सिंह जब फुलिया भंगिन से विवाह करने का प्रस्ताव रखता है, तो फुलिया कहती है "यही सोच रही हूँ जमादार साहेब कि बात तो आप सच कह रहे हैं, लेकिन हमारी बिरादरी वाले मानेंगे कि उनकी जात-बिरादरी की कोई लड़की किसी दूसरी बिरादरी वाले के घर जाकर बैठ जाए?" इसके लिए कलक्टर सिंह को फुलिया की सारी बिरादरी को सुअर और दारू की दावत देनी पड़ती है। इन सभी कहानियों से जो बात निकलकर आती है, वह यह कि जहाँ सवर्णों को अपने जातीय संस्कार बदलने होंगे, वहीं दलितों को भी इन संस्कारों से मुक्ति पानी होगी, तभी भारत में जाति-विहीन समाज की संरचना हो सकेगी।

दलित सन्दर्भों में आरक्षण पर निरन्तर बहस चलती रही है। फिर ऐसा कैसे हो सकता है कि इस मुद्दे पर कहानी न लिखी जाए? इस संकलन में श्रवण कुमार की कहानी 'धब्बा' का नायक, जो एक बड़ा अधिकारी है, रेल में यात्रा करती हुई दलित महिला से पूछता है, "क्या चमार हो?" और उसके हाँ कहने पर स्पष्ट कहता है "भैं भी चमार हूँ।" यह कहानी धीरे-धीरे जातीय-हीनता से उबरते दलितों की ओर संकेत करती है। यही कारण है कि वह साथ बैठे लोगों, जो आरक्षण के कारण हो रही हरिजनों की उन्नति से उत्तेजित हैं, को उत्तेजित होकर ही उत्तर देता है "शैड्यूल कास्ट का आप मतलब समझते हैं? इसका मतलब चूड़े-चमार से नहीं, बल्कि आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों से है, जिन्हें ऊपर उठाने के लिए सरकार ने एक लिस्ट में शामिल कर लिया है। क्या लिस्ट में शामिल हो जाना अपने आप में एक गुनाह हो गया?" यह कहानी ऊँच-नीच की सीढ़ीनुमा हिन्दू-व्यवस्था पर बराबर और गहरी चोट करती है, जहाँ कुछ जातीय संज्ञाएँ गाली के रूप में प्रयुक्त की जाती हैं। 'धब्बा' कहानी का नैरेटर कहता है "क्यों लोग चमार को इतनी हिकारत से देखते हैं?" उसने मुझसे पिछले दिनों गाँव की ओर बढ़ते हुए पूछा था "किसी को गाली देने के लिए भी उन्हें इससे बढ़िया शब्द नहीं मिलता।"

गरीबी दलित समाज का सबसे बड़ा कलंक है। आश्चर्य की बात यह है कि सबसे अधिक श्रम करने वाला वर्ग इस देश में सबसे अधिक निर्धन है। इस संकलन की कई कहानियाँ गरीबी के इस नासूर को उसकी पूरी बदसूरती के साथ उभारती हैं। इन कहानियों में पारसनाथ 'छितनुआ' और प्रेम कुमार मणि की 'जुगाड़' कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

दलित समाज में हो रहे आन्तरिक परिवर्तनों पर जिन कहानीकारों ने कहानियाँ लिखने का प्रयास किया है, कहना ना होगा कि वे अप्रत्याशित रूप से सफल हुए हैं। इन कथाकारों में प्रह्लाद चन्द्र दास (लटकी हुई शर्त), कुसुम वियोगी (और वह पढ़ गई), जयप्रकाश कर्दम (चमार) तथा दयानन्द बटोही (सुरंग) का उल्लेख मैं विशेष रूप से करना चाहता हूँ। ये कहानियाँ दलितों में उभर रही स्वाभिमान की भावना का स्पष्ट संकेत दे रही हैं। 'लटकी हुई शर्त' का गंगाराम चमार सवर्णों के यहाँ दावत खाने की एक शर्त रखता है कि उसकी जाति के लोग किसी दावत में तभी शामिल होंगे, जब उन्हें भी अन्य लोगों की तरह सम्मानपूर्वक भोजन कराया जाएगा। वह सवर्णों के यहाँ जाने और अपनी जूठन आप उठाने से रोकने के लिए अपनी जाति के लोगों के लिए दावत का आयोजन अपने घर करता है। 'और वह पढ़ गई' की भंगी लड़की 'चेतना' मल न उठाने की जिद करती हुई पढ़ने का प्रयास करती है तथा पढ़-लिखकर एक दिन शिक्षिका बन जाती है। दयानन्द बटोही की कहानी 'सुरंग' का कथानक शिक्षा जगत की बदरंग छवि हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है कि किस तरह एक दलित शोधार्थी को विश्वविद्यालय में शोध करने से रोका जाता है! चूँकि शिक्षा का यह रास्ता अच्छे जीवन की ओर जाता है, इसलिए इसमें सिद्धांत, विचार और योग्यता के काँटे बिछाए जाते हैं, ताकि उस पर चलने से पहले ही दलित छात्र लहुलुहान हो जाए। बटोही की यह कहानी एक ऐसा सच है, जो भोगकर लिखा गया है, इसलिए बहुत मारक है। यह कहानी पाठक को देर तक बेचैन किए रहती है। इस संकलन में कुछ दलित महिला कथाकारों की कहानियाँ भी संकलित हैं। उनमें कावेरी की 'सुमंगली', रजत रानी 'मीनू' की 'सुनीता' तथा सुशीला टाकभौरे की "सिलिया" के नाम लिए जा सकते हैं। कावेरी की 'सुमंगली' तो दैहिक शोषण और उससे विद्रोह की कथा है। रजत रानी 'मीनू' ने 'सुनीता' में उत्तर प्रदेश की पूर्व मुख्यमंत्री मायावती के जीवन की घटनाओं को कथा-सूत्र में पिरोने की असफल कोशिश की है। हाँ सुशीला टाकभौरे की कहानी 'सिलिया' अवश्य प्रभावित करती है। इस कहानी में अनुभव की व्यापकता और कथन का कौशल तो अपनी ओर खींचता ही है, नारी मन की भावनाओं को भी उन्होंने गहराई से जानकर चित्रित किया है। इस कहानी की नायिका सिलिया विद्रोही, समझदार तथा शिक्षित दलित युवती है, जो अपनी सम्पूर्ण जातीय स्थिति पर विचार करती है। सुशीला टाकभौरे के ही शब्दों में सिलिया सोचती है "हम क्या इतने लाचार हैं, आत्मसम्मान रहित हैं, हमारा अपना भी कुछ अहं भाव है। उन्हें हमारी जरूरत है। हमको उनकी जरूरत नहीं। हम उनके भरोसे क्यों रहें। अपना सम्मान हम खुद बढ़ाएँगे।" सिलिया ने मन ही मन दृढ़ संकल्प किया "मैं बहुत आगे तक पढ़ाई करूँगी, पढ़ती रहूँगी, शिक्षा के साथ अपने व्यक्तित्व को भी बड़ा बनाऊँगी। उन सभी परम्पराओं का भी पता लगाऊँगी, जिन्होंने हमें अछूत बना दिया है। वह विद्या-बुद्धि और विवेक से अपने

आपको ऊँचा और सार्थक करके रहेगी।” वह किसी के सामने झुकेगी नहीं, न ही अपमान सहेगी।

हिन्दी दलित कहानी में दलित समाज में हो रहे परिवर्तनों की आहट बहुत साफ सुनाई दे रही है। चाहे वह व्यक्ति के भीतर हो रहे हों या बाहर। दलित कहानी का प्रभाव सच की बेखौफ अभिव्यक्ति में है, जिसके लिए बहुत साहस की आवश्यकता है। दलित कथाकारों में यह साहस है, यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है। दलित कहानी का भविष्य बहुत उज्ज्वल है, उसके क्षेत्र में विस्तार की बहुत सम्भावनाएँ हैं। इसे पाठकों की भी कमी नहीं होगी, लेकिन इसके लिए दलित कथाकारों को अपने दायित्व को बखूबी समझना और निभाना होगा। उन्हें अपने सामाजिक सरोकारों को समझना होगा। भविष्य में यही दलित कहानी के जीवन स्रोत होंगे।

डॉ. एन. सिंह

अनुक्रम

भूमिका/कमलेश्वर	5
दूसरी दुनिया का यथार्थ/रमणिका गुप्ता	9
चिंगारी को अलाव में बदलने का प्रयास/डॉ. एन. सिंह	19
पच्चीस चौका डेढ़ सौ/ओमप्रकाश बाल्मीकि	33
हरिजन/प्रेम कपाड़िया	41
लटकी हुई शर्त/प्रह्लाद चन्द्र दास	50
फाँसी/परदेशीराम वर्मा	57
चमार/जय प्रकाश कर्दम	63
अपना गाँव/मोहनदास नैमिशराय	72
साजिश/सूरजपाल चौहान	98
सुमंगली/कावेरी	104
सिलिया/सुशीला टाकभौरे	110
सुनीता/रजत रानी 'मीनू'	115
बहू-जुठाई/रमणिका गुप्ता	123
सूरज की चिता/भागीरथ मेघवाल	134
पानीदार भ्रम/लालचन्द 'राही'	140
शर्त/रतन कुमार सांभरिया	145
अस्वीकृति/डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल	150
राम नाम सत् है/शत्रुघ्न सिंह 'अनाम'	154
छमिया/कृष्ण गोपाल	162
छितनुआ/पारसनाथ	164

धब्बा/श्रवण कुमार	170
पहचान/विपिन बिहारी	177
अन्ततः/राणा प्रताप	190
काली सड़क/गुरुचरण सिंह	204
और वह पढ़ गई/कुसुम वियोगी	211
जंगल में आग/गौरीशंकर नागदंश	217
भूख/डॉ. सी. बी. भारती	221
जुगाड़/प्रेम कुमार मणि	224
सुरंग से गुजरते हुए/चन्द्रशेखर कर्ण	230
सुरंग/डॉ. दयानन्द बटोही	245
डॉंगर/कर्मन्दु शिशिर	251

पच्चीस चौका डेढ़ सौ

पहली तनखाह के रुपए हाथ में थामे सुदीप अभावों के गहरे अन्धकार में रोशनी की उम्मीद से भर गया था। एक ऐसी खुशी उसके जिस्म में दिखाई पड़ रही थी जिसे पाने के लिए उसने असंख्य कंटीले झाड़-झंखाड़ों के बीच अपनी राह बनाई थी। हथेली में भींचे रुपयों की गर्मी उसकी रग-रग में उतर गई थी। पहली बार उसने इतने रुपए एक साथ देखे थे। वह वर्तमान में जीना चाहता था। लेकिन भूतकाल उसका पीछा नहीं छोड़ रहा था। हर पल उसके भीतर वर्तमान और भूत की रस्साकसी चलती रहती थी। अभावों ने कदम-कदम पर उसे छला था। फिर भी उसने स्वयं को किसी तरह बचाकर रखा था। इसलिए यह मामूली नौकरी भी उसके लिए बड़ी अहमियत रखती थी। नई-नई नौकरी में छुट्टियाँ मिलना कठिन होता है। उसे भी आसानी से छुट्टी नहीं मिली थी। उसने रविवार की छुट्टियों में अतिरिक्त काम किया था, जिसके बदले उसे दो दिन का अवकाश मिल गया था। वह पहली तनखाह मिलने की खुशी अपने माँ-बाप के साथ बाँटना चाहता था।

स्कूल की पढ़ाई और नौकरी के बीच समय और हालात की गहरी खाई को वह पाट नहीं सकता था। फिर भी खाई के बीच जो कुछ भी था, उसे सान्त्वना देकर उसकी पीड़ा को तो वह कम कर ही सकता था। सुख-दुख के चंद लम्हे आपस में बाँट कर पीड़ा कम हो जाती है। उसने इस पल के इन्तजार में एक लम्बा सफर तय किया था, ऐसा जिसमें दिन-रात और मान-अपमान के बीच अन्तर ही नहीं था।

शहर से गाँव तक पहुँचने में दो-ढाई घण्टे से ज्यादा लग जाते थे, इसीलिए वह सुबह ही निकल पड़ा था। बस अड्डे पर आते ही उसे बस मिल गई थी। बस में काफी भीड़ थी। बड़ी मुश्किल से उसे बैठने की जगह मिल पाई थी।

कण्डक्टर किसी यात्री पर बिगड़ रहा था, “इस सामान को उठाओ। छत पर रखो। आने-जाने का रास्ता बंद ही कर दिया है। किसका है यह सामान?” कण्डक्टर ने ऊँचे और कर्कश स्वर में पूछा।

एक दुबला-पतला-सा ग्रामीण धीमे स्वर में बोला, “जी, मेरा है।” कण्डक्टर ने ग्रामीण के वजूद को तौलते हुए आवाज सख्त करके लगभग दहाड़ते हुए कहा, “तेरा है तो इसे अपने पास रख। यहाँ रास्ते में क्यों अड़ा दिया है? उठा इसे!” ग्रामीण ने गिड़गिड़ाकर अजीब-सी मरियल आवाज में कहा, “साहब...नज दीक ही उतरना है...!”

सुदीप जब भी किसी को गिड़गिड़ाते देखता है तो उसे अपने पिताजी की छवि याद आने लगती है, ऐसे में उसका पोर-पोर चटखने लगता है, जैसे कोई धीरे-धीरे उसके जिस्म पर आरी चला रहा हो।

उसने कण्डक्टर की ओर देखा। कण्डक्टर का तोन्दल शरीर कपड़े फाड़कर बाहर आने को छटपटा रहा था। बनैले सुअर की तरह उसके चेहरे पर पान से रंगे दाँत, उसकी भयता में इजाफा कर रहे थे। सुदीप को लगा जंगली सुअर बस की भीड़ में घुस आया है। उसने सहमकर सहयात्री की ओर देखा, जो निरपेक्ष भाव से अपने ख्यालों में गुम था। सुदीप ने ग्रामीण पर नजर डाली, जो अभी तक दयनीयता से उबर नहीं पाया था।

उसके भीतर पिताजी की छवि आकार लेने लगी। स्मृति में वह दिन दस्तक देने लगा, जब पिताजी उसे लेकर स्कूल में दाखिल कराने ले गए थे। उनकी बस्ती के बच्चे स्कूल नहीं जाते थे। पता नहीं पिताजी के मन में यह विचार कैसे आया कि उसे स्कूल में भर्ती कराया जाए। जबकि पूरी बस्ती में पढ़ाई-लिखाई की ओर किसी का ध्यान नहीं था। पिताजी लम्बे-लम्बे डग भर कर चल रहे थे। उसे उनके साथ चलने में दौड़ना पड़ता था। उसने मैली-सी बदरंग कमीज और पट्टेदार निक्करनुमा कच्छा पहन रखा था, जिसे थोड़ी-थोड़ी देर बाद ऊपर खींचना पड़ता था।

स्कूल के बरामदे में पहुँचकर पिताजी पलभर के लिए ठिठके। फिर धीरे-धीरे चलकर इस कमरे से उस कमरे में झाँकने लगे। हर एक कमरे में अँधेरा था, जिसमें बच्चे पढ़ रहे थे। मास्टर कुर्सियों पर बैठे बीड़ी पी रहे थे या ऊँघ रहे थे। पिताजी फूलसिंह मास्टर को ढूँढ़ रहे थे। दो-तीन कमरों में झाँकने के बाद एक छोटे-से कमरे की ओर मुड़े। उस कमरे में अन्य कमरों से ज्यादा अँधेरा था। फूलसिंह मास्टर अकेले बीड़ी पी रहे थे।

उन्हें दरवाजा पर देखकर फूलसिंह मास्टर खुद ही बाहर आ गए थे। पिताजी ने मास्टरजी को देखते ही दयनीय स्वर में गिड़गिड़ाकर कहा, “मास्टरजी इस जातक (बच्चे) कू अपणी सरण में ले लो। दो अच्छर पढ़ लेगा तो थारी दया ते यो बी आदमी बण जागा। म्हारी जिनगी बी कुछ सुधर जागी।”

सुदीप पिताजी की उस मुद्रा को कभी भूल नहीं पाया। वे हाथ जोड़कर झुके खड़े थे। फूलसिंह मास्टर ने बीड़ी का टोंटा अंगूठे के इशारे से दूर उछाला और पिताजी को लेकर हेडमास्टर के कमरे में चले गए।

सुदीप का दाखिला हो गया था। पिताजी खुश थे। उनकी खुशी में भी वही

गिड़गिड़ाहट झलक रही थी। वे झुक-झुक कर मास्टर फूलसिंह को सलाम कर रहे थे। बस हिचकोले खा-खाकर रेंग रही थी। आस-पास के यात्रियों ने बीड़ी-सिगरेट का धुँआँ ऐसे उगलना शुरू कर दिया था, जैसे सभी अपनी-अपनी दुश्चिन्ताओं को धुँएँ के बादलों में विलीन कर देंगे। उसने अपने पास की खिड़की का शीशा सरकाया। ताजा हवा की सरसराहट अन्दर घुस आई।

उसकी स्मृति में स्कूल के दिन एक के बाद एक लौटकर आने लगे। दूसरी कक्षा तक आते-आते वह अच्छे विद्यार्थियों में गिना जाने लगा था। तमाम सामाजिक दबावों और भेदभावों के बावजूद वह पूरी लगन से स्कूल जाता रहा। सभी विषयों में वह ठीक-ठाक था। गणित में उसका मन कुछ ज्यादा ही लगता था।

मास्टर शिवनारायण मिश्रा ने चौथी कक्षा के बच्चों से पन्द्रह तक पहाड़े याद करने के लिए कहा था। लेकिन सुदीप को चौबीस तक पहाड़े पहले से ही अच्छी तरह याद थे। मास्टर शिवनारायण मिश्रा ने शाबाशी देते हुए पच्चीस का पहाड़ा याद करने के लिए सुदीप से कहा।

स्कूल से लौटते ही सुदीप ने पच्चीस का पहाड़ा याद करना शुरू कर दिया। वह जोर-जोर से ऊँची आवाज में पहाड़ा कंठस्थ करने लगा। पच्चीस एकम पच्चीस, पच्चीस दूनी पचास, पच्चीस तिया पिचहत्तर, पच्चीस चौका सौ...?

एक दिन पिताजी बाहर से थके-हारे लौटे थे। उसे पच्चीस का पहाड़ा रटते देखकर उनके चेहरे पर संतुष्टि-भाव तैर गए थे। थकान भूलकर वे सुदीप के पास बैठ गए थे। वैसे तो उन्हें बीस से आगे गिनती भी नहीं आती थी लेकिन पच्चीस का पहाड़ा उनकी जिन्दगी का अहम पड़ाव था। जिसे वे अनेक बार अलग-अलग लोगों के बीच दोहरा चुके थे। जब भी उस घटना का जिक्र करते थे, उनके चेहरे पर एक अजीब-सा विश्वास चमक उठता था।

सुदीप ने पच्चीस का पहाड़ा दोहराया और जैसे ही पच्चीस चौका सौ कहा उन्होंने टोका।

“नहीं बेटे...पच्चीस चौका सौ नहीं...पच्चीस चौका डेढ़ सौ...” उन्होंने पूरे आत्मविश्वास से कहा।

सुदीप ने चौककर पिताजी की ओर देखा। समझाने के लहजे में बोला, “नहीं पिताजी,...पच्चीस चौका सौ...यह देखो गणित की किताब में लिखा है।”

“बेटे, मुझे किताब क्या दिखावे है। मैं तो हरफ (अक्षर) बी ना पिछाणूँ। मेरे लेखे तो काला अच्छर भैंस बराबर है। फिर भी इतना तो जाणूँ कि पच्चीस चौका डेढ़ सौ होता है।” पिताजी ने सहजता से कहा।

“किताब में तो साफ-साफ लिखा है पच्चीस चौका सौ...” सुदीप ने मासूमियत से कहा।

“तेरी किताब में गलत बी तो हो सके...नहीं तो क्या चौधरी झूठ बोल्लेंगे, तेरी किताब से कहीं ठाड्डे (बड़े) आदमी हैं चौधरी जी। उनके धोरे (पास) तो ये मोट्टी-मोट्टी किताबें हैं...वह जो तेरा हेडमास्टर है, वो भी पाँव छुए है चौधरी जी के। फेर भला वो गलत बतावेंगे...मास्टर से कहणा सही-सही पढ़ाया करे...” पिताजी ने उखड़ते हुए कहा।

“पिताजी...किताब में गलत थोड़े ही लिखा है...” सुदीप रुआँसा हो गया।

“तू अभी बच्चा है। तू क्या जाणे दुनियादारी। दस साल पहले की बात है। तेरे होणे से पहले तेरी म्हातारी बीमार पड़गी थी। बचने की उम्मेद ना थी। सहर के बड़े डाक्टर से इलाज करवाया था। सारा खर्च चौधरी ने ही तो दिया था। पूरा सौ का पत्ता..यो लम्बा लीले (नीले) रंग का लोट (नोट) था। डाक्टर की फीस, दवाइयाँ सब मिलाकर सौ रुपए बणे थे। जब तेरी माँ ठीक-ठाक होके चलण-फिरण लगी, तो मैं चार महीने बाद चौधरी जी की हवेली में गया। दुआ सलाम के बाद मैन्ने चौधरी जी ते कहा ‘चौधरी जी मैं तो गरीब आदमी हूँ। थारी मेहरबान्नी से मेरी लुगाई की जान बच गई। वह जी गई, वर्ना मेरे जातक (बच्चे) बिरान हो जाते। तमने सौ रुपए दिए थे। उनका हिसाब बता दो। मैं थोड़ा-थोड़ा करके सारा कर्ज चुका दूँगा। एक साथ देणे की मेरी हिम्मत ना है चौधरी जी।’ चौधरी जी ने कहा ‘मैन्ने तेरे बुरे बखत में मदद करी तो। ईब तू ईमानदारी ते सारा पैसा चुका देना। सौ रुपए पर हर महीने पच्चीस रुपए ब्याज के बनते हैं। चार महीने हो गए हैं। ब्याज-ब्याज के हो गए हैं पच्चीस चौका डेढ़ सौ। तू अपणा आदमी है, तेरे ते ज्यादा क्या लेणा। डेढ़ सौ में से बीस रुपए कम कर दे। बीस रुपए तुझे छोड़ दिए। बचे एक सौ तीस। चार महीने का ब्याज, एक सौ तीस अभी दे दे। बाकी रहा मूल जिब होगा दे देणा। महीने के महीने ब्याज देते रहणा।’

“ईब बता बेट्टे पच्चीस चौका डेढ़ सौ होते हैं या नहीं। चौधरी भले और इज्जतदार आदमी हैं, जो उन्होंने बीस रुपए छोड़ दिए। नहीं तो भला इस जमाने में कोई छोड़्डे है। अपने शिवनारायण मास्टर के बाप बड़े मिसिर जी कू ही देख लो। एक धेल्ला बी ना छोड़्डे। ऊप्पर ते बिगार (बेगार) अलग ते करावे है। जैसे बिगार उनका हक है। दिन भर गोड़्डे टूट जां। मजूरी के नाम पे खाल्ली हाथ। ऊप्पर ते गाली अलग। गाली तो ऐसे दे है जैसे बेद मन्तर पढ़ रहे हों।’

सुदीप ने पच्चीस का पहाड़ा दोहराया। पच्चीस एकम् पच्चीस, पच्चीस दूनी पचास, पच्चीस तिया पचहत्तर, पच्चीस चौका डेढ़ सौ...।

अगले दिन कक्षा में मास्टर शिवनारायण मिश्रा ने पच्चीस का पहाड़ा सुनने के लिए सुदीप को खड़ा कर दिया। सुदीप खड़ा होकर उत्साहपूर्वक पहाड़ा सुनाने लगा।

पच्चीस एकम् पच्चीस, पच्चीस दूनी पचास, पच्चीस तिया पचहत्तर, पच्चीस चौका डेढ़ सौ...।

मास्टर शिवनारायण मिश्रा ने उसे टोका, “पच्चीस चौका सौ...”

मास्टर जी के टोकने से सुदीप अचानक चुप हो गया और खामोशी से मास्टर का मुँह देखने लगा।

मास्टर शिवनारायण मिश्रा कुर्सी पर पैर रखकर उकड़ूँ बैठे थे। बीड़ी का सुट्टा मारते हुए बोले, “अबे! चूहड़े के, आगे बोलता क्यूँ नी? भूल गया क्या?” सुदीप ने फिर पहाड़ा शुरू किया। स्वाभाविक ढंग से पच्चीस चौका डेढ़ सौ कहा। मास्टर शिवनारायण ने डाँटकर कहा, “अबे! कालिए, डेढ़ सौ नहीं सौ...सौ!”

सुदीप ने डरते-डरते कहा, “मास्साब! पिताजी कहते हैं पच्चीस चौका डेढ़ सौ होवे हैं।”

मास्टर शिवनारायण हल्थे से उखड़ गया। खींचकर एक थप्पड़ उसके गाल पर रसीद किया। आँखें तरेरकर चीखा, “अबे, तेरा बाप इतना बड़ा बिदवान है, तो यहाँ क्या अपनी माँ...(एक क्रिया जिसे सुसंस्कृत लोग साहित्य में त्याज्य मानते हैं)... आया है, साले, तुम लोगों को चाहे कितना भी लिखाओ-पढ़ाओ रहोगे वहीं के वहीं... दिमाग में कूड़ा-करकट जो भरा है। पढ़ाई-लिखाई के संस्कार तो तुम लोगों में आ ही नहीं सकते। चल बोल ठीक से...पच्चीस चौका सौ...स्कूल में तेरी थोड़ी-सी तारीफ़ क्या होने लगी पाँव जमीन पर नहीं पड़ते। ऊपर से जबान चलावे है। उलटकर जवाब देता है।”

सुदीप ने सुबकते हुए पच्चीस चौका सौ कहा और एक साँस में पूरा पहाड़ा सुना दिया। उस दिन की घटना ने उसके दिमाग में उलझन पैदा कर दी। यदि मास्साब सही कहते हैं, तो पिताजी गलत क्यूँ बता रहे हैं। यदि पिताजी सही हैं, तो मास्साब क्यूँ गलत बता रहे हैं। पिताजी कहते हैं चौधरी बड़े आदमी हैं, झूठ नहीं बोलते। उसके हृदय में बवंडर उठने लगे।

नर्म और मासूम बाल-मन पर एक खरोंच पड़ गई थी, जो समय के साथ-साथ और गहरा गई थी। किसी ने ठीक ही कहा है कि मन में गाँठ पड़ जाए तो खोले नहीं खुलती। सोते-जागते, उठते-बैठते, पच्चीस चौका डेढ़ सौ उसे परेशान करने लगा।

बाल-मन की यह खरोंच ग्रंथी बन गई थी। जब भी वह पच्चीस की संख्या पढ़ता या लिखता, उसे पच्चीस चौका डेढ़ सौ ही याद आता। साथ ही याद आता पिताजी का विश्वास भरा चेहरा और मास्टर शिवनारायण मिश्रा का गाली-गलौच करता लाल-लाल चेहरा। दोनों चेहरे एक साथ स्मृति में दबाए पच्चीस चौका डेढ़ सौ की अँधेरी दुर्गम गलियों में भटकने लगा। जैसे-जैसे बड़ा होने लगा, कई सवाल उसके मन को विचलित करने लगे। जिनके उत्तर उसके पास नहीं थे।

बस अड़्डे से थोड़ा पहले एक बड़ा-सा गति अवरोधक था, जिसके कारण

अचानक ब्रेक लगने से यात्रियों को झटका लगा। कई लोग तो गिरते-गिरते बचे। झटका लगने से सुदीप की विचार तन्द्रा भी टूट गई। उसने जेब को छूकर देखा। तनखाह के रूपए जेब में सही-सलामत थे।

बस गाँव के किनारे रुकी। बस अड्डे के नाम पर दो-एक दुकानें-पान-बीड़ी की, एक पेड़ के तने से टिकी पुरानी-सी मेज पर बदरंग आइना रखकर बैठा गाँव का ही बदरू नाई। नाई से थोड़ा हट कर दूसरे पेड़ तले बैठा गाँव का मोची और एक केले-अमरूद वाला। बस यही था बस अड्डा। सुदीप ने बस से नीचे उतरकर आसपास नजर दौड़ाई। बस अड्डे पर कोई विशेष चहल-पहल नहीं थी। इक्का-दुक्का लोग इधर-उधर बैठे थे। वह सीधा घर की ओर चल पड़ा। गाँव के पश्चिमी छोर पर तीस-चालीस घरों की बस्ती में उनका घर था।

दोपहर होने को आई थी। सूरज काफी ऊपर चढ़ गया था। उसने तेज-तेज कदम उठाए। लगभग महीने भर बाद गाँव लौटा था। जानी-पहचानी चिरपरिचित गलियों में उसे अपने बचपन के अब तक बिताए पल गुदगुदाने लगे। इससे पहले उसने कभी ऐसा महसूस नहीं किया था। एक अजाने से आत्मीय सुख से वह भर गया था। अपना गाँव, अपने रास्ते, अपने लोग। उसने मन ही मन मुस्कराकर कीचड़ भरी नाली को लाँघा और बस्ती की ओर मुड़ गया। गाँव और बस्ती के बीच एक बड़ा-सा जोहड़ था, जिसमें जलकुंभी फैले हुए थे।

जलकुंभी का नीला फूल उसे बहुत अच्छा लगता है। इक्का-दुक्का फूल दिखाई पड़ने लगा था। उसने जोहड़ के किनारे-किनारे चलना शुरू कर दिया।

पिताजी आँगन में पड़ी एक पुरानी चारपाई की रस्सी कस रहे थे। सुदीप को आता देखकर वे उसकी ओर लपके।

“अचानक...क्या बात है...लगता है सहर में जी नी लग्या।”

“नहीं, ऐसी बात नहीं है...बस ऐसे ही चला आया।” सुदीप ने सहजता से कहा।

जेब से निकाल कर तनखाह के रूपए उनके हाथ में रखकर, पाँव छुए। पिताजी गदगद हो गए। दोनों हाथों में रूपए थामकर माथे से लगाया, जैसे देवता का प्रसाद ग्रहण कर रहे हों। मन ही मन अस्फुट शब्दों में कुछ बुदबुदाए।

फिर सुदीप की माँ को पुकारा, “दीपे की माँ, काम करके यहाँ तो आ...ले सिंभाल अपने लाड़ले की कमाई।”

माँ आवाज सुनकर बाहर आई। आंचल पसारकर रूपए लिए और सुदीप को छाती से लगा लिया। उस क्षण ऐसा लग रहा था, जैसे समूचा घर खुशी की बारिश में भीग रहा है।

सुदीप चुपचाप सभी के खिले चेहरे देख रहा था। सब खुश थे। ऊपरी तौर पर

तो वह भी मुस्कुरा रहा था, लेकिन उसके भीतर एक खलबली मची थी। वह अशान्त था।

उसने माँ से कहा, “यहाँ बैठो माँ”, हाथ बढ़ाकर आंचल से कुछ रुपए लिए।

गम्भीर स्वर में बोला, “पिताजी, मुझे आपसे एक बात कहनी है।”

“क्या बात है बेटे?...कुछ चाहिए?” पिताजी ने जिज्ञासावश पूछा।

पिताजी गुमसुम होकर उसकी ओर देखने लगे। कुछ देर पहले की खुशी पर धुंध फैलने लगी थी। तरह-तरह की आशंकाएँ उन्हें झकझोरने लगी थीं। वे अचानक बेचैनी महसूस करने लगे थे।

सुदीप ने पच्चीस-पच्चीस रुपए की चार ढेरियाँ लगाई। पिताजी से कहा, “अब आप इन्हें गिनिये।”

पिताजी चुपचाप सुदीप की ओर देख रहे थे। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। असहाय होकर बोले “बेटे, मुझे तो बीस ते आगे गिनना बी नी आता। तू ही गिणके बता दे।” सुदीप ने धीमे स्वर से कहा, “पिताजी, ये चार जगह पच्चीस-पच्चीस रुपए हैं : अब इन्हें मिलाकर गिनते हैं...चार जगह का मतलब है पच्चीस चौका...”

कुछ क्षण रुककर सुदीप ने पिताजी की ओर देखा। फिर बोला, “अब, देखते हैं पच्चीस चौका सौ होते हैं या डेढ़-सौ।”

पिताजी अवाक होकर सुदीप का चेहरा देखने लगे। उनकी आँखों के आगे चौधरी का चेहरा घूम गया। तीस-पैंतीस साल पुरानी घटना साकार हो उठी। वह घटना, जिसे वे अब तक न जाने कितनी बार दोहराकर लोगों को सुना चुके थे। आज उसी घटना को नये रूप में लेकर बैठ गया था सुदीप।

सुदीप रुपए गिन रहा था बोल-बोलकर, सौ पर जाकर रुक गया। बोला, “देखो, पच्चीस चौका सौ हुए...डेढ़ सौ नहीं।”

पिताजी ने उसके हाथ से रुपए ऐसे छीने जैसे सुदीप उन्हें मूर्ख बना रहा है। वे रुपए गिनने का प्रयास करने लगे। लेकिन बीस पर जाकर अटक गए। सुदीप ने उनकी मदद की। सौ होने पर पिताजी की ओर देखा। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था।

उन्होंने फिर एक से गिनना शुरू कर दिया। बीस पर अटक गए। उलट-पलट कर रुपयों को देख रहे थे, जैसे कुछ उनमें कम हैं। सुदीप ने फिर गिनकर दिखाए। पिताजी को यकीन ही नहीं आ रहा था। सुदीप ने हर बार उनकी शंका का समाधान किया, हर प्रकार से।

आखिर पिताजी को विश्वास हो ही गया। सुदीप ठीक कह रहा था पच्चीस चौका सौ ही होते हैं। झूठ-सच सामने था।

पिताजी के हृदय में जैसे अतीत जलने लगा था। उनका विश्वास, जिसे पिछले तीस-पैंतीस सालों से वे अपने सीने में लगाए चौधरी के गुणगान करते नहीं अघाते थे, आज अचानक काँच की तरह चटक कर उनके रोम-रोम में समा गया था, उनकी आँखों में एक अजीब-सी वितृष्णा पनप रही थी, जिसे पराजय नहीं कहा जा सकता था बल्कि विश्वास में छले जाने की गहन पीड़ा ही कहा जाएगा।

उन्होंने अपनी मैली चीकट धोती के कोने से आँख की कोर में जमा कीचड़ पोंछा और एक लम्बी साँस ली। रूपए सुदीप को लौटा दिए। उनके चेहरे पर पीड़ा का खण्डहर उग आया था, जिसकी दीवारों से ईंट, पत्थर और सीमेंट भुरभुरा कर गिरने लगे थे। उनके अन्तस में एक टीस उठी, जैसे कह रहे हों, 'कीड़े पड़ेंगे चौधरी...कोई पानी देने वाला भी नहीं बचेगा।'

प्रेम कपाड़िया

हरिजन

आज वह बहुत खुश था और इसी खुशी में उसकी आँखें गीली थीं। दीवार पर टंगी माँ की तस्वीर धुंधली होती चली गई थी। माँ...ना जाने कैसी होगी? पता नहीं जिन्दा होगी या नहीं! वह भरे गले से ही बोला था “माँ! आज तुम अगर अपने बेटे को इस पुलिस अफसर की वर्दी में देखतीं, तो कितनी खुश होतीं।”

लेकिन तस्वीर भला किसी को जवाब देती है।

तभी!

अपने कंधे पर किसी के हाथ का स्पर्श पाकर वह चौंका था। चेहरा घुमाकर देखा। पास ही प्रिया खड़ी थी। माथे पर बड़ी-सी बिन्दी...सिन्दूर बहुत भला लग रहा था।

“मैंने तो पुलिस-अफसर के सामने खूँखार अपराधियों को गिड़गिड़ाते देखा है...तब भी उनके चेहरे पर दया नहीं आती। लेकिन आज आप स्वयं रो रहे हैं।” प्रिया ने अपनी साड़ी के पल्लू से उसकी आँखों को पोंछते हुए कहा।

“प्रिया...जब आदमी अपने किसी प्रिय को अपनी तरक्की का पदक देना चाहता है...और उस समय वह प्रिय सामने ना हो तो...ना चाहते हुए भी इस स्थिति में आँसू आ ही जाते हैं।”

“आप एक बार उस गाँव में ही क्यों नहीं हो आते?”

“मुझे उस गाँव से नफा मत है प्रिया...उस गाँव के लोगों ने मुझे इतनी यातनाएँ...इतने जख्म दिए हैं कि अगर मैं वहाँ गया, तो दो-चार का कत्ल कर डालूँगा,” अन्तिम शब्द कहते-कहते उसका चेहरा तमतमा उठा था।

“यह तो जिन्दगी का यथार्थ है प्रेम...” प्रिया उसका हाथ थाम सोफे की ओर बढ़ती हुई बोली “हम समाज में रहते हैं, तो समाज के नासूरों को साफ करना भी तो हमारा फर्ज है। क्या पता आज कोई दूसरा प्रेम तुम्हारी तरह यातनाएँ भोग रहा हो।”

सोफे पर प्रिया के साथ बैठते ही वह गम्भीर हो गया था। प्रिया भी बगल में ही सोफे पर धँस गई थी। सुन्दर-सा ड्राइंग-रूम था। फिर हो क्यों ना! प्रेम इस समय

दिल्ली महानगर का पुलिस उपायुक्त था। इज्जत...पैसा...सब कुछ तो था।

“तुम कहती तो ठीक हो।”

“मैं तुम्हें खुश देखना चाहती हूँ।” प्रिया प्रेम की ओर देखकर बोली “जब पहली बार तुम्हें पापा के साथ देखा था, सोचा था...गरीब लोग दिल के साफ होते हैं। तुम पापा की कार से टकरा गए थे। पापा तुम्हें अपने घर ले आए थे। तुम्हारा रंग-रूप अच्छा था। चार-पाँच दिनों में तुम ठीक हो गए थे। इन चार-पाँच दिनों में मैं नौकर के साथ तुम्हारी देखभाल करती रही थी। इसी दौरान तुम्हारी बातों को सुनकर लगा था...तुम एक दिन कुछ बनोगे। और आज बन भी गए।”

“उन दिनों बाबूजी मुझे अपनी छत्रछाया से अलग कर देते, तो मैं शायद भूख-प्यास से मर गया होता।” प्रेम गम्भीरता से बोला था।

तभी!

फोन बज उठा था।

प्रिया ने ही फोन रिसेव किया था। उधर से प्रिया के पापा ही थे। उन्हीं से बात कर रही थी। प्रेम उसकी बातों को सुनने की कोशिश कर रहा था।

“हाँ पापा घर पर ही हैं। आप ही बात कर लो।”

प्रेम समझ गया था। उठकर फोन की ओर बढ़ता चला गया था।

“हैलो, बाबू जी कैसे हैं?” उसने रिसेवर कान से सटाते हुए कहा था।

“ठीक हूँ...तुम्हारे लिए एक अच्छी न्यूज है। तुम डेपुटेशन पर एस.एस.पी. बनकर मध्यप्रदेश जा रहे हो...तुमने एक बार कहा था कि तुम इटारसी जाना चाहते हो...तुम्हारा गाँव वहीं है। मैंने मंजूरी दिलवा दी...तुम चाहो तो एक साल बाद वापस भी आ सकते हो। मेरी सर्विस अभी आठ साल और बाकी है।”

सुनकर खामोश हो गया था वह।

“क्या तुम खुश नहीं हो?” उधर से चुप्पी का अहसास करके पूछा गया था।

“ऐसी बात नहीं है बाबूजी!”

“फिर मैं समझूँ कि तुम जा रहे हो!” उधर से पूछा गया।

“जब आपने वहाँ जाने की तैयारी करवा दी है, तो जरूर जाऊँगा और कुछ करूँगा।”

“मेरा तुम्हें वहाँ भिजवाने का एक मकसद है। मध्यप्रदेश के तमाम बड़े मन्दिरों में आज भी देवदासियाँ बनाई जा रही हैं...व्यवस्था और शासन सभी लोग इन गरीब हरिजन महिलाओं का शोषण करते हैं...देवदासियों की जिन्दगी से तुम परिचित हो...मैं चाहता हूँ तुम वहाँ जाकर इस देवदासी प्रथा का सफाया कर दो।”

“आप ठीक सोच रहे हैं बाबू जी।” उसने गम्भीर स्वर में कहा था “मैं भी कुछ पुरानी दुखती यादों का बदला लेना चाहता हूँ।”

“ओ.के. बाय। आज शाम दोनों हमारे यहाँ आना। रात का खाना हम सभी साथ ही खाएँगे।”

“जी।”

और फोन बन्द हो गया था।

“बाबूजी ने रात के डिनर पर बुलाया है।”

“अगर वो लफंगा आएगा तो मैं नहीं जाऊँगी।” प्रिया मुँह बिदकाकर बोली थी।

“कौन?” उसने चौंक कर प्रिया की ओर देखा।

“राजीव!”

“लफंगा कैसे है?” वह हँसा “अरे! वो तो मेरा सादू है।”

“भाड़ में जाए ऐसा सादू!” प्रिया गुस्से से बिफरते हुए बोली “शादी से पहले जानते हो...जब भी मुझसे मिलता था...कभी कहता था...अरे प्रिया एक हरिजन से शादी करके क्या सुख पाओगी? फिर सुना है वह हरामी...इसकी माँ एक मन्दिर में देवदासी थी।”

“ऐसा कहा था उसने।” प्रेम चौंक कर बोला था।

“हाँ...।” गम्भीरता से बोली “तब से मैंने उससे बात करनी ही छोड़ दी है...छोटी रमा के बार-बार कहने पर ही उससे बोलना तो पड़ता है।”

“तुमने बाबूजी से नहीं कहा था।”

“कहा था...उन्होंने ही तो झाड़ा था उसे...बोले तुमसे हजार गुण अधिक हैं उसमें। तुम किसी के व्यक्तिगत जीवन में दखल देकर अपनी घटिया सोच का परिचय ही देते हो। उस दिन के बाद वह कम ही आता था।”

“चलो! अगर मिल भी गया, तो मैं आज उसे ठीक कर ही दूँगा!” कहते हुए वह अपनी शर्ट के बटन खोलने लगा था।

रात का डिनर लेकर दोनों वापस लौट आए थे। राजीव वहाँ नहीं आया था। प्रिया की छोटी बहन रमा बीमार थी। घर में मम्मी-पापा और नौकर ही थे। एक भाई था, जो क्लब से लौटा ही नहीं था। आखिर केन्द्र सरकार के होम सेक्रेटरी की कोई हस्ती होती है।

रात सोने से पहले ही प्रेम ने प्रिया से कह दिया था। कल सारा दिन तैयारी में ही बीत जाएगा। बहुत जरूरी सामान ही ले जाना था। इटारसी में उसे सरकारी आवास तो मिलना ही था। ये उनकी अपनी निजी कोठी थी।

अगले दिन।

रात को उनकी ट्रेन थी। सब कुछ आराम से हो गया था। स्टेशन पर प्रिया के मम्मी-पापा भी उन्हें सी-ऑफ करने आए थे।

जब ट्रेन ने सीटी दी थी तभी दोनों कम्पार्टमेंट में चढ़े थे।

इटारसी में उसने एस.एस.पी. का चार्ज ले लिया था। होम सेक्रेटरी का दामाद ऊपर से बड़ा अफसर...भला किसकी मजाल जो कुछ ची-चुकुर कर सके।

पहले ही दिन उसने शहर के सभी मन्दिरों के रिकार्ड मँगवा लिए थे। सारा दिन वह फाइलों में खोया रहा था। शाम होते-होते उसने चार ऐसे बड़े मन्दिरों को चुना था, जहाँ देवदासियों के होने की पूरी सम्भावना थी। पुलिस रिकार्ड में तो इन मन्दिरों का संचालन भिन्न-भिन्न ट्रस्ट देखते थे लेकिन जब उसने हरेक मन्दिर में आठ-दस पुजारियों का जिक्र देखा, तो वह चौंक गया। ये पुजारिनें जरूर देवदासियाँ ही होंगी।

और देवदासी का ध्यान आते ही उसकी आँखों के सामने एक चेहरा उभरा था...उसकी माँ का। और...और बहुत कुछ याद आता चला गया था। उसने पहली बार अपनी माँ के साथ जिस मंदिर में प्रवेश किया था...उसने एक घड़े के समान भारी पेट वाले जनेऊधारी को देखा था। उसके होंठ भी मोटे-मोटे थे, थुलथुल भारी शरीर, शरीर पर सिर्फ धोती और कंधे पर जनेऊ।

उसकी आँखों के सामने विगत की परछाइयाँ किसी फिल्मी दृश्य के समान उभरने लगीं। यूँ ही नीम अँधेरा उस दिन भी था, जब उसकी माँ उसका हाथ पकड़कर झोंपड़ी से बाहर आते बोली 'प्रेम! तू मेरे पीछे-पीछे आना पुजारी देखने ना पाए तुझे। मैं मन्दिर से लाकर प्रसाद तुझे दे दूँगी। वैसे तो ससुरा खाने को भर पेट भी नहीं देगा।'

उस समय वह आठ साल का ही था। उसे आज भी याद था...लम्बी अँधेरी राहदारी में चलते उसने सामने के मन्दिर में शंख और घण्टियों का शोर सुना था, मानों पूरे माहौल में भगवान आ विराजे हैं।

एक छोटे से दरवाजे को चुपके से भीतर ठेल माँ ने उसे भीतर खींच लिया था। तभी!

अँधेरे में कोई बोला था।

“कौन?”

“मैं हूँ परवतिया!”

“अन्दर आ जाओ...पूरब वाला कमरा खाली है। बड़े पुजारी की आज बारी है। तुम्हारा प्रसाद थाली में मेज पर रखा है।”

माँ ने अँधेरे में ही मुझे अपने साथ सटाए कमरे में प्रवेश किया था।

कमरे में धीमा प्रकाश था। एक ओर आले पर दीया जल रहा था। बड़ा-सा कमरा था। कमरे के बीच बड़ा तख्त था...तख्त पर सफेद बिस्तर बिछा था। सिरहाने दो तकिए भी रखे थे।

माँ ने मेज की थाली का प्रसाद मेरे सामने रख दिया था। लड्डू-पूरी देखकर उस समय उसके मुँह में पानी भर आया था। पेट भर खाकर थाली माँ की ओर सरका दी थी। थाली में चार लड्डू और चार पूरियाँ और थीं।

“तू अकेला घर जा सकता है?” माँ ने पूछा था।
 “नहीं माँ!” वह बोला “अँधेरे में अकेले रहना अच्छा नहीं लगता है।”
 “लेकिन तू शोर मत मचाना। यहाँ तख्त के नीचे से बाहर मत निकलना।”
 उसने माँ की बात सुनी थी।
 “क्यों माँ?”
 “पुजारी जी को अच्छा नहीं लगेगा।”
 “ठीक है।”
 और वह तख्त के नीचे छिप गया था।
 कुछ देर बाद ही उसने देखा था। भारी पेट और मोटे होंठों वाले पुजारी को। वह
 जब तख्त की ओर आ रहा था उसका पेट हिल रहा था।
 “परवतिया! तू आब सुबह ही जाना...।”
 “नहीं महाराज! मेरा बच्चा भी है। अकेला नहीं रह सकता।” उसने माँ की
 आवाज सुनी थी।
 “अरे! उसे किसी अनाथाश्रम में छोड़ आ ना...।”
 “नहीं महाराज! वह पढ़ने का बड़ा शौकीन है...मैं तो पाँवों की धूल ही रही...
 मैं उसे कुछ बनाना चाहती हूँ।”
 “अरे परवतिया! कहीं राख में फूल खिलते हैं भला? वो हरिजन है...हरिजन
 कैसे पढ़ सकता है? हमारे वेदों में तो हरिजनों को वेद-पुराणों को सुनने की भी मनाही
 है, पढ़ने की बात तो दूर रही! खैर! छोड़! आलमारी में सोमरस की शीशी है...उसे
 निकाल ले और गिलास में डाल दे...तब तक मैं कपड़े उतारता हूँ।”
 सुनते ही वह सोच में पड़ गया था। पुजारी अपने कपड़े क्यों उतारना चाहता
 है। लेकिन उसके इस प्रश्न का उत्तर उसके पास उस समय नहीं था। आज है।
 तभी! फोन की ट्रिन-ट्रिन सुनाई दी थी।
 फोन की आवाज ने उसकी सोचों को तोड़ दिया था। वह विगत से वर्तमान में
 आ गया था।
 रिसीवर उठाते ही बोला “एस.एस.पी. इज हियर।”
 “सर! मैं सूरजगंज थाने से थाना प्रभारी मेघवाल बोल रहा हूँ। आपने राधाकृष्ण
 मन्दिर के विषय में जानकारी चाही थी।”
 “यस।”
 “वहाँ सात पुजारिनें हैं। सभी मन्दिर के पास बने झोंपड़ों में रहती हैं। उन्हीं में
 एक बुढ़िया है, जिसका नाम परवतिया है।”
 “तुम अपना एक इंसपेक्टर हमारे दफ्तर भेज दो...हम अभी वहाँ जाना चाहते
 हैं!” उसने फोन पर कहा।

“सर! रात हो चुकी है। देहात का मामला है। सुबह मेरा आदमी आपके पास आ जाएगा।”

चन्द क्षण सोचा था प्रेम ने। फिर बोला “ठीक है। साथ में कुछ सशस्त्र सिपाही भी भेज देना।”

“जी सर। नमस्ते।” उधर से कहा गया।

“नमस्ते।”

और फिर फोन रख दिया प्रेम ने।

उसने अपनी चमचमाती मेज पर रखी ऐश-ट्रे को उठाकर सामने रख लिया। फिर दराज से पैकेट निकाल सिगरेट सुलगा ली।

ढेर-सा धुआँ उगलते हुए वह एक ही बात सोच रहा था। मेरी माँ कैसी होगी? मेरे आने के बाद उस पर क्या-क्या बीती होगी?

और जैसे-जैसे वह सोचता गया था, वैसे-वैसे मन भारी होता चला गया था।

टी.वी. पर साक्षरता को लेकर एक फीचर दिखाया जा रहा था। गाँव के स्कूल के कुछ बच्चे पढ़ रहे थे। नंग-धड़ंग बच्चे। उसकी सोचों में एक स्कूल उभरा था। जब वह बहुत छोटा-सा था और चौथी कक्षा में पढ़ता था, तब एक लड़के ने उसकी साफ काली तख्ती पर पैर रख दिया था। वह विगत की गहरी सोचों की खाइयों में उतरता चला गया था।

उसने सामने वाले लड़के को घूरते हुए कहा था “मेरी तख्ती पर पैर क्यों रखा?”

“पैर पड़ गया तो क्या हो गया? तू हरिजन है ही...फिर हरामी भी है...तेरे बाप का नाम क्या है? क्या तू जानता है?”

सुनते ही उसका खून खौल उठा था और अगले ही क्षण उसने वही तख्ती उस लड़के के सिर पर दे मारी थी। एक चीख के साथ वह लड़का वहीं ढेर हो गया था।

उससे पहले कि उसे कोई पकड़ पाता, वह तेज ि से एक ओर भागा था।

घर जाना नहीं चाहता था...जानता था, वहाँ भी उसे पकड़ लिया जाएगा। सारा दिन वह गाँव के पास वाली नदी के किनारे एक पेड़ पर चढ़ा रोता रहा था।

लोग उसे हरिजन क्यों कहते हैं? क्या वह हरामी है?

लेकिन उसकी बात का जवाब नदी का किनारा कैसे देता?

नीम अँधेरा फैलते ही वह घर लौटा था। घर पर माँ उसी को लेकर चिंतित थी।

“कहाँ था? उस बनिया के बेटे को तख्ती क्यों मारी?”

“उसने मुझे हरामी कहा था? क्या मैं हरामी हूँ। मेरा बाप नहीं है?” वह गुस्से से भर उठा था।

“बेटा...ये हमारी बदनसीबी है कि तेरे बाप का पक्का पता नहीं...जो औरत रोज नए मर्द के साथ सोती हो...उसके बाप का नाम कैसे पता चल सकता है?”

“लेकिन इसमें मेरा कसूर क्या है? इस समाज ने ही तो मुझे पैदा किया है।”
माँ बहुत देर तक उसे छाती से चिपका कर रोती रही थी।
जैसे-तैसे रात कट गई थी।

अगली सुबह उसने ठान लिया था अब वह वहाँ नहीं रहेगा और सुबह होते ही वह अपनी माँ को अकेला छोड़कर शहर जाने वाली सड़क पर पैदल ही बढ़ता चला गया था।

“कहाँ खो गए हो प्रेम? मैं कब से आवाजें दे रही थी।”

“आँ...।”

वह चौंका था। सोचें टूट गई थीं। वह विगत से वर्तमान में आ गया।

“बचपन की कुछ यादों में खो गया था। घर से जब भागा था...तब सड़क पर था। इसी सड़क पर चलते-चलते बाबूजी की गाड़ी से टकराया था।”

“ओह!” प्रिया पास ही सोफे पर बैठती हुई बोली...“जो बुरा वक्त बीत जाए...बार-बार उसे याद करके मन दुखी नहीं करना चाहिए। ड्रिंक लेनी है तो बना दूँ...खाना तैयार है।”

“मैं स्वयं बना लूँगा...तुम जरा गर्म कबाब दे दो।” कहते हुए प्रेम फ्रिज की ओर बढ़ता चला गया था। टी.वी. पर अब समाचार आने लगे थे।

प्रेम प्रिया के बगल में ही लेटा था। खिड़की से आती ताजी हवा अच्छी लग रही थी। दूर-दूर तक सन्नाटा! सितम्बर का महीना था।

प्रिया करवट बदलकर प्रेम के चेहरे की ओर देखते हुए बोली “जब तुम हमारे घर पर रहते थे, तो अपने आप पढ़ते रहते थे। पहले तुमने हायर सेकेण्डरी की...फिर बी.ए. और फिर आई.ए.एस का टेस्ट दिया। पापा बड़े हैरान थे कि तुम इतने तेज कैसे हो पढ़ने में। उन्होंने सारा खर्चा उठाया था। तुम्हें याद है जब पापा से तुमने कहा था...बाबूजी! ये अहसान कैसे चुकाऊँगा?”

“नहीं,” प्रेम ने प्रिया के गोरे गाल पर अपनी उंगली छुआते कहा था।

“पापा ने कहा था...तुम एक दिन मेरे दामाद बनोगे...समझो दहेज दे रहा हूँ तुम्हें।”

“ओह।” वह मुस्कराया था। और प्रिया की नाक को पकड़ हौले से हिलाकर बोला “तभी तुम शरमा कर मेरे सामने से भाग गई थीं।”

और फिर दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े थे।

देर तक अतीत की बातें करते दोनों ना जाने कब गहरी नींद सो गए थे।

पुलिस की जीप। सड़क के दोनों ओर घना जंगल था। पीछे एक और जीप थी। जिसमें दस-बारह सशस्त्र सिपाही बैठे थे।

प्रेम ड्राइवर के बगल वाली सीट पर बैठा था। पीछे कई मातहत अधिकारी भी थे।

“यहाँ से सूरजगंज कितनी दूर है?”

“बस। तीन किलोमीटर और है साब।” ड्राइवर जीप को बाईं तरफ मुड़ती सड़क पर मोड़ते बोला।

काली सड़क तेजी से पीछे भागती जा रही थी और जीप आगे भाग रही थी।

कुछ देर बाद ही मुख्य सड़क से एक कंक्रीट बिछी सड़क नजर आई। जीप उस पर मुड़ गई थी। थोड़ी दूर पर गाँव नजर आ रहा था। गाँव के किनारे ही एक बड़ा मन्दिर था। थोड़ा आगे सड़क के बाईं ओर बड़े पीपल के पेड़ के पास ही बड़ा-सा तालाब था, जिसमें भैंसें पड़ी नजर आ रही थीं। सामने एक बैलगाड़ी भी आ रही थी। उसी के पीछे एक लड़की छोटा-सा डंडा लिए भैंस हाँकती आ रही थी।

गाँव में पुलिस का काफिला देखकर कुछ लोग चौंक कर देखने लगे थे। प्रेम ने देखा छोटे बच्चे तो घबरा कर कच्चे घरों में जा छिपे थे। देखने में गाँव काफी बड़ा था। कुछ मकान पत्थर के बने थे। कुछ कच्ची मिट्टी के झोंपड़े भी थे।

पुलिस काफिला मन्दिर के मुख्य द्वार पर जाकर रुका। सबसे पहले पीछे की जीप से सिपाही उतर कर अगली जीप के अगल-बगल खड़े हो गए थे।

प्रेम आराम से दरवाजा खोलकर बाहर निकला। इस समय उसने वर्दी पहन रखी थी।

मन्दिर के गेट के पास ही तख्त पड़ा था। सभी उस पर बैठ गए। तभी अन्दर से चार-पाँच पुजारी भागकर आते नजर आए।

कुछ देर बाद ही सभी पुलिस दल के साथ खड़े थे।

“राम-राम हुजूर साहब...! यहाँ कैसे आना हुआ?” एक नंगे-बदन जनेऊ और धोतीधारी पुजारी ने कहा था।

“आपके मन्दिर में कितनी पुजारिनें हैं।”

“सात हैं हुजूर।”

“हम उनसे मिलना चाहते हैं।”

“इसके लिए आपको ट्रस्ट से इजाजत लेनी होगी। बिना इजाजत हमें उनसे किसी को मिलवाने की मनाही है।”

“ऐसा नियम किसने बनाया?”

“ट्रस्ट ने...!”

“और हम क्या हैं?”

“आप अफसर हैं।”

“इन्स्पेक्टर सातों पुजारिनों को ले चलो...साथ में इन पुजारियों को भी। कोई कुछ बोले तो मत सुनो।” प्रेम ने आदेशात्मक लहजे में कहा था।

और पुलिस ने पुजारियों को घेरे में ले लिया था।

प्रेम अपनी जीप में जा बैठा था। दो अंगरक्षक भी उसके साथ जीप में बैठ गए थे। वह अपनी माँ से सबके सामने मिलना नहीं चाहता था। मामूली से विरोध के बाद सभी ने समर्पण कर दिया था।

लगभग आधे घंटे बाद सूरजगंज थाने में सभी को ले आया गया था।

प्रेम ने अपने मातहत से कहकर परवतिया को बुलवा लिया था।

पूरे तीस साल बाद जिस बूढ़ी औरत को देखा था...उसे देख उसका मन भारी होता चला गया था।

झुर्रियोंदार चेहरा...दुबला-पतला शरीर...साधारण-सी धोती पहने वह एक देवी जैसी लग रही थी। लेकिन उसके चेहरे पर घबराहट थी। शायद सोच रही थी...बड़े साहब ने उसे क्यों बुलाया है?

“मुझे पहचानती हो?” वह गम्भीरता से उसके चेहरे की ओर देखते हुए बोला।

“नहीं साब!” उसने हाथ जोड़ दिए थे।

अब प्रेम से नहीं रहा गया था। झटके से सीट से उठा था और उस औरत से लिपट गया था।

चन्द्र क्षणों के लिए वह बौखला गई थी।

“मैं...मैं...तेरा परेमा हूँ माँ...तेरा बेटा परेमा,” कहते हुए उसकी आवाज लड़खड़ा गई थी।

“क...क्या कहा मैं...।” वह हकला-सी गई थी।

“हाँ...माँ तुम्हें अभी हमारे घर चलना है। तेरी बहू भी है।”

फिर वह बूढ़ी औरत किसी पागल के समान उसका चेहरा चूमती चली गई थी।

और फिर देर तक दोनों रोते रहे थे।

फिर जब संभले थे तब थाना प्रभारी को सारी बातें समझाकर माँ के साथ जीप पर आ बैठा था। साथ के सिपाही हैरान थे।

जीप में बैठने से पहले उसने थाना प्रभारी को बतला दिया था कि वह जिसे साथ ले जा रहा है वह उसकी माँ है। थाना प्रभारी दंग रह गया था।

कुछ देर बाद ही प्रेम की जीप उसके सरकारी फ्लैट की ओर भाग रही थी। उसने पास ही बैठी माँ के चेहरे की ओर निगाहें घुमाकर देखा था...उस चेहरे पर एक चमक थी। एक ऐसी चमक जो बहुत कम लोगों के चेहरे पर नजर आती है।

प्रह्लाद चन्द्र दास

लटकी हुई शर्त

गंगाराम, गंगाराम, गंगाराम, गंगाराम ।

दुबला-पतला सींक-सा लड़का गंगाराम और पीछे-पीछे चिढ़ाती हुई उदंड लड़कों की टोली गंगाराम, गंगाराम, गंगाराम, गंगाराम...अच्छे-खासे नाम की ऐसी की तैसी कर दी थी बदमाशों ने । गंगाराम इक्के-दुक्के लड़कों के साथ विरोध करता, कभी-कभार लड़ भी जाता, लेकिन जब लड़कों की पूरी टोली ही उसके पीछे पड़ गई हो, वह क्या करता? वह रोता, खीझता और अन्त में भाग जाता । लड़के जोर-जोर से चिल्लाने लगते भाग गया गंगाराम, भाग गया गंगाराम ।...गंगाराम अपनी बेबसी पर रोता । क्रोध से उसके नथुने फूल जाते, पर...

पर, समय भी कैसे पलटा खाता है! वही गंगाराम आज इलाके का प्रसिद्ध गंगा बाबू है और अभी जब 'कुल्ही-पटान' में उसके बाल-बच्चे घोड़े दौड़ाते हुए सरपट निकल जाते हैं, तो उसके गंगाराम, गंगाराम वाले साथी उजबक-से उनके पीछे उड़ती हुई धूल को देखते रह जाते हैं!

वही गंगाराम आज जय-जयराम हो गया है । अर्थात् उसे देखकर लोगों के हाथ उठ जाते हैं जयराम जी की, जयराम जी की...

गंगाराम की सफेद मूंछों के अन्दर ढके मुँह में मंद-मंद हँसी बिखरती रहती है ।

तब, आदमी बचपन में अलग होता है, जवानी में अलग और बुढ़ापे में अलग । और बचपन का तो बाद की जिन्दगी से क्या मेल? खासकर गंगाराम जैसे लोगों का? लेकिन है । और किसी का ना हो, गंगाराम का है ।

बात जिस इलाके की है वहाँ 15-20 घर ठाकुरों के और डेढ़ सौ घर, सरकारी भाषा में, कमजोर वर्गों के, ठेठ भाषा में पासी, दुसाध, चमार और अहीर आदि के । अलबत्ता, सभी एक दूसरे-से आवश्यक दूरी पर । और जैसा कि होता आया है पन्द्रह-बीस घर ठाकुर इलाके के सिर-मौर, बाकी सब दुम हिलाते हुए पीछे-पीछे ।

गंगाराम इन्हीं में से एक गरीब दुसाध का लड़का था । गंगाराम के बचपन में

सिर्फ दुसाध भर कह देना काफी था, किसी विशेषण की जरूरत नहीं थी। वैसे हरिजन शब्द का भी इस्तेमाल किया जा सकता था लेकिन इससे एक तरह के बड़े वर्ग का बोध होता है, जातिगत विशेषता का पता नहीं चलता। जाने-अनजाने में किस तरह सरकार ने एक वर्ग-चेतना (?) का बीज बो दिया है। है न?

लेकिन सरकार का क्या है! दुसाध को लड़की की शादी करनी है, तो दुसाध ही खोजेगा। फिर यह 'हरिजन-हरिजन' करने से किसी को इन बारीकियों का पता कैसे चलेगा?

खैर, सरकार की बात दूसरी है, गाँव-घर की बात दूसरी।

तो, गंगाराम इन्हीं में से एक गरीब दुसाध का लड़का था कमजोर और दुबला-पतला, जैसा कि मैं ऊपर कह आया हूँ। जितना कमजोर और दुबला-पतला वह था, खाना उतना ही अधिक खाता था। लोग कहते हैं उसका पेट है कि पाताल, पता ही नहीं चलता। और जो इतना खाता है, वह जाता कहाँ हैं? अपने घर में तो 'भुंजी-भाड़' नहीं, इसलिए अपने घर की बात क्या करना, लेकिन जब ठाकुरों के घर किसी 'क्रियाकर्म' में वह खाने को बैठा देखने वाले देखते ही रह जाते! और रामकिसुन बाबू की बेटी की शादी में तो कमाल ही हो गया!

शादी हो चुकी थी। भोज चल रहा था। गंगाराम जिस पंगत में बैठा था, उसके अगल-बगल और पंगतें थीं। लेकिन धीरे-धीरे सारी पंगतें उठ गईं। गंगाराम की पंगत वालों ने थोड़ी देर गंगाराम के 'हाथ बारने' का इन्तजार किया लेकिन गंगाराम था कि खाए जा रहा था। हार-पार वे भी उठ गए।

काना-फूसी होने लगी "कौन खा रहा है?"

"गंगाराम!"

"किसका लड़का है?"

"अरे, गाँव के एक दुसाध का लड़का है।"

फिर लोग जोर-जोर से पूछने लगे "कौन खा रहा है!" कौतूहलवश सभी उसे देख रहे थे।

ताज्जुब की बात! उतनी व्यस्तता में भी रामकिसुन बाबू ने जब यह बात सुनी, तो अपने को रोक न सके। उसी के सामने एक कुर्सी डलवाकर बैठ गए। बोले "गंगाराम, तुम डरो मत। खाए जाओ।" फिर परोसने वाले को बुलाया और कहा, "तुम भी वहीं रुक जाओ और गंगाराम जैसे-तैसे खाते जाता है, तुम देते जाओ।" गंगाराम ने कृतज्ञतापूर्वक एक बार रामकिसुन बाबू को देखा और फिर खाने में जुट गया था। ऐसा खाना बरस-दो-बरस में भी तो नसीब नहीं होता है।

उधर अस्तबल में गंगाराम का बाप, हरखु चमार के साथ घोड़ों के लिए सानी-पानी कर रहा था। बात वहाँ तक भी पहुँच गई। बाप बेचारा तो शरम से कट गया। उसने

हरखु से कहा “हरखु ज रा जा के उस हरामजादे को उठा लावो तो भाई। पूरा गाँव तो उस ‘पेटू’ को जानता ही है, बाहर के इन बारातियों के सामने भी मेरी नाक कटा रहा है।”

हरखु एक अच्छे दोस्त की भाँति हाथ-मुँह धोकर भोज-स्थल पर गया। करीब-करीब सभी लोग खड़े होकर गंगाराम का यह तमाशा देख रहे थे। शरम हरखु को भी लग गई। ‘साला, पूरी गरीब बिरादरी की नाक कटा रहा है। ऐसा तो नहीं कि आज टूँस कर खा लेने के बाद कल से भूख ही नहीं लगेगी?’ सामने रामकिसुन बाबू को बैठे देखा तो एक बार को ठिठका। लेकिन बात बर्दाश्त से बाहर होने लगी थी। लोग जोर-जोर से हँसने लगे थे। वह लपक कर गया और खप से गंगाराम का दाहिना हाथ ही पकड़ लिया। एक कौर मुँह में, गंगाराम अकचका गया।

रामकिसुन बाबू के मनोरंजन में बाधा पड़ी। फिर भी वे बिगड़े नहीं। शायद अपनी लड़की की शादी थी इसीलिए। हँसकर बोले “जाओ, अब खावोगे भी कैसे। चमार ने तो छू दिया।” गंगाराम ने भी इसे महसूस किया वह तो ऊँच जात का है। उसने धीरे से कौर पत्तल पर रखा और उठने लगा। यहाँ भी हँसी। उससे उठा ही नहीं जा रहा था। हरखु ने तो पकड़ ही लिया था उसी ने तौलकर उठाया।

“क्यों पिल पड़ते हो इस तरह खाने पर।”

बाद में हरखु ने उसे समझाने की कोशिश की थी “यह ठीक है कि हम लोग देवताओं की तरह धूप-सुगंध और फूल की खुशबू सूँघ कर नहीं रह सकते। हमें भरपेट भात चाहिए ही चाहिए। लेकिन इस तरह जलील होकर? यह भी ठीक है कि हमें कभी बढ़िया खाना नसीब नहीं होता और बाबू लोगों के यहाँ किसी अवसर पर ही ऐसा खाना मिलता है लेकिन...”

गंगाराम ने बात काट दी थी। कहा था “काका, मैं सिर्फ पेट भरने के लिए ही नहीं खाता। मैं खा-खा कर इतना ताकतवर हो जाना चाहता हूँ कि मुझे जो लड़के रात-दिन चिढ़ाते रहते हैं गंगाराम-नंगाराम कहके मैं अकेले उन सबों को सबक सीखा सकूँ।”

हँस पड़ा था हरखु। कहा था “ठीक है, लेकिन वह ताकत एक बार पेट टूँस लेने से नहीं आती है। उसके लिए तो रोज-रोज भरपेट खाना मिलना चाहिए...।”

और रोज-रोज भरपेट भोजन का इन्तजाम कर लिया था गंगाराम ने!

वह दिन और यह दिन!

ठाकुर रामकिसुन के अस्तबल में घोड़ों को सानी-पानी खिलाता था उसका बाप। आज खुद वह अस्तबल का मालिक है। भोजन देखकर पेट भरने के लिए टूट पड़ने वाला गंगाराम खुद कितने लोगों का पेट भरता है! दस-कट्टे में फैला हुआ उसका मकान। परिजनों-कुटुम्बों से गहगहाता हुआ उसका परिवार। कभी-कभी गंगाराम अपनी

छत पर टहलता हुआ विगत इतिहास की तरह पूरे इलाके को देखता जाता है। देखता जाता है और सोचता जाता है। सोचता जाता है किस तरह 'लक्ष्मी' ठाकुरों की बस्ती से सरकती हुई धीरे-धीरे उसके पास आती गई। आन-बान और शान में जीने वाले ठाकुर किस तरह आन-बान और शान में ही खोखले होते गए और...

और वह मन ही मन सिर झुकाता है हरखु काका के प्रति, जिसने उसे उस दिन हाथ पकड़कर भोज पर से उठा लिया था। और समझ में आने के बाद उसे दूर-दूर तक लोगों की हँसी अपना पीछा करती हुई लगी थी। यह पेट! हाँ ये पेट ही तो सारे अनर्थों की जड़ है। पहले इसी का जुगाड़। उसकी दृष्टि गई अपने हाथों पर बहुत छोटे थे उसके हाथ! उसने अपने पिताजी के हाथों की ओर देखा था। वे रामकिसुन बाबू के अस्तबल में, सानी-पानी में फँसे थे। और सानी-पानी करते हुए उसके पिता एक दिन चल बसे थे। मरते-मरते वे अपने 'पितृधर्म' का पालन जरूर कर गए थे गंगाराम की शादी करा गए थे। गंगाराम छटपटाकर रह गया था। लेकिन उसने हिम्मत नहीं हारी। कभी के 'पेटू' गंगाराम ने अपना पेट काट-काट कर किसी तरह बेटे को पढ़ाया-लिखाया। कभी-कभी गंगाराम को हरखु काका की तरह गाँधी बाबा को भी प्रणाम कर लेने का मन करता है, क्योंकि पढ़ने-लिखने के तुरंत बाद 'मुनुआ' की नौकरी लग गई बैंक में। मुनुआ ने बाद में समझाया था कि गाँधी बाबा ने ऐसी व्यवस्था कर दी है कि दुसाध, चमार, पासी आदि छोटी जात के लड़कों को, पढ़ने के तुरन्त बाद नौकरी लग जाती है। अभी दूसरा बेटा शिवचरण बताता है कि ऐसा अम्बेडकर नाम के एक आदमी के कारण हुआ था। लेकिन किसी के भी कारण हुआ हो जैसे-जैसे उसके बेटे बड़े होते गए, दनादन नौकरी में लगते गए। मुनुआ बैंक में, शिवचरण पुलिस में, हरिचरण ब्लॉक आफिस में...

और गंगाराम अपने बड़े होते हुए हाथों की ओर हर्ष के साथ देख रहा था। हरखु काका तब भी जीवित थे और समय-समय पर आते रहते थे। उन्होंने समझाया था "बेटा, ऐसा नसीब किसी-किसी का होता है। किसी को धन मिलता है, तो जन नहीं, किसी को जन मिलता है तो धन नहीं। तुम्हारे पास अभी 'धन-जन' दोनों हैं। थोड़ा 'बुद्धि विवेक' से काम लेना। धन से मतिभ्रम भी होता है। बाबुओं की तरह 'कुचलन' से बचना।"

बाबुओं की कुचलन। गंगाराम को हँसी आती है। बाबुओं में 'कु-चलन' नहीं होता तो क्या गंगाराम, गंगाराम होता? वह वही गंगाराम, गंगाराम नहीं रहता?

बाबुओं में आन-बान और शान के अलावा एक और 'कु-चलन' था लड़कियों का शौक। घर में सुन्दर-सुशील पत्नियों के रहते, पता नहीं कहाँ-कहाँ से बाबूलोग, कैसी-कैसी लड़कियाँ उठा लाते थे! एक 'औरत' से सन्तुष्ट रह जाए वह 'क्षत्रिय' कैसा? क्षात्रधर्म और मर्दानगी की यह एक नई परिभाषा थी उनके सामने। और यही

परिभाषा ले डूबी उन्हें। ये दूसरी-तीसरी औरतें लाई ही जाती थीं, तफरीह के लिए। ये पान खातीं, शराब पीतीं और तरह-तरह की फरमाइशें करतीं। बाबूलोग इनके पीछे धीरे-धीरे चुकते जाते। हालाँकि इन औरतों में भी किसी-किसी ने इतिहास बना दिया और अपनी कर्तव्यपरायणता के लिए आज भी इलाके में याद की जाती हैं लेकिन इसकी तादाद बहुत कम थी। अधिकों ने बाबुओं को लूटा और चल पड़ीं। हालाँकि कुछ को बाबुओं ने पेशे में भी डलवा दिया। कहावत में डूबते आदमी को सिर्फ तिनके का सहारा दे सकता है और उन्हीं क्षणों में बाबुओं के यहाँ की लक्ष्मी गंगाराम के हाथों सरकने लगी थी। बड़े-बड़े मौकों पर काम दिया गंगाराम ने, बाबुओं को। तीनों कमाऊ पूत कैसे एक जगह इकट्ठे हो रहे थे। उनका इससे बढ़िया उपयोग क्या हो सकता था। लेकिन कैसे क्या यों ही दिए जाते हैं? गंगाराम ने तो पहले हाथ जोड़ दिए थे मैं एक अदना-सा आदमी! क्या मुँह लेकर आपके दरवाजे पर 'पैसे' वसूल करने जाऊँगा?

दरवाजे पर के बाबू को ताव आ गया था “मैं न उधार माँगने आया हूँ, न भीख माँगने। इतनी सम्पत्ति पड़ी है मेरी। ले लो एक।” कहा न, आन, बान, शान और बस, एक, दो, तीन...गिनती का तो कोई अन्त नहीं है न। फिर बाबू भी बढ़ते गए।

एक, दो, तीन, और उधर गंगाराम गड़ियाँ गिन रहा था एक, दो, तीन...इसी बीच एक दिन हरखु काका फिर आ धमके थे! जी हाँ, इस बार 'आ धमके' थे। आए तो थे वे 'नेउता' लेकर। इस बार रामकिसुन बाबू की पोती की शादी हो रही थी। लेकिन हरखु काका ने नेउता क्या दिया था नेउता के बहाने धमकी दिया था। कहा था “गंगाराम मैंने इसी दिन के लिए तुम्हें सचेत किया था।”

“हुआ क्या काका।”

“होगा क्या खाक? मैंने अभी-अभी शिवचरण को दुखहरण बाबू की लड़की के साथ खलिहान में देखा।...ये बुराइयाँ आती ही हैं धन के साथ। इसीलिए ...”

“पर काका बाबुओं ने एक समय हमारी बहू-बेटियों के साथ भी...”

“नहीं गंगाराम, बदला नहीं। और बदला भी तो...इस तरह से तो बिल्कुल नहीं।”

गंगाराम मायूस हो गया था।

बात आगे बढ़ाई थी हरखु काका ने “ताकत है तो एक प्रतिकार करो।”

“कैसे?”

“रामकिसुन बाबू की बेटी की शादी वाली वो घटना याद है तुम्हें?”

गंगाराम का काला चेहरा भी सुर्ख होता नजर आया।

“मैं उस घटना की याद तुम्हें 'छोटा' करने के लिए नहीं दिलाना चाहता हूँ। वो तो तुम्हारे बचपन की बात है। मैंने तुम्हें भोज पर से हाथ पकड़कर उठाया था लेकिन तुम पत्तल हाथ में लेकर ही उठे थे, याद है?”

गंगाराम ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

“और आज भी वही नियम चल रहा है। जब हम उनके यहाँ नौकर होते हैं तब की बात नहीं करता तब तो हम खाते हैं, अपना जूठन आप साफ करते हैं और हमें मलाल नहीं होता। लेकिन जब भोज में ‘नेउत’ कर ले जाया जाता है तब भी? और जब हम बाबूओं को नेउता देते हैं, तो हमें ‘सूखा’ पहुँचाना पड़ता है। वे हमारे यहाँ बैठकर नहीं खाते। और जो हम सूखा देते हैं, पता नहीं, उसको भी वे खाते हैं, या नौकर-चाकरों को दे देते हैं। इसके बारे में कभी सोचा है तुमने? समर्थ हुए तो जाति की इस दीवार को तोड़ो या फिर ऊँची जाति के होने के उनके दंभ को।” कहते हुए हरखु काका नीचे उतर गए थे। गंगाराम सोचता रह गया था।

धमाका हुआ था, इस बार इलाके में रामकिसुन बाबू की पोती की शादी में कोई भी ‘इतर’ जात खाने नहीं जायगा। रामकिसुन बाबू अभी जीवित थे। सुना तो सन्न रह गए आखिर क्यों?

गंगाराम ने ऐसा कहलवा भेजा है।

रामकिसुन बाबू ने अपना विशेष विश्वासपात्र गंगाराम के पास भेजा “मेरी ही पोती की शादी पर ऐसी प्रतिज्ञा क्यों?”

“यह सिर्फ संयोग की बात है कि आपकी पोती की शादी है। और हम खाने से कहाँ इन्कार करते हैं? बस शर्त यही है कि खाने के बाद हम अपना पत्तल नहीं उठाएँगे। ‘नेउत’ कर ले जाते हैं तो सचमुच सम्मान दीजिये। और यह सम्मान अगर आपने दिया तो सबने दिया क्योंकि आप तो गाँव के सिरमौर हैं।”

यह बात भी सुननी थी वह भी गंगाराम के मुँह से? गंगाराम रखता है शर्त जिसका बाप रामकिसुन बाबू के अस्तबल में घोड़ों को नहलाते-धुलाते, सानी-पानी करते मर गया! समय सचमुच बड़ा बलवान है! गंगाराम एक ‘धनी दुसाध’ हो गया है अब। अब उसे सम्मान चाहिए।

“नहीं। यह नहीं होगा।” रामकिसुन बाबू चिल्लाए थे जाकर गंगाराम से कह दो वह अपनी औकात पहचाने।” कहने की जरूरत नहीं थी। अपनी औकात पहचानने लगा था गंगाराम। उसने पूरे इलाके में मुनादी करवाई शादी के दिन सबों का भोजन मेरे यहाँ। तनाव बढ़ गया था। खेमेबंदी होने लगी। गंगाराम को यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि ‘सम्मान’ पाने के लिए सभी ‘इतर’ लालायित थे, जो उसके छत्र तले आ खड़े हुए थे। गंगाराम अचानक अपने को बहुत ताकतवर आदमी समझने लगा। रामकिसुन बाबू उसके सामने बौना लगने लगे थे।

ठीक शादी के दिन बहुत बड़े भोज का आयोजन हुआ। ‘गाँव की बेटा की शादी में दुसाध-चमार सबों ने जाकर रामकिसुन बाबू के यहाँ काम किया जरूर पर खाया नहीं किसी ने।’ खाना खाया सामान्तर भोज में गंगाराम के यहाँ।

उसके भोज से, हरखु काका, जब खाने के बाद जाने लगे तो गंगाराम ने रोक लिया “मुझे तुम्हारे पैर छू लेने दो काका। अगर तुम न होते...!” हरखु काका बूढ़े हो चले थे। आँखें भी धुंधली हो चली थीं। लेकिन उन धुंधली आँखों में भी जो चमक आई और गई उससे निहाल हो गया गंगाराम।

आज हरखु काका नहीं हैं लेकिन उनकी तजवीज ने कितनी ताकत दी गंगाराम को, कैसा एहसास दिलाया इलाके वालों को, इसे कभी भूल पाएगा गंगाराम?

गंगाराम ने हरखु काका के उस ऋण को भी अच्छी तरह चुकाया है उनके नाम से एक स्कूल खोल कर हरखु राम हाई स्कूल।

क्या होगी इससे बेहतर श्रद्धांजलि? क्या होगा इससे बेहतर पैसे का उपयोग? ताकि वहाँ से और निकले मुनुआ और निकले हरिचरण और निकले शिवचरण और, और-और बनें गंगाराम।

वह दिन और यह दिन।

गंगाराम की शर्त जहाँ की तहाँ लटकी हुई है। कितनी शादियाँ बाबुओं के हुई, कितनी शादियाँ ‘इतरों’ के यहाँ हुई, लेकिन न इन्होंने उनके यहाँ खाया न उन्होंने इनके यहाँ। पहले तो ‘सूखा’ भी चला करता था, अब तो वह भी बन्द हो गया है।

गंगाराम अलबत्ता बाबुओं की मदद ही करता है दरी, पेट्रोमेक्स आदि-आदि ऐसे अवसरों पर काम आने वाली चीजें देकर। कभी-कभी अपनी दोनों बन्दूकें भी दे देता है शादी-ब्याह में बाबुओं के दरवाजे पर गोली छोड़ने का रिवाज चलाए रखने के लिए। अगर बन्दूकें चलाने वाला कोई न हुआ, तो अपने बेटों व पोतों को ही भेज देता है। लेकिन खाना? ना बाबा! खाने की वही शर्त। मंजूर है तो कहो हम आते हैं।

कौन करेगा मंजूर? एक कोइरिन थी, रानी बन गई, जो बैंगन को टैंगन कहने लगी।

गंगाराम ने पूरे इलाके को बर्बाद कर दिया। कितने मेलजोल से, भाईचारे के साथ रहते थे लोग। गंगाराम की सफेद मूँछें फड़फड़ाने लगती हैं।

फाँसी

“दिन भर चराना छेरी और रात को आकर यहाँ सो जाना, बस दो सौ महीना चित्त । हर्र लगे न फिटकरी । घर राखना छेना थापना इसी को कहते हैं । और फिर देखना भी क्या चावल, खाद, शक्कर, तेल का पीपा यही तो है यहाँ । कोई हीरा मोती तो है नहीं ।” छत्तूलाल को कोऑपरेटिव स्टोर्स का बाबू कुछ इतने प्रेम से यह सब समझा रहा था कि पास बैठे छत्तू के पिताजी ने झट कह दिया “हव, हव जा । जवानी हे कमाय बर सुते बर नोहय जा । बने काहथे बाबू हा ।” छत्तू मजबूर-सा हो गया । छत्तू का गवना इसी बरस जड़काले में तय था । इसलिए वह कुछ ना-नुकुर कर रहा था । जानता था कि कोऑपरेटिव की चाकरी कोई दो-चार दिन के लिए तो नहीं । फंदा गए तो फंदा गए । पेरते र्हो फिर घानी कस बड़ला गोले-गोल । छत्तू ने थोड़ा-सा हीला-हवाला किया मगर मुंशी की मनुहार और बाप की दुत्कार के आगे उसकी एक न चली और छत्तूलाल हमारे गाँव के कोऑपरेटिव स्टोर्स का बाकायदा रात का गार्ड बन गया ।

हमारे गाँव में तकरीबन दस बरस से यह कोऑपरेटिव बना है । आस-पास के किसान यहीं से खाद, शक्कर और कोटे का अन्य सामान प्राप्त करते हैं । सामान तो कुछ खास बड़े मातवर लोग ही प्राप्त करते हैं । धाक वाले लोग । बीस-बीस किलो शक्कर एक ही घर में पहुँचती है । बाकी के छोटे किसान किलो आध किलो लेकर संतुष्ट हो जाते हैं । लेकिन सरकारी कारोबार है । भवन है, कुछ बोरे चावल हैं । खाद की बोरियाँ हैं, तो चौकीदार रखना लाजिमी है । चौकीदार के लिए राशि भी दो सौ की रखी गई है । इसीलिए दो बरस पास के गाँव के रज्जब अली ने चौकीदार का काम किया । वे शाम को अपनी कबरी बकरी के साथ टहलते हुए आ जाते । कंधे पर पचास बरस पुराना उनका पुश्तैनी फरसा होता और अंटी में दो तोला गांजा । शाम से ही धूनी रम जाती । पास गाँव के बूटी प्रेमी आ धमकते और फिर देर रात तक चिलम दगदग करती । जय बमशंकर का उद्घोष गाँव तक पहुँचता । गाँव के बाहर बने कोऑपरेटिव

के भवन में रज्जब अली फिर तान दुपट्टा लगाकर सो जाते और सवेरे छः बजे बाबू के आने के बाद गाँव की ओर रवानगी डालते। हर आगन्तुक को आओ बाबाजी, बैठो बाबा, आइए पिताजी, आप इधर आ जाइए। अरे बैठो मेरे बाप जाते कहाँ हो? कुछ इस तरह के सम्बोधनों से रज्जब अली नवाजते। आगन्तुक बिना दाम यूँ ही बिक जाता। इसलिए ललकार कर कहते

‘छेरी पोसना गाँजा पीना रज्जब का है काम
सोते हैं हम तानकर, ले बाबा का नाम।’

और वाकई रज्जब के रहते कभी कोई बखेड़ा खड़ा नहीं हुआ। चोर और मुंशी दोनों पर उसके फरसे का अच्छा प्रभाव रहा। हेराफेरी अलबत्ता हुई, मगर रज्जब को गाँजे भर से मतलब था। वह कहता था कोई अपनी मैया धराए, हमें न सताए बस। इसीलिए हेराफेरी शानदार ढंग से होती भी रही और रज्जब की चिलम दगदगाती रही। दुनिया भर के हेराफेरी का इतिहास गवाह है कि पूरी सतर्कता एवं योजनाबद्धता से की गई सरकारी माल की हेराफेरी कभी पकड़ने योग्य नहीं पाई गई। रज्जब जानते थे कि पकड़े केवल वे जाते हैं जिन्हें पकड़वाने के लिए उस्ताद मुलाजिम फंदा डालकर फँसाते हैं। तंत्र के भीतर का व्यक्ति अपने निजी स्वार्थों के कारण ही जब विद्वेषवश फूट जाता है, सरकारी मुलाजिम तभी पकड़ा जाता है। वरना सरकारी लूट का रास्ता ही समृद्धि की मंजिल तक निष्कण्टक पहुँचने का सर्वाधिक सुरक्षित मार्ग है। मगर इसके लिए भी संयम और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। रज्जब मुंशी की योग्यता जानते थे, इसलिए आश्वस्त थे। मुंशी एक माहिर सरकारी मुलाजिम है। विगत दस बरसों से एक ही स्थान पर जमे हैं। फूल रहे हैं, फल रहे हैं और अपने वंश की वृद्धि कर रहे हैं। मगर गंजेड़ी रज्जब को मुंशी ने कुछ दिनों बाद निकाल दिया। वैसे भी चिलमवाज कब उजड़ जाए और कब आफत खड़ी कर दे, इसका विश्वास नहीं रहता। मुंशी ने अपने हिसाब से ठीक ही किया। उन्होंने रज्जब अली के बाद दो और चौकीदारों को अवसर दिया मगर दोनों भोंदू निकले। मुंशी जी के शब्दों में ‘जमीन पर झाड़ा फिरने वाले दुगोड़िया, काम के न काज के दुश्मन अनाज के’ मुंशी जी ऐसे अनाज के दुश्मनों को बर्दाश्त नहीं करते।

मुंशी जी कहते हैं कि बोरों से थोड़ा-थोड़ा शक्कर निकालकर अलग कर लो, वे यह न कर पाते। मुंशी जी खाद के बोरों से भी ऐसी ही सलूक चाहते, मगर वे हाथ ही न बँटाते। इसलिए उन्हें चलता कर मुंशी जी ने खोज-बीन के बाद छतूलाल को प्राप्त किया। छतूलाल को उसके बाप से माँग लेने के बाद मुंशी जी रात को चैन से सोने लगे और छतूलाल की नींद हराम हो गई। यह शासकीय कोऑपरेटिव है तो हमारे गाँव के नाम पर, मगर सही मायनों में यह हमारे गाँव की सीमा में नहीं है। हमारे गाँव का तो खाली नाम ही है, वस्तुतः यह है दूसरे गाँव में। मगर चूँकि आसपास के पन्द्रह

गाँवों के लिए इसे खोला गया है, इसलिए तत्कालीन सरपंच ने अपने प्रिय गाँव में इसे स्थापित करवा दिया। नाम हमारे गाँव का और काम आन गाँव का। हमारे गाँव के साथ हमेशा ही ऐसा होता आया है। हमारा गाँव बुद्धिजीवियों का गाँव कहलाता है। इसीलिए यहाँ मतैक्य नहीं बन पाता। यह कोऑपरेटिव ही क्यों सभी कुछ हमारे गाँव के बाहर चला गया। पंचायत का नाम हमारे गाँव पर रखा गया है, इसलिए केवल ग्राम सरपंच भवन भर यहाँ है। मुख्यालय जो ठहरा। मगर न यहाँ का व्यक्ति सरपंच बनता है और न यहाँ कोई तरक्की हो पाती है। आश्रित गाँवों के संगठित लोग अपने मन की कर लेते हैं और हमारा बुद्धिजीवियों का तथाकथित बड़ा गाँव टापता रह जाता है। कोऑपरेटिव का भवन भी, जब हमारे गाँव की सीमा के बाहर आश्रित गाँव के मैदान में बना, तो हमारे गाँव के बुद्धिजीवियों ने विरोध तो किया मगर अपने घरों में या फिर लिल्लाचौरा के पास पासा दुलाने से बचे हुए खाली समय में। इसकी कोई परवाह भी नहीं करता। न शासन को हमारे गाँव की परवाह रहती है न सरकारी मुलाजिम को और न ही विधायक को। ऐसी मान्यता है कि विधायक हमारे गाँव में आने से ही घबराता है। सरकारी हाकिम भी अनिच्छापूर्वक ही इधर का कार्यक्रम बनाता है।

कोऑपरेटिव का बाबू भी भला इधर कहाँ आ रहा था। वहाँ तो चौकीदार ही नहीं मिला, इसलिए छतूलाल के बहाने वह आ धमका। यही एक खासियत है हमारे गाँव की। जब सब तरफ के लोग निराश हो जाएँगे तब हमारा गाँव खम ठोंककर खड़ा हो जाता है। अटके बिरे हमारा ही गाँव काम आता है। हमारे गाँव का इतिहास ही कुछ अजीब है। बाँध बना हमारे गाँव की जमीन पर मगर सिंचाई होती है नज दीक के गाँवों के प्लाट में, पंचायत हमारे गाँव में है मगर सरपंच आश्रित गाँव का है। अब इस काऑपरेटिव को ही लीजिए नाम हमारा है मगर बना है करीब के गाँव में। बाबू अनगंइहा, अध्यक्ष दूसरे गाँव का मगर चौकीदारी हमारी और वह भी केवल इसीलिए कि कोई इस झमेले वाले काम में पड़ना नहीं चाहता। ‘भले ही लाँघन भूखन रह जाय मगर कोऑपरेटिव की चौकीदारी नहीं करनी है’ इधर अतराप के गाँव वाले यही कहते हैं। कहता तो छतूलाल भी यही था मगर मरना जो बदा था इसी चौकीदारी के काम में। वह तो साफ इन्कार कर चुका था मगर बाप के मारे चले तब। दो पैसे का लालच बुढ़वा बाप को अब जाकर अखर रहा है। भला बाप भी क्या जानता था कि लइका को बघवा के मुँह में बाँधकर ढकेल रहा है। वह भल को भल समझा। सिधवा मनखे। न तीन जाने न तेरह। अपन रस्ता आना अपन रस्ता जाना। मगर इसी सिधई के कारण आज उसका छतूलाल अधमरा हो गया है। डोकरा कहाँ-कहाँ नहीं गया। गोहारते लुलवाते सियान आदमी को देखकर लोग सहानुभूति तो दिखाते हैं मगर करते कुछ नहीं। बल्कि कई लोग तो उसके हटते ही कहते भी हैं ‘कमई करके धरो, अब लाल

बंगला के रददा धरो। छेरी पठरू चराना छोड़ के चौकीदारी करना है, वाह रे सेवाद।” डोकरा ललाते हुए बड़े दाऊ के यहाँ भी गया और गोहारने लगा ‘दाऊ ददा, बचा दे, पुलुस ठठा-ठठा के मार डरही मोर बाप।”

दाऊ ने सब सुन लिया फिर कहा ‘पुलिस पलटन के बीच नई पड़ना है अगरहिज, जा बाँच जही त पाबे बेटा ला। बड़े-बड़े नई बांचय, जा।” अगरहिज ने जिन्दगी भर बनीभूति, मेहनत मजूरी करके बेटे को पाला था। बेटे अभी अट्टारह बरस का ही हुआ था कि पहाड़ टूट गया। वैसे गाँव में उसे लोग चारों ओर हितैषी ही हितैषी लगते हैं किन्तु अगरहिज फिर भी अकेला होकर रह गया। अपने इर्द-गिर्द हितैषियों के होने का भ्रम भी एक बड़ा बल देता है। खुशकिस्मत वे हैं, जिन्हें अपने आसपास के लोगों को आजमाने की जरूरत नहीं आन पड़ती। भ्रम में पहाड़ जैसी जिनगी कट जाती है। विपत्ति के आते ही साथ-साथ बने रहने वाले किस कौशल से दामन बचाकर अलग हो जाते हैं यह देखना विपत्ति झेलने से ज्यादा कष्टप्रद होता है। अगरहिज को इन दिनों यही पीड़ा झेलनी पड़ रही है।

अगरहिज के इकलौते लड़के छत्तू ने बमुश्किल माह भर काम किया था कि यह दिन आ गया। छत्तू दिन भर छेरी चराता और रात को अपनी कथरी लेकर चौकीदारी करने चला आता। चौकीदारी करने के लिए रात को यहीं सोने की छूट थी भला रात भर जागे भी क्यों? छत्तू यह नहीं जान रहा था कि चोरी तो दिन-दहाड़े मुंशी की बाकायदा रजामंदी से होती है। दिन भर छत्तू जब छेरी चराने जाता इधर मुंशी शक्कर के बोरों को और तेल के पीपों को धीरे-धीरे चरता। शाम हो जाती और छत्तू दिन का थका-हारा आकर जम जाता। महीने भर ही बीते थे। एक दिन कुछ जल्दी ही कोऑपरेटिव की ओर चल निकला। अभी मैदान खत्म कर वह भवन के करीब ही पहुँचा था कि एक सायकिल में आधा बोरा शक्कर लादे एक जवान को उसने अपनी ओर आते देखा। भवन की ओर वह तुरन्त दौड़ा, देखता क्या है कि एक और आदमी जोड़-तोड़ करने में लगा है इत्मीनान से। सकेल रहा है सामान। छत्तू को देखकर वह सर पर पाँव रखकर भागा। छत्तू उल्टे पाँव सायकिल में बोरा लादकर जा रहे व्यक्ति की ओर भागा। शक्कर चोर बड़े मज े से जा रहा था। उसे उम्मीद नहीं थी कि कोई उसे रोक भी सकता है। वह छत्तू को पहचानता भी नहीं था।

जब छत्तू ने गरज कर पूछा “चोर साले, कहाँ लेगथसतोर बाप के माल ये।” तब शक्करधारक को लगा कि दाल में कुछ काला है। वरना वह तो आश्वस्त ही था कि मिलीभगत में निकाली गई शक्कर के लिए उसे कोई टोकेगा ही नहीं। वह मुंशी जी का पुराना शागिर्द जो था। फिर भी छत्तू के तेवर को देखकर वह घबरा गया और शक्कर को छोड़कर सायकिल सहित भाग खड़ा हुआ। वह तो भाग गया मगर उसके

बदले छतू पकड़ लिया गया। मुंशी ने तुरन्त थाने में रपट लिखवा दी कि आधा बोरा शक्कर गायब और छतू के पास है। रपट तो रपट होती है। सरकार के मुलाजिम भला कैसे कोताही बरत सकते हैं। पुलिस वाले हरकत में आ गए। भला कोई चोरी करके इस देश की पुलिस के रहते बच सकता है। धर लिया गया छतू।

पहले थाने से एक सिपाही आया। उसने छतू को तीन-चार बेंत जमाते हुए हुकुम दिया कि चलो थाने, वहाँ बाकी अध्याय लिखा जाएगा। छतू हक्का-बक्का रह गया। उसके लिए जग अधियार हो गया। रात भर थाने में रखने के बाद सुबह छतू से पूछताछ की गई। हवलदार ने पूछा “क्यों बे, कितना चुराया है आज तक।”

छतू रोने लगा।

हवलदार उसके बालों को पकड़कर खींचते हुए कहा “बता साले, रोता क्यों है। चोरी करके पैसा कमाते रहे तब तो अच्छा लगा। अब रोता है। औरतों की तरह।”

छतू ने हवलदार के पैरों में गिरते हुए कहा “मैं चोर नोहंब ददा...” अभी वह कुछ और कहता कि हवलदार गरजा “ददा के बच्चे, साले चोरकट, चोर कभी बोलता है कि वह चोर है। वो तो हम उगलवाते हैं कि वह क्या है। साले बड़े-बड़े साब को हम मार-मारकर चोर बना देते हैं। तू है किस खेत की मूली। जब चोर नहीं है तो बता आधा बोरा शक्कर लेकर कहाँ जा रहा था।”

छतू की धिग्गी बँध गई। एक लात लगाते हुए हवलदार ने फिर पूछा “बता आधा बोरा शक्कर क्या अपने बाप की मैयद खिलाने के लिए ले जा रहा था।”

छतू ने सिसकते हुए कहा “मैं पकड़े हंब मालिक चोर हा लेगत रिहिस” इतना सुनना था कि हवलदार अट्टहास करने लगा हा हा हा...। हवलदार नवापारा राजिम क्षेत्र का था। हँसता था तो लगातार पवन दीवान की नकल करते हुए अट्टहास करने लगता था। हवलदार अपनी और दीवान की हँसी की समानता पर गर्व करता था और जनता जनार्दन को बताता भी था कि महानदी का पानी मैंने भी पिया है। उस पानी को पीकर एक से एक विभूतियों ने अपनी योग्यता का डंका बजाया है, हम उस क्षेत्र के रहैया हैं।

हवलदार जब भरपूर दीवानी हँसी हँस चुका तब बोला “बेटा बता दे वरना छेरू पठरू सब अन्दर हो जाएँगे। बता महीने भर में जो पन्द्रह बोरा खाद, तीन बोरा शक्कर और पाँच पीपा तेल गायब हुआ है वह कहाँ है? कबूल कर ले! वर्ना सड़ जाएगा।”

छतूलाल ने सहमते हुए कहा “मैं कहाँ चोराया हूँ साहेब, मैं तो चौकीदार अंब।”

“बेटा चौकीदार ही तो चोरी करता है। कुछ लोग चोरी की योजना बना लेने के बाद चौकीदारी स्वीकार करते हैं। तब न देश तरक्की पर है। सोना सब बेचा जा

रहा है, बेतहाशा। देश में आग लगी है इसीलिए तो कि साले चौकीदार ही सब माल साफ कर रहे हैं। तू तो बता दे कि कहाँ रखा है। बस ज्यादा नाचा मत कर। 'मैं बइला नोहंव' कहने भर से साले बैल-बैल नहीं रहेंगे क्या? जल्दी बता साले कहाँ है माल।' छत्तू असहाय-सा हवलदार को टुकुर-टुकुर देखता रहा।

हवलदार ने कहा "मुंशी की रपट के मुताबिक तुमने महीने भर में सब गोलमाल किया है। और खुले आम आधी बोरी शक्कर ले जाते हुए पकड़ा भी गया है। अब झूठ मत बोल, बता दे और लाल बंगले की कर सैर। नाम कमा बेटा अगराहिज का, बढ़ा नाम। अब तो तुम्हारे कुल में लग गया कलंक। थाने में लिख दी गई रपट। माल सहित पकड़ाए हो बेटा ले जाते हुए...।" अभी हवलदार कुछ और कहता कि सहसा छत्तूलाल उठ खड़ा हुआ और उसने काँपते हुए कहा "मैं फाँसी लगा लुंहु साहेब, नाहक कलंक इन लगावव।" उसके कहने का अन्दाज इतना प्रभावशाली था कि हवलदार सहसा स्तब्ध रह गया। पास में बड़े सिपाही से हवलदार ने कहा "इसे पानी पिलाओ और बैठा दो।"

बाहर आकर हवलदार ने मुंशी से कुछ देर बात किया। फिर भीतर जाकर उसने छत्तू को बड़े प्रेम से समझाते हुए कहा "छत्तूलाल, हम तुम्हें एक शर्त पर छोड़ सकते हैं तू जा और चोर को पकड़कर यहाँ थाने में ले आ। तुम हमें फाँसी लगाने की धमकी दुबारा मत देना वरना पछताओगे। फाँसी तो तुम्हें लग ही जाएगी अगर चोर नहीं पकड़ा गया। जा बेटा चोर को पकड़ ला, जैसे शक्कर को पकड़ लिया था न वैसे ही चोर को धर ले। छेरी को पकड़ लेता है कि नहीं? बस वैसे ही लपककर चोर को पकड़ ले और ले आ यहाँ। नहीं ला सकेगा तो समझ बचना असम्भव है। या तो चोर को ला या फिर स्वयं आकर कबूल कर कि तू ही चोर है।"

और इतना कहकर छत्तूलाल को हवलदार ने घर जाने की अनुमति इस निर्देश के साथ दी कि रोज शाम को थाने में आकर हाजिरी जरूर बजाता रहे। छत्तूलाल किसी तरह रोता-कलपता घर आ गया। चौकीदारी छूट गई। छेरू-पठरू चराना सब छूट गया। उसके बाप ने सुना तो अधपगला ही हो गया। गाँव गोहार पड़ गया कि छत्तू के सर चोरी का इल्जाम लग चुका है। छत्तू अब चोर की बाट जोहता है, जिसने कौशलपूर्वक महीने भर में इतना सारा माल पारकर उसे चोर बना दिया और उसके सर यह इल्जाम मढ़ गया। शाम घिरते ही छत्तू अपने बाप के साथ थाने की ओर चल पड़ता है।

हवलदार के आदेश के बिना छत्तू फाँसी भी नहीं लगा सकता।

जय प्रकाश कर्दम

चमार

अभी रोटी लेकर बैठा ही था सुक्खा खाने के लिए कि मुनादी की आवाज कानों में आ टकराई। “ढब-ढब-ढब...। गाँव वालों के लिए जरूरी ऐलान। ढब-ढब-ढब...”

“जिन लोगों ने अभी तक लगान जमा नहीं किया है, वे आज अपना लगान जमा करा दें। अमीन साहब आए हुए हैं। जो लगान नहीं भरेगा उसकी बेदखली हो जाएगी।”

“ढब-ढब-ढब...।” जैसे काठ मार गया सुक्खा को। हाथ का निवाला ज्यों का त्यों थाली में रख दिया उसने और हाथ धोकर उठ खड़ा हुआ।

मिट्टी के चूल्हे पर उपलों की आँच में रोटी सेंकती रमिया का ध्यान मुनादी की ओर नहीं था। वह किन्हीं और विचारों में खोई हुई थी।

सुक्खा के इस तरह बिना कुछ खाए-पिए उठ खड़े होने से रमिया के मस्तिष्क को ठसका लगा, “क्या हुआ चन्दन के बापू?”

“कुछ नहीं।”

“कुछ तो?”

सुक्खा का उतरा हुआ चेहरा बता रहा था कि वह किसी गहरी सोच में डूबा हुआ है। अचानक छा गई इस उदासी का कारण जानना चाहा रमिया ने लेकिन छप्पर से बाहर आ गया सुक्खा और माथा पकड़कर बैठ गया।

“जरूर कोई विशेष बात है।” सोचा रमिया ने और मन उद्विग्न हो उठा उसका भी। तवे की रोटी तवे पर और गही की गही में छोड़कर, आटे से सने हाथ लिए सुक्खा के पीछे-पीछे बाहर निकल आई वह भी और सुक्खा के सामने उसके पैरों के पास जमीन पर बैठते हुए बोली “क्यों जी क्या हुआ तुम्हें?”

“कुछ नहीं, यूँ ही।”

“तबीयत तो ठीक है?”

“हाँ ठीक है।”

“तो फिर क्या हुआ है तुम्हें? इस तरह एकाएक रोटी छोड़कर क्यों उठ आए तुम? कहीं रोटी-सब्जी में तो गड़बड़ हो गई किसी तरह की। कोई कंकर-पत्थर की डली या ऐसी कोई चीज तो नहीं आ गई?...देखो, जिन्दगी भर निभाई तुमने, अच्छा-बुरा जैसा भी बनता है, मैं पूरी कोशिश करती हूँ कि ठीक ही बने सब कुछ। पर क्या करूँ बुढ़िया हो गई अब? न हाथ-पाँव ढंग से काम करते हैं, न ठीक से दिखाई देता है। मेरे हाथ में तो है नहीं कुछ, अब तुम ही बताओ मैं क्या करूँ?”

“नहीं-नहीं ऐसी बात बिल्कुल नहीं है रमिया। तू खामखां सोचकर अपना मन खराब करती है।”

“ऐसी बात भी नहीं है तो आखिर बात क्या है? बताओ न। मैं कोई गैर तो हूँ नहीं, जो मुझसे भी छिपाते हो। एक-दूसरे का दुख-दर्द बाँटने की और जिन्दगी भर एक-दूसरे का साथ निभाने की कसम खाई है हमने। फिर मुझसे भी अपने मन की बात छिपाओगे तो कहोगे किससे?”

“...।” सुक्खा अब भी चुप।

“देखो चन्दन के बापू! तुम किसी भी परेशानी में उलझे हो। जब तक बताओगे नहीं तो परेशानी हल कैसे होगी? मैं तुम्हारी जीवन संगिनी हूँ। तुम्हारा सुख-दुख मेरा सुख-दुख है। दोनों मिलकर सोचेंगे करेंगे, तो क्या पता हमारी तकलीफ खत्म हो जाए।...या तुम सोचते हो कि मैं बुढ़िया हो गई हूँ और किसी काम की नहीं रही, तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकती। पर देखो बुढ़िया जरूर हूँ मैं और उम्र से गिर गई हूँ, यह मेरे वश की बात नहीं है, मैं अभी भी बड़े से बड़ा त्याग कर सकती हूँ तुम्हारे लिए चन्दन के बापू! पर तुम बताओ तो सही आखिर बात क्या है, तुम इतने दुखी क्यों हो?”

भावुकता में बह चली थी रमिया। और चुप लगाए रहता सुक्खा तो जाने कहाँ-कहाँ तक सोच लेती वह। फिर रमिया के आग्रह को टाल भी कैसे सकता था सुक्खा? जीवन भर जिसने उसके साथ कन्धे से कन्धे मिलाकर संघर्ष किया, भूखी-प्यासी रहकर दोपहरी-तिपहरी कमाया। जो अपना दुख-दर्द भूलकर सदा उसके लिए चिंतित रही, जिसने अपने आपको उसके लिए न्यौछावर कर दिया, उससे चोरी कैसे की जा सकती है। आज तक कुछ भी नहीं छिपाया था सुक्खा ने, फिर आज ही उस रमिया से अपने मन की बात कैसे छिपाता वह? कह ही दिया उसने रमिया से “सुनी नहीं तुमने मुनादी की आवाज।”

“नहीं, मैंने कुछ नहीं सुना। मैं तो रोटी सेंकने में लगी थी। बताओ न किस बात की मुनादी थी।”

“अमीन आया है लगान वसूल करने। नहीं दिया तो बेदखली हो जाएगी।”

चेहरा फक् पड़ गया रमिया का भी सुनते ही। एकबारगी पैरों के नीचे से जमीन

खिसकती-सी लगी उसे, लेकिन किसी तरह खुद को संभाला उसने और सुक्खा को ढाँढस बँधाया “जाकर देखो न किसी के पास।”

“किसके पास जाऊँ, कोई भी तो धेला तक देने को तैयार नहीं। कहते हैं कहाँ से पटेगा।”

“लाला दुर्गादास के पास ही हो आते।”

“कोई फायदा नहीं जाने से, वह भी नहीं देगा। जब तक चीजें थीं, गिरवी रखने को वह देता रहा, अब कुछ नहीं बचा, तो नहीं देता। पिछले दिनों गया था, तब भी साफ इंकार कर दिया था उसने।...अब कहीं से कोई उम्मीद नहीं रही रमिया। हर ओर अन्धेरा है, घुप्प अँधेरा।”

और सोच में डूब गया सुक्खा। जब दिन बुरे आते हैं, तो बने-बनाए काम भी बिगाड़ जाते हैं। मेहनत-मजदूरी कर-करके एक-दो बीघे की बौँड़िया खरीद ली थी सुक्खा ने और एक भैंस भी पाल ली थी। खाने-पीने के लिए थोड़ा-बहुत अनाज खेत में हो जाता था और कुछ ठाकुर-जमींदारों के खेतों में लाई-पताई से। भैंस का दूध बेचकर साग-सब्जी और ऊपर का खर्च चल जाता था। अच्छा काम चल निकला था। घर का भी गुजारा हो जाता था और चन्दन का खर्चा-पानी भी चल जाता था। पर वक्त की मार ने सब कुछ चौपट कर दिया सुक्खा का।

एक बार गलघोंटू की बीमारी फैली पशुओं में। बहुत सारे पशु इस बीमारी की भेंट चढ़ गए। सुक्खा की भैंस भी इस बीमारी की चपेट में आई और मर गई। हाथ-पल्ले कुछ होता, तो दूसरी भैंस खरीद लेता सुक्खा। पर चन्दन की पढ़ाई का खर्च ही जैसे-तैसे पूरा हो पाता था। और कुछ तो कर ही नहीं सकता था वह। फिर चिट्ठी आई चन्दन की, दो सौ रुपए चाहिए इस्तहान की फीस के लिए। फीस जमा नहीं हुई, तो इस्तहान नहीं दे सकेगा वह। सारे करे-धरे पर पानी फिर जाएगा और भविष्य बेकार हो जाएगा उसका। यह सोच-सोचकर सिर चकराने लगा था सुक्खा का। आखिर इतना सब कहाँ से करे वह?

जेवर के नाम पर जो एकाध चीज थी रमिया के हाथ-पाँव में, वह पहले ही बिक चुकी थी। हाथ-पाँव नंगे रह गए हैं बेचारी रमिया के भी। दिन-रात नंगे पाँव कील-खोबड़ों में चलते-फिरते तलुओं में जख्म बन गए हैं। एक जोड़ी जूती तक नसीब नहीं हो पाती। एक-दो गजा तहमद और फटा-सा मैला-कुचैला कुर्ता है सुक्खा के पास और एक पेटिकोट, कमीज और ओढ़ना रमिया के पास। उनमें भी जगह-जगह थेंगली लगी है। घर पहले से गिरवी रखा है लाला के पास। उसकी भी मियाद पूरी होने को है। मियाद खत्म होते ही लाला क्या रहने देगा? बड़ा काइयाँ है, एक दिन भी टिकने नहीं देगा वह। दो खूड़ थे, वे भी अब नहीं रहेंगे। अब क्या होगा?...कहाँ सिर छिपाएँगे? कैसे गुजर होगी अब? हाय री बेबसी...।

“दुःखम-सुखम अपनी तो देख भी लें पर चन्दन का क्या होगा? क्या उसकी पढ़ाई अधूरी छूट जाएगी? क्या उसकी इच्छाओं का जिन्दा ही गला घुट जाएगा? क्या ऊँचे ओहदे तक पहुँचने का उसकी उम्मीदों का महल रेत के ढेर की तरह बिखर जाएगा। क्या मेरे जीते जी मेरे इकलौते बेटे को अपनी पढ़ाई-लिखाई छोड़कर मेरी तरह शोषण और बर्बरता की चक्की में पिसना पड़ेगा? क्या उसे भी गुजर-बसर के लिए लाला-साहूकारों के तलुए सहलाने पड़ेंगे? क्या उसे भी ठाकुर-जमींदारों के सांटे और दुधमुँहे बच्चों की गालियाँ सहनी पड़ेंगी? क्या उसे भी गुड़ की डली या प्याज की गंठी के साथ रूखी-सूखी रोटी हलके के नीचे उतारकर दिन गुजारने पड़ेंगे? क्या उसे भी मेरी तरह पशुवत जीवन जीना पड़ेगा?” यही सब सोचकर असहनीय वेदना से काँपने लगा सुक्खा। चेतना अवरुद्ध होने लगी उसकी। इस समय कोई आकर गला दबा देता सुक्खा का या कोई खंजर उसकी छाती को पार कर जाता तब भी उतना दुःख, उतनी पीड़ा न होती उसे, जितना दुःख और जितनी पीड़ा उसे इस समय हो रही थी।

सीने में खंजर उतर जाए या गोली पार हो जाए, तो थोड़ी देर पीड़ा होती है। थोड़ी देर तड़पता-फड़फड़ाता है आदमी और फिर शान्त हो जाता है। जीवन भर की घुटन तथा हर कदम पर अभाव और उत्पीड़न की तड़प और बेबसी तो अन्तहीन है। उससे कैसे पार पाए आदमी, कैसे शान्त हो? अपने विगलित विचलित मन मस्तिष्क को सुक्खा भी कैसे शान्त करे। व्यथित-विकल जीवन में कहाँ से सुख-चैन की धारा प्रवाहित करे? ‘क्या यही देखना बड़ा था मेरी किस्मत में?’ सुक्खा का मन हुआ कि वह अपना माथा किसी पत्थर पर दे मारे पूरी ताकत से और लहलुहान हो जाए।

रमिया की तो साँसें अटक-सी गईं। जैसे, गला अवरुद्ध हो गया हो उसका। कई बार कुछ बोलने की कोशिश की उसने, पर अवरुद्ध कण्ठ से कुछ नहीं निकल पाया। बेघर होकर दर-दर की ठोकर खाने की कल्पना से ही पसीना छूटने लगा उसे। लेकिन वह भी क्या करे बेचारी। जब मर्द होकर सुक्खा कुछ नहीं कर सकता, तो वह बूढ़ी औरत क्या कर सकती थी भला?

जैसे सन्नाटा छा गया था चारों ओर। सुक्खा और रमिया दोनों इस गहरे सन्नाटे में डूबे थे। सुक्खा को ज्यादा घबराहट हुई। उसने ही इस सन्नाटे को तोड़ा “हमने कौन से पाप किए हैं रमिया, जो हमको ये दिन देखने पड़ रहे हैं।”

और फिर दोनों हथेलियों के बीच मुँह छिपा कर फूट पड़ा सुक्खा, “हे भगवान! तू हमें उठा ले। हम सब कुछ बर्दाश्त कर लेंगे। लाख मुसीबतें दे हमको, हम सब दुःख सह लेंगे। भूखे-प्यासे रह लेंगे, पर चन्दन के जीवन की बर्बादी हम नहीं देख सकते कभी नहीं देख सकते।” और बिलख-बिलखकर रो पड़ा सुक्खा।

आँखें भर आई रमिया की भी, और कलेजा मुँह को आ गया उसका। ओढ़ने

का पल्लू मुँह में दबा, गले में अटकी सिसकी को रोकती, भीतर लौट गई और धम से चारपाई पर जा गिरी।

दिन-भर कुछ नहीं खाया-पीया दोनों में से किसी ने भी। सुक्खा की थाली में जो दो-चार रोटी पड़ी थीं, उनमें से एकाध को चूहे घसीटकर ले गए और बाकी को कुत्ता आया और मुँह में दबाकर चल दिया। आटे की जो लोथ बची रह गई थी उसे एक कुतिया आकर खा गई। लेकिन रोटी ले जाते या लोथ खाते इन कुत्तों को न सुक्खा ने टोका, न रमिया ने। जब सब कुछ ही जा रहा है हाथ से, तब इन रोटियों से ही क्या होगा। रमिया झोंपड़ी में पड़ी-पड़ी आँसू बहाती रही और सुक्खा बाहर खाट पर कभी बैठते, कभी आकाश की ओर ताकता और कभी जमीन कुरेदते हुए विचारों के खाई-खड्डों में उठता-गिरता रहा।

सौंझ हो आई थी। दिन-भर का थका-माँदा सूर्य भी विश्राम के लिए लौट चला था। सुबह-सवेरे ही जंगल को गए कमरे घर लौटने लगे थे। पक्षियों का कोलाहल और बच्चों की धमाचौकड़ी बढ़ चली थी। लेकिन सुक्खा और रमिया दोनों बेसुध-बेखबर से अपने आप में उलझे हुए थे। दिन-भर की उदासी से रमिया ही पहले उबरी। अनमनी-सी उठी और सुक्खा के पास आई, “चन्दन के बापू!”

“उँ, हाँ!” अब तन्द्रा टूटी सुक्खा की भी।

“ठाकुर साहब की ही खुशामद करके देख लेते एक बार। वे चाहें, तो सब कुछ ठीक हो सकता है।”

जैसे किसी जहरीले सर्प ने डस लिया हो सुक्खा को।

“क्या कहा?...ठाकुर साहब के पास। भूल गई क्या...?” और अतीत उसकी आँखों के सामने घूम गया।

चन्दन जब शहर पढ़ने गया था, तो जैसे भूचाल आ गया था सारे गाँव में। ब्राह्मण-ठाकुर सबके कान खड़े हो गए थे। एक अनहोनी बात हो गई, अनहोनी ही नहीं बड़ा भयंकर अनर्थ हो गया जैसे। ब्राह्मण और ठाकुरों से लेकर लाला, साहूकार तक सब हैं इस गाँव में और बड़े-बड़े पैसे और हैसियत वाले भी हैं, पर आजतक किसी का बेटा पढ़ने शहर नहीं गया। लेकिन सुक्खा चमार का बेटा पढ़ने शहर गया। नाक कट गई सबकी। सबके सिर पर मूत दिया है एक चमार ने। पहले हल्की-हल्की सुगबुगाहट हुई लोगों में, फिर स्वर तीखा हो गया।

सबसे पहले काने पण्डित से मुकाबला हुआ सुक्खा का। काने पण्डित का असली नाम श्रीराम शर्मा था। पर बचपन में ही चेचक में उसकी एक आँख चली गई थी। तब से कानाराम कहा जाने लगा था वह। तीसरे दर्जे तक पढ़ा था कानाराम। पण्डित-पुरोहिताई का पुश्तैनी धंधा था। इसलिए धार्मिक अनुष्ठानों के नाम पर, जो किया कराया जाता है, कानाराम ने सब सीख लिया था। थोड़े से संस्कृत के श्लोक भी

कंठस्थ कर लिए थे उसने। पिता की मृत्यु के बाद यही पैतृक धंधा चुना उसने भी आजीविका के लिए। इसके सिवाय और कर भी क्या सकता था वह? पढ़ा-लिखा इतना था नहीं कि कहीं नौकरी पा जाता, और नौकरी के अलावा मेहनत-मजदूरी या कोई अन्य कार्य करना ब्राह्मण होने के नाते न तो उसके लिए सम्मान की बात थी और न ही सुविधाजनक। किसी और मुल्क और गैर-जाति में पैदा हुआ होता, तो भूखा मर जाता कानाराम, लेकिन धन्य हो भारत की समाज-व्यवस्था, जहाँ ब्राह्मण भूखा मर ही नहीं सकता। व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक ब्राह्मण उससे टैक्स वसूल करता है। चाहे कितना भी अशिक्षित, अयोग्य और अक्षम क्यों न हो वह, लेकिन एक ब्राह्मण पण्डित पुरोहिताई करके सुख और सम्मान से जी सकता है। कानाराम भी पुरोहिताई के अलावा और काम क्यों पसन्द करता, जबकि वह जानता था कि पुरोहिताई के पेशे से लोगों को बेवकूफ बनाकर अपनी आजीविका मज े से चलाई जा सकती है। पण्डिताई का काम करने के कारण ही उसका नाम काना पण्डित चल निकला था।

कहते हैं काने पण्डित के दादा को ज्योतिष विद्या का बड़ा ज्ञान था। भूत-प्रेतादि, ऊपरी हवाओं का भी इलाज करते थे वे। उसके पिता भी थोड़ा बहुत जानकार थे, लेकिन काने पण्डित को ऐसी कोई विद्या नहीं आती। पर लोग तो विश्वासी होते हैं। गाँव के लोगों का विश्वास है कि बाप-दादा इतने भारी पंडित थे ज्योतिष विद्या के, तो काना पण्डित भी जरूर जानता होगा थोड़ा-बहुत। यह हो ही नहीं सकता कि वह कुछ न जानता हो। यही विश्वास कर लोग काने पण्डित के पास भी आते हैं उससे अपने हाथ दिखाने, अपना भविष्य पूछने या भूत-प्रेत आदि ऊपरी हवाओं के उपाय के लिए। विद्या नहीं है तो क्या हुआ? बुद्धि तो है काने पण्डित के पास। उसने कभी निराश नहीं किया किसी को। सबके हाथ देखता है, सबका भविष्य बताता है और सबकी झाड़ू-फूँक करता है। अब इतना कुछ करने वाले काने पण्डित को क्या कुछ कमी हो सकती है भला? दान-दक्षिणा की खूब मौज रहती है। ऊपर से गाँव के मन्दिर के पुजारी का काम-काज भी वही देखता-भालता है। मन्दिर में प्रसाद और चढ़ावे में भी खूब सामान आता है फल, मिठाई, कपड़े और नगद पैसा अलग। ठाकुर हरनाम सिंह की हवेली के दक्षिण में बड़ा दुमंजला मकान है उसका।

टकराते ही बात छेड़ दी काने पण्डित ने, “सुना है सुक्खा, तेरा बेटा पढ़ने के लिए शहर गया है।”

“हाँ पण्डित जी, गया तो है आपके आशीर्वाद से।”

“आशीर्वाद कहाँ है इसमें। अनर्थ कर दिया तूने...महाअनर्थ।”

“क्या कह रहे हो पण्डित जी।” चौका सुक्खा अनर्थ के नाम पर। गाँव के भोले-भाले, लोगों में कुछ ज्यादा ही होता है अनर्थ और अधर्म जैसे शब्दों का आतंक। संयोग की बात थी कि ठाकुर हरनाम सिंह भी उधर से आ निकले। ठाकुर

साहब को देखते ही एकदम क्रोध की मुद्रा में आ गया काना पण्डित, “तू कितना ही बड़ा हो जा सुक्खा, लेकिन धर्म-शास्त्रों से बड़ा नहीं हो सकता। अपमान करता है धर्म-शास्त्रों का, वेद-वेदांगों का और पूछता है क्या हुआ? नास्तिक...।”

काने पण्डित की ऊँची आवाज से घबराया सुक्खा। आज से पहले कभी सिर उठाकर बात करने की हिम्मत नहीं होती थी सुक्खा की। उसे आश्चर्य हुआ अपने आप पर आज वह कैसे काने पण्डित से आँख मिलाकर बात कर रहा है। गिड़गिड़ाने लगा वह काने पण्डित के आगे “जान-बूझकर मैंने कोई गलती नहीं की पंडित जी, अनजाने में कुछ हो गया हो तो माफ कर दें।”

“प्रायश्चित्त करना पड़ेगा तुझे सुक्खा प्रायश्चित्त। जल्दी से अपने बेटे को शहर से वापस बुला और प्रायश्चित्त करने का उपाय कर।”

ठाकुर साहब निकट आ गए थे। काने पण्डित को गुस्से में आग-बबूला होते देख पूछ बैठे “क्या हुआ काने पण्डित, क्यों गुस्सा हो रहे हो?”

“जब ऐसा अनर्थ होगा गाँव में तब गुस्सा नहीं आएगा तो क्या आएगा? जीते जी मक्खी तो नहीं निगली जाती ठाकुर साहब।”

“आखिर हुआ क्या है? बात तो बताओ।”

“होने को रह भी क्या गया है ठाकुर साहब! सबके मुँह पर कालिख पोत दी है सुक्खा और उसके बेटे ने।”

ठाकुर साहब ने सुक्खा की ओर देखा। सिर झुका लिया सुक्खा ने।

“क्यों सुक्खा क्या हुआ?” जानना चाहा ठाकुर साहब ने।

टाँगें काँपने लगीं सुक्खा की। क्या कहे ठाकुर साहब से, क्या जवाब दे? जैसे-तैसे हिम्मत जुटाई उसने “आप माई-बाप हैं मालिक! आपका दिया खाते हैं। आपका गुलाम हर समय आपकी ताबेदारी में हाजिर है। पर बेटा नहीं माना, जिद कर बैठा आगे पढ़ने को और शहर चला गया है।”

“सुन लिया आपने ठाकुर साहब। आज तक किसी का बेटा शहर पढ़ने नहीं गया। कई पीढ़ियों से हमारे-आपके पुरखे इस गाँव में रहते आए हैं। कभी किसी ब्राह्मण-ठाकुर या सेठ-साहूकार का बेटा इतना ऊँचा नहीं पढ़ा, लेकिन यह दो कौड़ी का आदमी, यह चमार की औलाद! हम सबके मुँह पर कालिख पोतने चला है बेटे को ऊँची तालीम के लिए शहर भेजकर। यह अपमान है ठाकुर साहब, हम सबके मुँह पर चाँटा है।”

बात ही कुछ ऐसी कह दी काने पण्डित ने, खून खौल उठा ठाकुर साहब का भी। गुस्से से चेहरा तमतमा गया उनका, लेकिन जल्दी ही स्वयं पर काबू पा लिया उन्होंने और बात को दूसरा रुख दिया, “हम जानते हैं सुक्खा, लड़का नई पीढ़ी का है, पढ़ा-लिखा है। कुछ ऊपर उठने और दो पैसे ज्यादा कमाने की इच्छा रखता होगा। पर

इसके लिए घर छोड़कर शहर जाने की क्या जरूरत थी। अपना घर और अपनी धरती छोड़कर भी कोई जाता है भला? और तुम्हारा बेटा चल दिया है अपना घर और गाँव छोड़कर। अरे, इतनी सारी मिल्कियत फैंली पड़ी है हमारी। हमें भी बहुत दिन से एक ईमानदार और पढ़े-लिखे आदमी की जरूरत थी इस सबकी देखभाल और हिसाब-किताब के लिए। तुम्हारे बेटे से ज्यादा विश्वासपात्र आदमी और कौन मिल सकता है हमें? तुम उसे वापिस बुला लो, सब दिक्कतें दूर हो जाएँगी तुम्हारी।”

बाल यूँ ही धूप में सफेद नहीं हुए थे सुक्खा के। जिन्दगी में बहुत कुछ देखा और भोगा था उसने। ठाकुर साहब के मन्त्र विरोध को तुरन्त भाँप गया वह। उसे समझते देर न लगी कि इस सुझाव में प्रच्छन्न धमकी थी। उसके मन में आया कि वह सीधे-सीधे कह दे ठाकुर साहब से कि मैं तुम्हारी चाल को खूब समझता हूँ। तुम्हारी चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर अपने बेटे को तुम्हारी गुलामी नहीं करने दूँगा मैं। तुम लोग मक्कार हो, धोखेबाज हो। लेकिन अपने मनोभावों पर संयम रखा सुक्खा ने, और पहले की तरह भोलेपन से बोला “आपकी बात सिर आँखों पर मालिक। पर मैं बूढ़ा आदमी क्या कह सकता हूँ? लड़का नई उमर का है और दो हरफ पढ़-लिख गया है आपकी ठोकरों में रहकर। आपकी बात उस तक कहलवा दूँगा मैं।”

ठाकुर साहब को लगा कि बात को बेटे के ऊपर डालकर अप्रत्यक्ष रूप से उनकी उपेक्षा कर रहा है सुक्खा। आज तक किसी को उनकी उपेक्षा करने का साहस नहीं हुआ, लेकिन आज सुक्खा...। उनका स्वर थोड़ा कठोर हो गया इस बार “बेटा क्या बाप से भी बड़ा हो जाएगा?”

“ऐसी बात नहीं है ठाकुर साहब। यह गुलाम आपसे बाहर नहीं है, लेकिन लड़के की बात और है।”

सुक्खा और ठाकुर साहब के बीच हुए संवाद को अब तक चुपचाप खड़ा सुन रहा था काना पण्डित। उसने देखा कि सुक्खा किसी भी तरह अपने बेटे को वापस बुलाने के लिए तैयार नहीं हो रहा है, दाएँ-बाएँ काट रहा है। अब और अधिक चुप रहना सुक्खा का हौसला बढ़ाना था। जबकि सुक्खा की तो उनकी जूती की धूल से ज्यादा कुछ औकात नहीं थी। उसका हौसला तोड़ना जरूरी था। जरूरी था कि जूती की धूल जूती की धूल ही बनी रहे, माथे का तिलक न बन पाए। कूद पड़ा बीच में काना पण्डित और ठाकुर साहब की ओर मुखतिब होकर बोला “सुन लिया ठाकुर साहब? ये आलम है इन लोगों के! एक तो अनर्थ करता है और ऊपर से मुँह लड़ाने से भी बाज नहीं आता। अछूतोद्धार का नतीजा है यह सब। और करो हरिजनों का उद्धार, और सिर चढ़ा लो इनको। अभी तो देखना हम सबके सिर पर मूतेंगे ये।”

दबा क्रोध जाग उठा ठाकुर साहब का। उनका चेहरा सुर्ख हो गया, आँखों में खून उतर आया। भौंहे फड़कने लगीं और पेंचदार मूँछों में ताव आ गया।

“हम फिर कहते हैं सुक्खा, सोच लो अपने बेटे को वापस बुला लो। इसी में गनीमत है, वरना...।”

सुक्खा ने कोई जवाब नहीं दिया। ठाकुर साहब और काना पंडित दोनों गुस्से से पैर पटकते हुए चले गए। सुक्खा अपने झोंपड़े की ओर लौट आया।

बस, उसी दिन ठाकुर हरनाम सिंह की चौपाल पर गाँव के सारे सवर्णों की पंचायत हुई। फैसला हुआ न तो सुक्खा को खेत-क्यार में घुसने दिया जाए, न उसे किसी डौले-चकरोड़ से घास खोदने दी जाए और न उसे लाई-पताई या मजदूरी के लिए बुलाया जाए। पंचायत उठ गई फैसला सुनाकर। “अब देखते हैं कैसे पढ़ाता है सुक्खा अपने बेटे को।” ठाकुर हरनाम सिंह और काने पण्डित ने अपनी-अपनी मूँछों पर ताव दिया।

सब रास्ते बन्द हो गए, लेकिन जीवन-भर घृणा, उपेक्षा और अपमान का शिकार होने वाले सुक्खा में स्वाभिमान जाग गया था अब। अपनी छोटी सी बोंडिया में ही मेहनत से कमाना शुरू किया उसने और एक भैंस पाल ली। ठाकुर-जमींदारों ने रास्ते बन्द कर दिए तो क्या, अपनी जिन्दगी के रास्ते बन्द नहीं होने दिए उसने। लेकिन, पहले भैंस मरी और अब लगान न देने के कारण खेत से बेदखली। ऊपर से लाला को घर गिरवी रखा था सो अलग।

रमिया को भी अतीत याद था अच्छी तरह से, पर भावी जीवन के अन्धकार के भय से निर्बल और असहाय बना दिया उसे और सुक्खा से कह ही बैठी “चन्दन के बापू, तुमसे अलग नहीं चली मैं कभी? जैसे तुमने चाहा वैसा ही किया मैंने जिन्दगी भर। पर यह तो सोचो आगे क्या होगा? कैसे गुजारा चलेगा और कैसे चन्दन की पढ़ाई ...। ठाकुर-जमींदारों से लड़ाई लेने में कहाँ का हित है? तुम क्यूँ नहीं चले जाते ठाकुर साहब के पास।”

रमिया के मुँह से फिर ठाकुर साहब का नाम सुन क्रोध से झन्ना गया सुक्खा। आवेश से शिराएँ फड़कने लगीं उसकी। “चुप रह रमिया! मत ले ऐसे जाहिलों का नाम मेरे सामने जो मेरे बेटे का जीवन बर्बाद करने पर तुले हैं। मैं मर जाऊँगा, भूखा प्राण तज दूँगा, सब कुछ बर्दाश्त कर लूँगा मैं, पर चन्दन को इस नरक में नहीं पड़ने दूँगा कभी, जिस नरक में मुझे रहना पड़ा है। तू अपना काम देख रमिया...।”

लाठी उठाकर बस्ती की ओर निकल गया सुक्खा।

मोहनदास नैमिशराय

अपना गाँव

सारे गाँव की आँखों में आश्चर्य और दहशत के मिले-जुले चिह्न थे। महिलाओं की चीखें निकल गई थीं। कुछ जोड़ी आँखों में आक्रोश उभर आया, उनके जबड़े गुस्से में भिंचने लगे थे। बूढ़ी आँखों में रोशनी न थी, पर उन्होंने महसूस किया था कि गाँव में कुछ अनचाहा हो गया है। गाँव में शोर उभरने लगा था। उसी शोर में कबूतरी का अन्तर्नाद दब-सा गया था।

जिस गाँव ने आज तक कबूतरी का मुँह तक नहीं देखा था, कलाई में पड़ी चूड़ियों की भी केवल आवाजें ही सुनी थीं, उसी को मादरजाद नंगा देखना पड़ा था। देवर, सास, ननद सभी तो इकट्ठा हो गए थे। बच्चे, बूढ़े और जवान, अधिकांश औरतें तो यह सब देखते ही चीखते हुए भाग गई थीं। कुछ लुका-छुपी कर देख रही थीं। माँओं ने अपनी बेटियों को पहले से ही छिपा लिया था। उन्होंने अपने-अपने घरों के दरवाजों को बन्द कर साँकल लगा ली थी। सामने से आते जुलूस में लौंडे-लुंघाड़े अधिक थे। हर एक की आँखों में अलग-अलग भाव, शर्म से लेकर जिज्ञासा की अनुभूतियाँ, सन्देह और आक्रोश। सबकी आँखों के सामने कबूतरी का शरीर बर्फ की तरह पिघलने लगा था। शरीर का एक-एक अंग खुल गया था। अस्मिता कतरा-कतरा होकर बिखर गई थी।

अस्सी साल के हरिया ने शोर सुनकर अपनी आँखें मिचमिचाते हुए देखा। वह धुँधली-सी छाया को पहचानने का प्रयास करने लगा। यह तो उसकी पौत्रवधु कबूतरी थी। उसके बदन पर एक भी कपड़ा नहीं था। पर वह नंगी क्यों हो गई। उसकी बूढ़ी आँखें आश्चर्य से और अधिक सिकुड़ गई हैं। आस-पास ठाकुर के चार लठैत खड़े थे। पास ही ठाकुर का मंझला बेटा भी। उसका सर घूम गया। आक्रोश में सारा शरीर काँप उठा। हरिया की स्थिति उस बीमार बूढ़े घोड़े जैसी हो गई थी, जिसके बदन पर तड़ातड़ चाबुक पड़ रहे थे पर दौड़ा न जा रहा था। बूढ़ी हड्डियाँ सुन्न-सी हो गई थीं। डबडबाई आँखों से आकाश की ओर देखा उसने। आकाश तो वहीं पर था। बिल्कुल

वैसा ही। वह समझता था कि बस अब गिर ही जाएगा। धरती फट जाएगी। पर न आकाश गिरा और न धरती फटी। धूलिया की चौपाल पर खड़ा पेड़ भी अपनी जगह स्थिर था, पहले की तरह ही। उसके पत्ते जरा भी हिलडुल नहीं रहे थे। बिल्कुल चुपचाप थे, जैसे वे आने वाले खतरे को भाँप गए हों। एक-एक पत्ते पर खौफ की भाषा पढ़ी जा सकती थी। आगे-आगे कबूतरी और पीछे-पीछे लठैत, लौंडे-लुंघाड़े। नंगेपन का जुलूस उसकी तरफ ही आ रहा था। एक को शरीर से नंगा कर दिया गया था, शेष अपने मन से नंगे हो गए थे। उसने सुना एक लठैत कह रहा था “ढेढ़ चमारो हमसे ही सीनाजोरी, हमें ही आँखें दिखाते हो।” अबकी दूसरा लठैत बोला था “अब अपने ही घर में हगना-मूतना सुसरो।” फिर गुरति हुए ठाकुर का मँझला बेटा कहता है “इस कबूतरी की तरह तुम सबकी औरतों को नंगा किया जाएगा, तभी तुम्हारे दिमाग ठिकाने आएँगे।”

वे अब पास आ गए थे। हरिया ने अपनी लाठी जमीन पर टेकते हुए उन्हें रोकना चाहा। ठाकुर का एक कारिन्दा उसे गालियाँ देते हुए धकेल देता है “हट बुड्ढे, नई तो तेरी गाँड में लाठी दे दी जाएगी।” हरिया को जमीन पर गिरते देख कबूतरी फिर चीख उठी “ददुआ...।” पर उसकी चीख शोर में दब गई है। हरिया उसका ददिया ससुर था। वह एक पल को ठहर गई। जमीन पर उसे लाठी से आगे की तरफ ठेल दिया गया। नंगों का जुलूस आगे निकल गया था। दलितों की बस्ती पीछे रह गई थी। ठाकुर के मँझले बेटे के हाथों में बन्दूक थी। उसने दो-तीन बार फायर भी किया था। गोली चलने पर सब जड़ हो गए थे। बारूद की गंध हवा में घुल गई थी।

शाम होते-होते कबूतरी घर लौट आई, जैसे ही नंगे बदन। घर के दरवाजे खुले थे। ओसारे के नीचे ठंडे चूल्हे के पास उसके जेठ-जेठानी उदासी की चादर में लिपटे बैठे थे। कच्चे आँगन में ननद ने पाँव के अंगूठे से ढेर सारी मिट्टी खोद डाली थी। देवर भीतर चारपाई पर औंधे मुँह लेटा था और ददिया ससुर अपनी कोठरी में अभी भी आल-बवाल रहा था। खौफ खाई आँखों ने कबूतरी को भीतर आते तो देखा, पर किसी की उससे निगाहें मिलाने की हिम्मत नहीं हुई। सबकी आँखें शर्म में डूबी थीं। सबके देखते-देखते सारे गाँव में कबूतरी को नंगा घुमाया गया और वे कुछ न कर पाए। कहाँ गई रिशतों की गरिमा, एक दूसरे के प्रति सुरक्षा भाव? सभी तमाशबीन हो गए थे। तमाशबीन होना उनकी विवशता बन गई थी।

हरिया के बाद घर में हरफूल ही मुखिया था। वह हरिया का बड़ा बेटा था। क्या जवाब देगा आखिर वह, जब छोटा भाई शहर से लौट कर आएगा?

चूल्हा ठंडा था और उसमें पड़ी राख भी ठंडी पड़ चुकी थी, जैसे ही हरफूल का सारा शरीर ठंडा हो गया था। गर्मी का आग बरसाता महीना और उनके शरीर ठंडे

होते जा रहे थे। कोठरी से हरिया के खॉसने और बड़बड़ाने की आवाजें अभी भी आ रही थीं। घर में आज दीया-बत्ती कुछ भी न जला था। अँधेरा धीरे-धीरे बढ़ रहा था। अँधेरे के साथ सन्नाटा भी।

आधी रात बीत गई थी, पर कबूतरी की आँखों में नींद न थी। वह बार-बार अपने शरीर पर खुरदरे हाथ की अंगुलियों तथा हथेली का स्पर्श करती। कपड़े पहनने के बाद भी उसे अपना शरीर नंगा ही महसूस हो रहा था। सारे शरीर की खाल कपड़े में बदल गई हो जैसे। उसी खाल को जैसे गिद्ध खींच रहे थे। उनके तेज पंजों में मांस के टुकड़े थे और मुँह खून से सना था।

उसे याद आया एक सप्ताह पहले ठाकुर की हवेली से हुकुम आया था। तेरा घरवाला शहर जाते हुए पाँच सौ रुपया ले गया था। हमारे खेतों में काम करके अपने खसम का कर्जा उतार। उसी समय उसने देवर से कह कर ठाकुर के खेतों में काम करने से मना करवा दिया था। एक दिन शान्ति से बीता। दूसरे दिन दोपहरी में वह जंगल से जलाऊ लकड़ियों का गट्ठर सर पर रखे हुए घर लौट रही थी कि ठाकुर के बेटे ने अकेला देखकर रास्ते में ही रोक लिया था उसे। वह घोड़े पर सवार था और यह पैदल थी, सर पर बोझ अलग। घोड़े को नजदीक लाते सुल्तान सिंह बोला था “देख री कबूतरी या तो सीधी तरह हमारे खेतों में काम करने आ जा, वरना हम चमारों से जबरदस्ती काम लेना जानते हैं। फिर तेरा घरवाला तो हमसे कर्ज ले गया है। उसका मूल न सही, ब्याज तो तू चुका सकती है।” ठाकुर का बेटा उससे क्या चाहता था, वह अच्छी तरह से जान-समझ चुकी थी। इससे पहले कि सुल्तान सिंह और कुछ कहे, वह गाँव की ओर लौट पड़ी थी। उसकी टाँगों में गजब की ताकत आ गई थी। वह हिरणी की तरह दौड़ने लगी थी। सारा शरीर पसीने से लथपथ हो गया था। घर आकर सर का बोझ कच्चे आँगन में फेंककर, कोठरी में नंगी खाट पर अपने पसीने से भीगे शरीर को पटक-सा दिया था उसने। एकाएक चारपाई पर वजन पड़ने से चर...की आवाज हुई थी। पर उसके भीतर की आवाज को कौन सुन रहा था? चीत्कार उठी थी वह। आँखों में आँसू भर आए थे। मन किया खूब रोये, पर यहाँ किसे सुनाए? उसका घरवाला तो बीस दिनों पहले नौकरी की तलाश में शहर गया हुआ था।

रात में अजीब-अजीब सपने आते रहे उसे। कभी अजगर उसके शरीर को अपनी गिरफ्त में लेकर ऐंठता, कभी साँप उसकी ओर फुँफकारता। ऐसा भी लगता कि ढेर सारे बिच्छू उसके शरीर पर चढ़ आए हैं। आधी रात में ही नींद उचट गई थी उसकी। फिर सवेरा होने तक वह सो न पाई थी। सुबह होने पर ननद ने पूछा भी था “भाभी रात में क्या बड़बड़ा रही थी।?” अब वह सपने में देखे हुए अजगर, साँप, बिच्छुओं के बारे में उसे क्या बताती? दोपहर होने तक रात में देखे हुए भयावने

सपनों को वह भूल चुकी थी, पर जंगल से लकड़ियाँ चुनने के लिए घर से निकलते हुए उसके मन में संशय के बादल मंडराने लगे थे। रास्ते भर वह इधर-उधर चौकन्नी होकर देखती गई। इक्के-दुक्के लोग कच्चे रास्ते में आते-जाते मिले। जैसे ही कोई व्यक्ति सामने नजर आता, वह अपना मुँह साड़ी के पल्लू से ढक लेती। ग्यारह बजे होंगे। ऊपर सूरज और नीचे गर्म रेत। पैरों में पहनी रबर की चप्पल और भी गर्म हो गई थी। जंगल गाँव से पूरे दो मील की दूरी पर था। जंगल पहुँचते-पहुँचते हवा अच्छी-खासी गर्मा गई थी। जंगल भी कुछ खास न था। बीस-तीस पेड़ ही बचे थे। बीस-बाईस एकड़ जगह में छितराए से पेड़। अधिक पेड़ नीम के ही थे। उसके बाद आम और जामुन के। इस जंगल से बहुतेरे चूल्हे जलते थे। बारीक लकड़ियों के साथ उपले धू-धू कर जल उठते थे। गैस और स्टोव शायद ही किसी के घर में था। ठाकुर के यहाँ भी नहीं।

पेड़ों की छाया ने सूरज की किरणों को रोका हुआ था। उसे अच्छा लगा। छाया तले गर्मी भी कम थी। उसने देखा कुछ दूरी पर एक औरत आठ-दस गाय-भैंसों चरा रही थी। अकेले जंगल में उसे देख उसके मन को ढाँढस मिला। हाथ में पकड़ा हुआ ईटा पेड़ के नीचे रख वह सूखी लकड़ियाँ चुनने लगी। भरी दोपहरी में दो औरतें बिना एक दूसरे से बोले-बतियाए कैसे रह सकती थीं भला। कुछ दूरी पर गाय-भैंसों चरा रही औरत ने उसे देखा, तो वह उसके पास आ गई। कबूतरी ने सूखे पत्तों पर चलने की आवाज सुनी, तो देखा। वही औरत पास खड़ी थी। कुछ पल दोनों ही एक-दूसरे की तरफ टकटकी लगाए देखती रहीं। दोनों का रंग गोरा था, नयन-नक्श भी तीखे थे पर उम्र में अन्तर था।

“किसकी बहू है री तू...?” उसके स्वर में अधिकार जैसा भाव था। कबूतरी चुप! क्या जवाब दे? कुछ पल चुप्पी के बाद उसने फिर पूछा “बतलाती क्यों नई, क्या नाम है तेरे घरवाले का?”

“सम्पत...।” बड़ी मुश्किल से कह पाई थी वह।

सामने खड़ी औरत ने दोहराया “सम्पत!”

“चमारों की बस्ती से आई है तू...।”

अगला सवाल था।

उत्तर में केवल ‘हाँ’ कह पाई कबूतरी।

“अच्छा वही जो चमारों में दस किताब पास है...।” उसका स्वर उभरा था।

“हाँ!” कबूतरी ने खुशी-खुशी हामी भर दी थी।

“जो बड़े ठाकुर से पाँच सौ रुपए लेकर शहर गया है, उसकी घरवाली है तू...।” उसने फिर सवाल किया। कबूतरी के सीने पर पत्थर-सा लगा। आहत-से स्वर में उसने ‘हाँ’ कहा।

कुछ देर दोनों के बीच चुप्पी रही। इस बीच कबूतरी लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े चुनती रही।

“तुझे पता है...?” उसका स्वर पुनः उभरा था, “ठाकुर अपना कर्ज कैसे वसूलता है?”

उसकी पहेली जैसी बात सुनकर वह पूछ बैठी “कैसे वसूलता है ठाकुर अपना करज?”

उस औरत से हल्के-से मुस्कराते हुए कहा था “ठाकुर मूल तो मूल, ब्याज भी नहीं छोड़ता। एक-एक पाई की कीमत चुकानी पड़ती है आसामी को। और उसको ही नई उसकी घरवाली को सबसे पैले।”

“क्या...।” कबूतरी के मुँह से अचानक निकल पड़ता है।

“हाँ, अभी तू नासमझ है। क्या तुझे ठाकुर ने अपने घर काम करने नई बुलाया अभी तक...।” पर इस बार स्वर में अधिकार न था। धीरे से पूछा था उसने।

“भेजा था, एक कारिन्दा ठाकुर ने।” कबूतरी को अन्ततः कहना ही पड़ा था।

“तू गई?” उसका अगला सवाल था।

“ना।” कबूतरी बोली थी।

दोनों जैसे एक दूसरे के और करीब आ गई थीं। अब वे परस्पर खुलने लगी थीं। वार्तालाप में ठण्डापन न था। वही औरत फिर बोली “आखिर कब तक ‘नाय’ करेगी? पानी में रहकर मगरमच्छ से कब तक बैर?”

“क्या!”

“मैं भी भौत दिनों तक ‘नाय’ करती रही थी पर...।”

“पर क्या...।” कबूतरी की उत्सुकता बढ़ने लगी थी।

“पर एक दिन ‘हाँ’ कहनी ही पड़ी।” जैसे उसके बहुत भीतर से स्वर उभरा हो, “तब से मैं बड़े ठाकुर की आधी घरवाली हूँ।”

“आधी घरवाली...?” आश्चर्य में कबूतरी का मुँह खुला का खुला रह गया। आँखों में सवाल-दर-सवाल तैर उठे थे।

“हाँ आधी घरवाली।” उसकी आवाज भारी होने लगी थी, “मेरे घरवाले ने पाँच साल पहले ठाकुर साहब से करज लेकर भैंस खरीदी थी। पर ऊपर वाले को कुछ और ही मंजूर था। भैंस एक महीने में ही मर गई। सुना यह भी गया था कि ठाकुर साहब ने गोली देकर मरवा दिया था।”

“क्या...?” कबूतरी का मुँह आश्चर्य से खुला का खुला रह गया था।

“हाँ भैना, चार-पाँच रोज बाद ही ठाकुर का कारिन्दा करज उगाही करने आ धमका था। अब भला करज कहाँ से देते? फिर ठाकुर ने हम दोनों को काम पर लगा दिया। मुझे घर में और मरद को खेतों पर। भला कब तक बचती।”

“तो ठाकुर ने तेरे साथ...?” कबूतरी ने पहली बार उससे सवाल किया था।
“हाँ।” जवाब देकर कुछ पल ठहर कर पूछा उसने, “पर तेरे घरवाले की शहर में नौकरी नहीं लगी अब तक?”

“बीस दिन हो गए। कोई खत भी नई आया, पता नई क्या हुआ...?” कहीं डूबी-सी कबूतरी कहती है।

दोपहरी भर आई थी। सूरज सर पर आ गया था। कबूतरी ने अब तक सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी कर ली थीं। पहले सर पर कपड़े का बनाया हुआ ईटा रखा और फिर लकड़ियों का बोझ।

“अच्छा भैना, अब चलना चइयै, घर पर जिठानी बाट देख री होगी। रोटी भी बनानी है अभी।”

जंगल से फिर दो मील घर लौटना था उसे। वह कच्चे रास्ते पर उतर आई थी। पीछे जब कोई साईकिल वाला टुनन-टुनन घण्टी बजाता, तो वह किनारे हो जाती। रास्ते में उसके अलावा और कोई न था। लगभग आधा मील रास्ता पार किया था तभी पीछे से कुछ मिली-जुली आवाजें आईं।

“ओ जाने वाली रुक जा।” उसने पीछे मुड़कर देखा। सामने से ठाकुर का मँझला बेटा और उसके चार कारिन्दे आ रहे थे। वह हक्की-बक्की रह गई। अब तक वे पास आ गए थे।

“तूने म्हारे खेतों में काम करने से क्यों मना किया?”

वही ठाकुर का मँझला गरजा था। उसके कंधे पर बंदूक थी।

“मुझे जाने दे,” कहते हुए कबूतरी ने जैसे ही आगे पाँव बढ़ाया, उसने उसका हाथ पकड़ लिया। एक हाथ से बोझ पकड़े उसने अपना हाथ छुड़ाया। लकड़ियों का बोझ नीचे जमीन पर गिर पड़ा।

“तू मुझे जाने क्यों नहीं देता?” कहते हुए वह लकड़ियाँ उठाने के लिए झुकी पर ठाकुर का मँझला बेटा फिर उसे पकड़ते हुए बोला “चल आज से ही म्हारे खेतों में काम कर, तुझे अपने खसम का कर्ज नहीं चुकाना क्या?”

“मैंने किसी से कोई करज-वरज नहीं लिया, जिसने लिया है वही देगा भी।” वह फिर जाने के लिए बढ़ी। चारों तरफ खड़े कारिन्दे बेशर्मी से हँस रहे थे।

“मैं फिर कहता हूँ, तू म्हारे खेल पर चल वरना...।” उसने फिर उसका हाथ पकड़ा।

“वरना क्या करेगा तू?” कबूतरी ने अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा।

“स्साली, चमारी ठाकुर से जबान लड़ाती है।” अगले ही पल वे बाज की तरह झपटे थे उस पर। पहले ठाकुर के मँझले बेटे ने झपटा मारा। बाज पाँच थे और वह अकेली। पल भर में ही उसके बदन के कपड़े खींच-खींच कर फाड़ दिए गए। गाँव से

दूर वीरान से रास्ते में, वह बहुत चीखी-चिल्लाई। पर उन्होंने उसे पूरी तरह नंगा करके ही छोड़ा था। भागने का प्रयास करती, तो उसे लाठी से धकेला जाता।

“चल गाँव, सारे लोग इसी हालत में तुझे देख तुझ पर थूकेंगे।” ठाकुर का मँझला बेटा किसी हिंसक जानवर की तरह गुराया था।

गाँव का नाम सुनकर उसका कलेजा मुँह को आ गया था। उसकी आँखों के सामने अँधेरा-सा छाने लगा। वह धम्म से वहीं बीच रास्ते में बैठ गई। वह क्या करे? कैसे इनसे पीछा छुड़ाए? किस तरफ भागे? वे पाँचों यमराज की तरह उसके सर पर थे। कुछ देर वह यूँही बैठी रही। तभी चारों ओर से उसके नंगे शरीर पर लाठियाँ गड़ाई जाने लगीं। “चल उठ, नई तो तेरी...में ये सभी लाठियाँ डाली जाएँगी।” ठाकुर का मँझला बेटा फिर दहाड़ा।

“में तेरे पाँव पड़ती हूँ। हाथ जोड़ती हूँ। मुझे मेरे कपड़े दे दे।” कहते हुए कबूतरी की आँखों से आँसुओं की नदी बहने लगी थी। वह दहाड़ मारकर रोने लगी थी। भरी दोपहरी। झुलसाती गर्मी में उसका नंगा बदन, उसका रोम-रोम जलने लगा था। सारा मुँह आँसुओं से भीग गया। पर उनके मन जैसे ही पत्थर थे। वे न पसीजे। ठाकुर के कारिन्दों ने उसके शरीर में हो-हो करते हुए लाठियाँ गड़ानी शुरू कर दीं। अन्ततः उसे उठकर गाँव की ओर नंगे बदन चलना ही पड़ा।

पहले जोहड़ आया, फिर बिटोड़े और तब गाँव। सारे गाँव में वह नंगी हालत में घुमाई गई थी। कुछ लोग तो कुत्तों की तरह उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। शाम तक यही नंगा खेल खेलना पड़ा था उसे। पर उसने हिम्मत की थी जिंदा रहने की। और वह पत्थर बन वापस लुकती-छिपती घर लौट आई थी।

पड़ोस के मुर्गे की बाँग बता रही थी कि सवेरा हो गया है। नींद तो कबूतरी को आई ही नहीं थीं। आँखें लाल अलग हो गई थीं। सर भारी-भारी सा। मन और तन दोनों से अभी भी पीड़ा और आक्रोश उभर रहे थे। जैसे अकेले कबूतरी की ही ऐसी स्थिति नहीं थी। घर में सभी के मन की यही हालत थी। एक-दूसरे से कुछ कह भी तो नहीं सकते थे। बस अकेले और अपने आप में सिमटे से। सभी ने महसूस किया, अभी सवेरा नहीं होना चाहिए था।

कम से कम अँधेरे में वे किसी को मुँह तो न दिखाते। काश, फिर से अँधेरा हो जाए। काली चादर से समूचा गाँव ढक जाए।

“बऊ...।” कबूतरी ने सुना, कोई आवाज दे रहा था। यह तो सास की आवाज थी। वह जैसे ही लेटी रही। रामकली के मन में संशय था। कहीं कबूतरी ने रात में कुछ कर न लिया हो। अतः जैसे ही उसे सुध आई, वह कबूतरी की कोठरी की ओर चली गई। कोठरी में थोड़ा उजाला था। वह दोबारा आवाज देती है...‘बऊ’।

पास आकर देखती है। कबूतरी आँखें खुली रख लेटी थी। वह हिचकते हुए

पास आ जाती है। फिर पुकारती है। कबूतरी अभी भी मौन थी। उसकी आँखें कड़ियों की ओर लगी थीं।

“बऊ, तुझे क्या हो गया है। बोल न कुछ। हमें गालियाँ दे, जूते मार, म्हारी आँखें फोड़ दे। हम सबने तुझे नंगे होते देखा। तेरी बेइज्जती होते देखी।” कहते-कहते उसकी आवाज भारी हो गई थी। गला भराने लगा था। आँखों में आँसू, और फिर जोरों से रुलाई। कबूतरी सास को रोते देख उठ बैठी थी। वह भी कब तक रोके रखती अपने आँसुओं की बाढ़। अन्ततः बाँध टूट ही जाता है। दोनों के रोने की आवाज सुन, पहले ननद फिर देवर ने आँखें नीची कर लीं। दोनों को रोते देख वे भी रोने लगे। आँसू देवर की आँखों में भी थे। बाहर ससुर और ददिया ससुर, उनकी आँखें भी तो गीली थीं, पर उन्होंने आँसुओं को रोकने की अभी तक हिम्मत जुटाई हुई थी।

रोने की मिलीजुली आवाजें बढ़ीं, तो आसपड़ोस से भग्गी मच गई। कल की घटना तो सबको मालूम थी। कुछ ने अपनी नंगी आँखों से भी सब कुछ देखा था। रात में कोई अनहोनी घटना तो नहीं हो गई, यही सोच सभी उसी तरफ दौड़ पड़े। हरिया और हरफूल अवाक थे। भीड़ घर के आँगन में बढ़ने लगी थी। पहले औरतें आईं, फिर मर्द, बच्चे और जवान होती उम्र की लड़कियाँ। सबकी जुबान पर यही शब्द थे ‘कल भौत बुरा हुआ। आज तक गाँव में ऐसा तो नहीं हुआ था।’ कोठरी के भीतर सभी औरतें घुसने का प्रयास कर रही थीं। जो भीतर जा चुकी थीं उनकी आँखें गीली होने लगी थीं, बाहर रह गई औरतों, लड़कियों की आँखें भी भर आई थीं। वे आपस में बतिया रही थीं। “हम तो समझे कबूतरी ने कुछ कर लिया है।” एक बूढ़ी दूसरी से कह रही थी।

“नई ताई, भौत हिम्मत वाली है वह, दूसरी होती तो अब तक कुएँ में कूद कर जान दे देती।” दूसरी ने जवाब में कहा था।

“पर हुआ तो बुरा ही उसके साथ।” तभी तीसरी बोल उठती है।

भीतर से अभी भी रोने की आवाज आ रही थीं। फिर बीच में कमउम्र की एक लड़की कहती है “लगे है रात रोटी भी नहीं खाई इन्होंने।”

“चल जरा चूल्हे को तो देख।” फौरन एक बुजुर्ग औरत बोल उठी।

वही लड़की भागी-भागी ओसारे में ठंडे चूल्हे की ठंडी राख को हाथ में लेकर महसूस करती है। आसपास लकड़ियाँ भी न थीं। चूल्हे के पास जूठे बर्तन भी न थे। चिमटा, फूंकनी, मिट्टी की दीवार के सहारे खड़े थे। वही लड़की फिर भागी-भागी आती है और उदास स्वर में कहती है “ना ताई रोटी तो कतई ना बनी।”

ताई को जैसे अफसोस हुआ था “रोटी क्या खाई होगी?”

बीच में कोई और बोली “ऐसे में रोटी भला हलक के नीचे उतरे है किसी के, जो वे बिचारे खाते?”

“पर अब तो उन्हें रोटी चढ़ये। कल से सब भुक्खे हैं।” वही लड़की फिर कहती है।

भीतर से कुछ औरतें बाहर आईं। उन सभी की आँखें गीली थीं। उधर हरफूल और हरिया के आसपास लोग जुटे थे। उनमें से अधिकांश दिलासा ही दे रहे थे। कुछ भाग्य को कोस रहे थे, तो कुछ किस्मत को। अचानक बीच में कोई युवक बोल उठता है “पर ऐसे कब तक चलेगा? कल सम्पत की घरवाली को नंगा किया, आज किसी और की भैन, बेटी को भी वे नंगा घुमा सकते हैं।”

“पर गरीब-गुरबा लोग कर भी क्या सके हैं?” हरिया के पास बैठा एक बूढ़ा उत्तर में कहता है।

“भौत कुछ कर सकते हैं अगर सब चाहें तो।” अबकी अर्धे उग्र का व्यक्ति बोला था।

उस युवक को जैसे बल मिला। वह और ऊँची आवाज में कहता है “हमें पुलिस में रपट लिखानी चढ़्यै।”

“पुलिस तक मत जाओ। बात गाँव की है। गाँव में ही निपटाओ।” एक और व्यक्ति ने अपनी राय दी।

“सब पंच मिलकर तै करेंगे। हमें क्या करना चढ़्यै। जल्दबाजी में कोई भी कदम उठाना ठीक नहीं।” तीन-चार व्यक्ति एक साथ बोल उठे थे।

इसी पर आपस में बहस खत्म हो गई थी। पर सबके मन में मारे गुस्से के उबाल आ रहा था। युवकों की तो मुट्ठियाँ भिंच रही थीं। बूढ़े आदमी उन्हें धीरज रखने की अपनी-अपनी राय दे रहे थे। थोड़ी देर बाद भीड़ घटने लगी। पर मर्दों के बीच किसी को भी उन्हें रोटी की बात पूछनी ध्यान नहीं रही। जबकि दो-तीन औरतों ने अपने-अपने घर जाकर उनके लिए रोटी-सब्जी बनाने के लिए चूल्हे भी जला लिए थे।

घर में वे फिर अकेले रह गए थे। भीतर की चुभन ऐसी थी, जैसे काँच के बहुत सारे टुकड़े उनके खून में मिल गए हों। हरिया अभी भी अपनी कोठरी में था। बाहर निकलने को मन न था। बूढ़ी टाँगों में अब ताकत ही कितनी रह गई थी। इन्हीं टाँगों से कभी वह पूरे गाँव में घूमा करता था। गाँव में दलितों की बस्ती में सबसे अधिक उम्र थी उसकी। सबसे अधिक मौतें देखी थीं उन बूढ़ी आँखों ने। किस-किसकी अर्थी को कंधा नहीं दिया था? कितने लोगों की आँखों से आँसू पोंछे थे उसने, कितने को दिलासा दिया था! और आज स्वयं अपने आपको ही दिलासा न दे पा सका था।

हरफूल तो और भी दुखी हो गया था। कल की घटना से तो बच्चे की तरह बिलख-बिलख कर उसका रोने को मन कर रहा था। बेटा जब जवान हो जाए, तो बाप का हमजोली बन जाता है। कई बार हरफूल ने बाप के साथ बैठकर हुक्का भी

पिया था। अपने मन की बात कही थी और हरिया की सुनी थी। पर इस बार न जाने क्यों...उसका मन? उसे याद आया दो साल पहले ही तो बेटे की शादी कर कबूतरी को लाया था। सगाई में ही भरे आँगन में हरफूल ने कहा था “सम्पत तेरे लिए कबूतरी देख कर लाया हूँ। खूब गोरी-चिट्टी बऊ है।” और उसी दिन से छमिया का नाम कबूतरी पड़ गया था। घर तो घर, बाहर भी यही नाम, आस-पड़ोस की औरतें भी घर में घुसते ही इसी नाम से पुकारतीं। देवर और ननद तो खूब छेड़ते। कबूतरी थी भी तो ऐसी ही। मैके से ही छम-छम करती आई थी। समूचे गाँव में शोर हो गया था। दूर की भाभी, चाची सम्पत को छेड़तीं, देख लल्ला कबूतरी को अपने हाथ में ही रखियो, हाथ से निकली कि उड़ते देर नई लगेगी। और सम्पत उनकी बातें चुपचाप सुन लेता। घर जाकर नमक-मिर्च लगाकर कबूतरी को कहता। यह सब सुनकर कबूतरी का चेहरा शर्म से लाल हो जाता। बस्ती में निकलती, तो उसकी पायल की छम-छम हर किसी का ध्यान आकर्षित कर लेती थी।

कुछ देर बाद ही बस्ती की औरतें रोटी-सब्जी ले आई थीं। भीतर जाकर उन्होंने सबसे रोटी खाने के लिए कई बार कहा, खुशामद भी की। पर किसी ने रोटी को हाथ तक न लगाया। थककर वे वहीं रोटी रखकर अपने-अपने घर लौट गईं।

कुछ देर बाद मर्द आए। उनमें बूढ़ों की संख्या अधिक थी। अलग-अलग तरह से वे समझाते रहे। कबूतरी के पास भी कुछ औरतें बैठी थीं। वे ऊँच-नीच समझा रही थीं। गाँव की परम्परा की बात रह-रहकर बतलातीं। गाँव में आरम्भ से ही ठाकुर खानदान का दबदबा रहा था, यह भी बतलाना न भूलतीं। एक-दो के मुँह से गालियाँ भी निकल रही थीं “कीड़े पड़े सुसरे के जनम में, अपने बड़े बेटे की बऊ तक को भी न छोड़ा। वह आदमी थोड़े ई है, आदमी के जनम में निरा शैतान है।”

कबूतरी चुपचाप उनकी बातें सुन रही थी। कभी-कभी उसकी हिचकी भी निकल जाती थी। रोते-रोते आँखें लाल हो गई थीं। “चल, बेट्टी रोटी खा ले।” बीच में फिर कोई बोलती है। पर रोटी खाने का न कबूतरी का मन था और न उसकी सास, ननद, देवर में से किसी का। पानी तक उनके मुँह में न गया था। लगता था जैसे भूख-प्यास का उनके जिस्म से नाता ही टूट गया था।

इसी गहमा-गहमी में दोपहरी भी बीत गई। घर में लोगों का आना-जाना अभी भी जारी था। कुछ लोगों ने राय दी, सम्पत को शहर से बुलवा लिया जाए। पर हरफूल ने मना कर किया। कौन जाने वह आते ही ठाकुर से झगड़ा कर बैठे। गर्म खून है, फिर शहर की हवा लगी है। कहाँ सहन होगा उससे यह सब। हम तो गाँव में रहते हैं। गाँव की परम्परा को जानते हैं। चुपचाप रहना सीखा है। जुल्म, अत्याचार भी सहते रहे हैं। पर वह तो चुपचाप नहीं सहन कर पाएगा। जरूर कुछ टंटा-बखेड़ा होगा उसके आने पर। अधिकांश बड़े-बूढ़े उसकी बात से सहमत थे। पर कम उम्र के लोग सहमत

नहीं थे। वे तो बार-बार इसी बात पर जोर दे रहे थे कि उसे जल्द से जल्द तार देकर बुलवा लिया जाए। अरे उसकी घरवाली के साथ इतना सब कुछ हो गया है और उसे खबर तक न दी जाए। यह तो निरा अत्याचार होगा उस पर। उसके आने के बाद गाँव में क्या होगा, यह बाद की बात है। पहले उसे खबर करनी ही चाहिए। बूढ़े लोगों पर सम्पत्त को शहर से बुलाने वालों का दबाव बढ़ता ही जा रहा था। बात भी तो वाजिब थी। जिसकी घरवाली को सरेआम नंगा कर दिया उसके आस-पास पत्ता खड़कने की भी आवाज न हो, यह कहाँ का इंसफ था? वे लोग कमजोर हैं। यह तो सही है। पर इतना सब होने पर चूँ तक भी न करें? अजीब पहेली जैसा था सब कुछ।

और अँधेरा घिरने से पहले उन्होंने ऐलान कर दिया “हम अनशन करेंगे। भूख हड़ताल करेंगे। हमारी समाधियाँ यहीं बनेंगी। अन्न का दाना भी न खाएँगे। उनके मरने के बाद ही अब गाँव के लोग उनकी अर्थियों को कंधा दें। बहुत सह लिए ठाकुरों के पीढ़ी-दर-पीढ़ी जुल्म। अब और न सहेंगे।” संयुक्त आह्वान था उनके मन में।

यह बात पूरे गाँव में फैल गई। बच्चे-बच्चे की जबान पर चर्चा थी। अपनी-अपनी कोठरियों में बैठे बूढ़ों के माथे पर चिन्ताएँ उभर आई थीं। वे अनमने से हुक्के की नली मुँह में रखते, पर हुक्के का स्वाद कसैला-सा लगता। बूढ़ी औरतें कली पीते हुए आपस में बतिया रही थीं। जवान बहू-बेटियों को तो कल की घटना के बाद बाहर ही न निकलने दिया गया था। धुलिया की चौपाल पर कोई न था। अँधेरा हो गया था। वहाँ दीया-बाती कुछ भी न थी। आज चौपाल भूतखाना लग रही थी। बैठक के दरवाजे पर ताला लगा था, जिसकी चाबी धुलिया के पास थी। धुलिया अपनी कोठरी में लेटा हुआ था। उसकी आँखों के सामने ठाकुर की तीन पीढ़ियों के गाँव वालों पर किए गए जुल्म के चित्र अभी भी तैर रहे थे। धुलिया की उम्र सत्तर साल पार कर गई थी। गाँव का कोई आदमी ऐसा शायद ढूँढ़ने से ही मिले, जिसकी पीठ पर ठाकुर या उसके कारिन्दों के चाबुकों के निशान न पड़े हों। वे निशान उनकी दरिदगी के चश्मदीद गवाह थे।

उसकी जात की बहुत कम औरतें ऐसी होंगी जिन्हें ठाकुर के बुलावे पर हवेली में न जाना पड़ा हो। एक-एक के बदन ने अनचाहे वह सब झेला था। इसलिए गाँव में कम उम्र की बेटियों के हाथ पीले कर उन्हें ससुराल भेज दिया जाता था। जो बाहर से इस गाँव में बहू बनकर आती थीं उनके पहले दो-तीन साल अजीब से धर्म संकट में गुजरते थे। गाँव में पहले से ही कुछ ऐसी परम्परा थी। उन्हीं परम्पराओं को गाँव के लोग ओढ़ने-बिछाने के लिए मजबूर थे।

अँधेरा होने तक हवेली में भी यह खबर पहुँचे बिना न रह सकी। हवेली में रह रहे एक-एक आदमी को तब तक पता चल चुका था कि हरिया के घर में कल से ही

भूख हड़ताल चल रही है। पर पुरुषों पर इसका ज़रा भी असर न हुआ था। उनकी तरफ से ढेरों गालियाँ ही हरिया के परिवार वालों के हिस्से में आई थीं। कारिन्दे और लठैतों ने तो मज़ाक उड़ाया था।

रात के दस बजते-बजते सन्नाटे को चीरते हुए सम्पत आ गया, गाँव भर में शोर हो गया था।

गाँव के युवकों ने जैसे ही सुना, उनके मन में दबी हुई आग शोला बनकर भड़कने लगी थी। हरिया के घर के भीतर और बाहर भीड़ जमा होने लगी। तभी एक बात और पता लगी। गाँव में कल की घटना अखबारों में छप गई थी। जिसे पढ़कर सम्पत भागा-भागा चला आया था। सभी उस अखबार को देखने को लालायित थे। पर अखबार सम्पत के पास था और सम्पत को उसके परिवार वालों ने घेर रखा था। एक तरफ़ घरवाली तथा दूसरी ओर माँ, सामने मंगली तथा सुरेश खड़े हुए रो रहे थे। हरफूल की आँखें अभी गीली ही थीं। वे भीतर से रो रही थीं। धीरे-धीरे भीड़ भीतर आने लगी थी। पड़ोस से कोई एक लालटेन और ले आया था। हरिया अपनी बूढ़ी आँखों से बस सम्पत को ही देखे जा रहा था। उनमें से अधिकांश समझा रहे थे। सम्पत को पता चल गया था कि घर में कल से किसी ने रोटी का एक टुकड़ा भी नहीं तोड़ा था।

सबकी थालियों में अलग-अलग रखी रोटियाँ सूख गई थीं। फिर उठा था सम्पत “अरे तुम मर जाओगे तो कौन-सा ठाकुर को कुछ फर्क पड़ जाएगा। उसके घर के बर्तनों में तो कमी नहीं आ जाएगी। हवेली की एक ईंट पर भी कुछ असर नहीं होगा।”

बीच में किसी न उफ तक न की। सब समझते थे। सम्पत का बोलना वाजिब था, “और सच बात तो यह है कि तुम सब तो पहले से ही मर हुए हो। मुरदे न होते, तो मेरी बीवी को नंगे होते हुए देखते रहते?”

तभी बीच में हरिया का स्वर उभरा था “मेरा पोता ठीक कहता है। हम सब मुरदे हैं।”

कई स्वर उभरे “सम्पत की बात तो अपनी जगह ठीक ही है।” कहीं से फुसफुसाहट होती है और कहीं से वाद-विवाद भी।

रोटी की बात बीत गई थी। उसे फिर बिरमो ताई ने छेड़ा। सभी ने उसकी हाँ में हाँ मिलाई। कुछ ही देर में भीड़ घटने लगी। दो-तीन औरतें अपने-अपने घर जाकर फिर रोटी बनाने लग गईं। आधी रात हो गई थी। फिर से चूल्हे गर्म होने लगे थे। रोटियाँ बनाने वाली औरतों के चेहरे पर खुशी और संतोष के चिह्न थे। कहीं से छाछ जुटाई गई तो कहीं से सब्जी और कहीं से गुड़। पचीस-तीस रोटियाँ जल्दी-जल्दी सेंक दी गईं। सबने एक साथ मिलकर खाया।

रात काफी बीत गई थी। पर सम्पत की आँखों में नींद न थी। कबूतरी उसके बराबर में ही लेटी थी। नींद उसे भी नहीं आ रही थी। लालटेन में मिट्टी का तेल खत्म हो गया था। वह खुद-ब-खुद बुझ गई थी। चारों ओर अँधेरा हो गया था। उसी अँधेरे में डूबा था सम्पत। अँधेरे के भीतर नुकीले पंजे निकल आए थे और वह उन पंजों से लड़ रहा था, जूझ रहा था। पंजों की संख्या उसके चारों ओर बढ़ रही थी।

यूँ वह दस सालों से बराबर लड़ रहा था, गाँव की परम्पराओं से, जिन्हें ठाकुरों तथा बामनों ने मिलजुल कर बनाया था। गाँव में उसी न्याय के प्रतीक थे मन्दिर और हवेली। मन्दिर बामनों का था और हवेली ठाकुरों की। शेष गाँव पर बनियों, कायस्थों, यादवों, कुर्मियों और राजपूतों का कब्जा था। दलितों की बस्ती उसी हिस्से में आती थी, जिस पर सबका हक था, सबका अधिकार था। इन्हीं अधिकार सम्पन्न जातियों ने उसकी बस्ती के एक-एक आदमी-औरत, बच्चे, बूढ़े को वस्तु बना दिया था। जिसका जब भी चाहा इस्तेमाल कर लिया और जब मन किया एक तरफ फेंक दिया।

सुबह होने पर सम्पत की एक ही जिद थी। पुलिस में रिपोर्ट लिखानी है। वह कबूतरी से बार-बार कह रहा था “जल्दी कर, कस्बे चलना है। वहाँ पुलिस चौकी में सब बताना। जो तेरे साथ उस ठाकुर के मँझले ने किया। एक-एक लठैत का नाम भी एफ.आई.आर. में आना चाहिए।” और कबूतरी डरते-डरते तैयार हो रही थी।

बाहर कच्चे आँगन में हरफूल समझा रहा था “सम्पत याद रख कोई तेरी रिपोर्ट नई लिखेगा और लिख भी ली किसी भले मानस इनसिपेट्टर ने, तो क्या बिगड़ जाएगा ठाकुर का? सुना है ठाकुर की पहुँच चीफ मिनिसटर तक है।” और सम्पत आक्रोश के मारे उबल पड़ा “भईया ठाकुर की पहुँच चीफ मिनिसटर तक हो या प्राइम मिनिसटर तक। हम पर जुल्म हुआ है और उसकी रिपोर्ट पुलिस में लिखानी जरूरी है।”

अब तक अपनी कोठरी से बाप-बेटे की आपस में होती तकरार सुनकर हरिया भी लाठी टेकते हुए आ गया था। साथ ही अन्य लोग भी। हरफूल ने प्रतिवाद किया था “पर पुलिस किसकी? यह भी उनी की है गाँव में जिनकी लाठियों में दम है।”

“पुलिस सबके लिए है। उस पर हर किसी की सुरक्षा की जिम्मेदारी है।” सम्पत ने अभी अपनी बात पूरी ही की थी कि हरिया बीच में बोल उठा

“हाँ सम्पत, तू जरूर रिपोर्ट लिखा।” हरिया ने दो टूक उत्तर में अपना फैसला दे दिया था।

हरफूल ने सुना तो उसके बदन में आग लग गई। वह थोड़ा तेज स्वर में कह उठा “तो फिर दादा-पोते दोनों कर लो करान्ती।”

“भईया, क्रांति करने वाले तो बाज संसद और विधानसभाओं में जाकर सो गए हैं। हम तो केवल हम पर जो जुल्म और अन्याय हुआ है, उसके खिलाफ कुछ करना

चाहते हैं।” सम्पत के स्वर में अभी भी आक्रोश था। जबकि हरफूल के स्वर में टूटन बढ़ गई थी।

“जो कमजोर हैं वे कुछ नहीं कर सकते।” वह फिर उसे समझाना चाहता है “भईया, हम कब तक कमजोर बने रहेंगे? कब तक गुलामों की तरह रहेंगे।”

उन सबके कस्बे जाने और ठाकुर के खिलाफ पुलिस में रिपोर्ट लिखाने के प्रसंग से गाँव में हड़कंप-सा मच गया था। जो सम्पत और कबूतरी के साथ जाने को तैयार हुए, उन सभी के घरों में अलग तकरार होनी आरम्भ हो गई थी। अकेली बिरमो ने अपने बेटे के जाने पर कोई ऐतराज नहीं किया था। बल्कि वह स्वयं भी जाने को तैयार हो गई थी। वह विधवा थी और घर में एक वही बेटा था। बिरमो के आदमी को दस साल पहले ठाकुर ने ही मरवा दिया था। तब वह ठाकुर के खिलाफ रिपोर्ट न लिखा सकी थी। पर आज वह तैयार थी, अगली-पिछली दोनों रिपोर्ट लिखाने के लिए। पुरानी याद उसके सोये हुए जख्म के कहीं बीच से उभर आई थी।

अभी दस ही बजे थे। पर सूरज की किरणें आग बरसाने लगी थीं। नीचे रेत तपने लगी थीं। हवा गुम थी। वे पसीने-पसीने हो गए थे। रास्ते में कई ट्यूबवेल पड़े, उनमें से किसी ने भी पानी तक न पिया। सबके सिर पर एक ही जुनून सवार था। जल्दी से जल्दी कस्बे जाकर ठाकुर के खिलाफ रिपोर्ट लिखाना। वही जुनून अब उनकी ताकत बन गया था। वे एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं पूरे ग्यारह थे। उनके भीतर-बाहर आग लगी थी। बाहर से अधिक अन्दर का सूरज बेचैन कर रहा था उन्हें, जो सम्पत के शहर से लौटने के बाद उन सबके भीतर उग चुका था।

कस्बे के बीच में थी पुलिस चौकी। खपरैल की छत के नीचे नंगी दीवारें और उन दीवारों पर पान की पीक के बदरंग निशान। वैसे इनमें कुछ खून के निशान भी थे। कहीं-कहीं से दीवारें काली पड़ गई थीं। पुलिस चौकी के आगे कच्चे आँगन में पेड़-पौधों के साथ एक मन्दिर भी उग आया था। जिसमें पत्थर का कोई देवता विराजमान था। उस पत्थर की मूर्ति के आगे गरदन झुकाए हाड़मांस का कोई वर्दीधारी दोपाया खड़ा था। सामने उत्तर की ओर बान की नंगी खाट पर दूसरा वर्दीधारी जीव औंधे-मुँह लेटा था। उसी के बराबर के बड़े कमरे में मेज के सामने तीसरा किसी आदमी को डाँट-डपट रहा था। चौथा वर्दीधारी एक कोने में खड़ा कुल्हड़ में से काले-काले रसगुल्ले निकाल कर मुँह में डाल रहा था। पाँचवाँ दक्षिण की ओर मोरी के सामने खड़ा हो पेशाब कर रहा था। इस कस्बे की पुलिस चौकी में फिलहाल पाँच कर्मचारी तैनात थे, जिनमें से एक कुर्सी पर था और सामने बैठे किसी देहाती को डाँट-डपटकर ड्यूटी पूरी कर रहा था। उसी पुलिस कर्मचारी ने अचानक ग्यारह लोगों को एक साथ पुलिस चौकी में प्रवेश करते देखा, तो वह वहीं से चिल्ला उठा, “अरे...रे कहाँ घुसे चले आ रहे हो? यह पुलिस चौकी है, घुड़साल नहीं।”

“पुलिस चौकी समझ कर ही आए हैं।”

सम्पत की बात सुनकर वह उखड़-सा गया था “ठीक है, क्या बात है बताओ।”

अब तक वे सभी उसी बड़े कमरे में आ गए थे जो छोटा पड़ गया था। “हमें रिपोर्ट लिखानी है।” सम्पत कहता है। वही वर्दीधारी फिर उखड़ गया था, “पर हुआ क्या है या ऐसे ही हवा में रिपोर्ट लिखानी है।”

अब सम्पत का स्वर भी थोड़ा गरमा गया “हवा में रिपोर्ट नहीं लिखाएँगे, हम पर जुल्म हुआ है।”

“क्या जुल्म हुआ है जल्दी से बतला।” वही कर्मचारी रुखे हो कहता है। तब तक तीनों वर्दीधारी भी हटो, हटो करते हुए उसी कमरे में आ गए थे। इन्सपेक्टर को आया देख दीवान उठ खड़ा होता है। अब उसी कुर्सी पर इन्सपेक्टर बैठते हुए सवाल ठोक देता है “क्या बात है...?”

“इन्सपेक्टर साहब हम लहना गाँव से आए हैं।”

“तो...।” इन्सपेक्टर हल्के से कहता है।

“यह मेरी पत्नी है।” कबूतरी की ओर संकेत कर सम्पत कहता है।

“तू जल्दी बतला, यहाँ क्यों आया है अपना पूरा टाबरा लेकर।” इन्सपेक्टर भी उखड़ने लगा था।

“लहना गाँव के ठाकुर के मँझले लड़के ने मेरी बीवी को सारे गाँव में नंगा किया।” अन्ततः सम्पत कह ही डालता है।

लहना गाँव के ठाकुर का नाम सुनकर इन्सपेक्टर की आँखें चमक-सी उठती हैं। उसके मुँह से अचानक निकल पड़ता है “कौन जात हो?”

“चमार हैं।”

“फिर हम क्या करें?” उपहास के स्वर में इन्सपेक्टर कहता है।

“हमारी रिपोर्ट लिख लीजिए।” सम्पत पुनः कहता है।

कुछ देर कमरे में चुप्पी रहती है। अचानक इन्सपेक्टर का स्वर गर्माने लगता है “जाओ जैसे गाँव से आए हो वैसे ही लौट जाओ। यहाँ किसी की रिपोर्ट-विपोर्ट नहीं लिखी जाएगी।”

सम्पत तथा अन्य को इन्सपेक्टर से ऐसे उत्तर की उम्मीद न थी। फिर भी अपने स्वर को संयत करते हुए उसने कहा “इन्सपेक्टर साहब, हम पर ठाकुर के मँझले ने जुल्म किया है। हमारी रिपोर्ट तो लिख ही लीजिए।”

इसी बीच बिरमो का बेटा भी बोल पड़ता है “इन्सपेक्टर साहब रिपोर्ट तो आपको लिखनी ही पड़ेगी।”

उसकी बात सुनकर इन्सपेक्टर भभक उठता है “अबे तू कौन है?”

बीच में से बिरमो आगे आकर बेबाकी से कहती है “म्हारा बेटा है।”

इन्सपेक्टर की त्योरी और भी चढ़ जाती है “और तू किस खेत की मूली है?”

“हम लहना गाँव से हैं।”

इन्सपेक्टर ने उन सबकी ओर एक-एक कर देखा अन्त में कबूतरी पर उसकी निगाहें आकर थम जाती हैं।

“तू इसकी बीवी है ना।” सम्पत की तरफ संकेत कर इन्सपेक्टर ने पूछा।

“हाँ।” कबूतरी उत्तर देती है।

“तुझे ठाकुर के मँझले ने नंगा किया। अब और नंगा होना चाहती है क्या?”

इन्सपेक्टर रूआब से उसकी आँखों में आँखें डालकर कहता है।

“इन्सपेक्टर साहब आप यह कैसी बातें कर रहे हैं?” सम्पत को बीच में बोलना पड़ा था।

“इन्सपेक्टर साहब, हमारे बेटे की घरवाली को गाँव भर में नंगा किया और आप...?” इस बार हरफूल भी बोल उठा था। उससे सहन न हो पा रही थीं इन्सपेक्टर की ऊँटपटाँग बातें।

“अच्छा तो तुझे भी बोलना आता है। दीवान जी इन सालों को बाहर निकाल दो।”

“इन्सपेक्टर साहब आपका यह व्यवहार ठीक नहीं है।” सम्पत भभक उठता है।

“तू कौन होता है बे हमें व्यवहार सिखाने वाला?”

“इन्सपेक्टर साहब, आपको अपनी ड्यूटी निभानी चाहिए।” बिरमो का बेटा भी आगे आकर भभका।

“इन्सपेक्टर साहब या तो हमें बन्द करो या म्हारी रिपोर्ट लिखो।” बिरमो भी कब पीछे रहने वाली थी। अब तक इन्सपेक्टर भीतर से पूरी तरह से खौल चुका था।

“दीवान जी लाना जरा मेरा डंडा। इन साले चमारों के होश ठिकाने लगाने होंगे।” कहते हुए वह उन पर पिल पड़ता है। पहले लात फिर घूँसे। शेष तीनों भी डंडे उठाकर उन्हें मारने दौड़ते हैं। अब तक पाँचवें वर्दीधारी की भी हल्ले से नींद उचट गई थी। उसने चौकी के भीतर मारा-मारी देखी तो बन्दर की तरह उछल कर उनके बीच जा पहुँचा।

पुलिस चौकी में अजीब हाय हुल्ला मच गया था। आस-पास भीड़ इकट्ठा होने लगी थी। यह पता चलते ही कि लहना गाँव के चमारों की पिटाई हुई है, भीड़ में शामिल चमार, खटीक, बाल्मीकि भी थे। वे सभी अपनी-अपनी बस्तियों की ओर भागे।

पुलिस चौकी में ग्यारह के ग्यारहों को चोटें आई थीं। उनके कपड़े फट गए थे। बिरमो के साथ कबूतरी तथा रामकली को भी नहीं छोड़ा गया। उनके तो बाल खींच-खींच कर बेदर्दी से पीटा गया था। सबसे अधिक चोटें सम्पत, हरफूल और

बिरमो के बेटे को आई। उन सभी को चौकी के पिछवाड़े में जहाँ दीवान जी की भैंसें बँधती थीं, बंद कर दिया गया। वहाँ गोबर तथा पेशाब की दुर्गन्ध भरी थी। वे सब बाड़े के भीतर थे और बाहर इन्सपेक्टर गुस्से में बड़बड़ा रहा था “स्सालो चमारो, अब तुम्हें जबान भी लड़ाना आ गया। एक-एक की गाँड़ में मैंने डंडा न चढ़ाया तो मेरा नाम एस.पी. त्यागी नहीं।”

दोपहरी ढल गई। गाँव से गए लोग अभी तक न लौटे थे। उनका कुछ ब्यौरा भी न था। पूरी बस्ती में चिन्ता थी। हरिया बाहर कच्चे आँगन में बैठा था। किसनी ने कई बार अपने छोटे बेटे को भेजकर खबर मँगाई थी। पर हरिया भला क्या बतलाता। वह स्वयं घर से गए पाँच लोगों के लौटने की बाट जोह रहा था। कितने लोग उसके पास आए और चले गए। कुछ आधा, एक घण्टा बैठते, बतियाते। बार-बार वह लोगों से घिरता, जुड़ता और फिर अकेला हो जाता। ऐसे में उसका मन और भी व्याकुल हो जाता। दुख की घड़ियाँ काटनी मुश्किल हो जातीं। वह किससे बात करे। नंगी दीवारों से, कच्चे आँगन से या तीन दिन से पड़े ठंडे चूल्हे से।

वह इसी गाँव में पैदा हुआ था। जवान हुआ और फिर बूढ़ा भी। अब इसी गाँव के मरघट में एक-न-एक दिन लकड़ियों के साथ जला दिया जाएगा। पर इस गाँव में मिला क्या उसे तथा उसकी जात के लोगों को? बार-बार बेइज्जती और जलालत भरी जिन्दगी। उसे नफ रत-सी हो गई इस गाँव से। ठाकुर के लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनकी जात के लोगों पर अत्याचार करते रहे और वे उनकी गुलामी! उसकी जात के लोगों को सौ-सौ गज जमीन मिली थी, ठाकुर ने प्रधान से मिल-मिलाकर अपने नाम लिखा ली। वे पहले भी ठाकुर के जरखरीद गुलाम थे, अब भी। गाँव में कितने लोगों के पास जमीन होगी। न जमीन, न घर, न कुआँ, न पोखर। गंदे जोहड़ से पानी पीना पड़ता है आज भी। गाँव में कोई स्कूल भी नहीं, न डिसपेंसरी, न ही डॉक्टर। क्या है आखिर इस गाँव में? केवल हवेली और मन्दिर दोनों उसके लिए बेकार। मन्दिर नया था पर हवेली बहुत पुरानी। हरिया को अभी भी याद था। उसके बाप ने एक दिन बतलाया था। जब यह हवेली बनी थी, तो इसी बस्ती से उसकी जात के एक आदमी की बलि दी गई थी।

शाम हो गई थी। हरिया की विचार तंद्रा टूट गई। उसने देखा, सामने हुक्मी खड़ा था। वह अपने बेटे की बाबत पूछ रहा था। थोड़ी देर में रामऔतार भी पूछते-पूछते आ गया। फिर किसनी भी। गाँव के कुछ लोग वहीं जुट गए थे। कोई हरिया के लिए गिलास में चाय ले आया था।

तभी बस्ती में हल्ला मच जाता है। कुछ घरों से रोने की आवाजें आने लगती हैं। हरिया को छोड़कर सभी उस तरफ भाग खड़े होते हैं। हरिया आश्चर्य में रह जाता है। कहीं कस्बे में कुछ हो तो नहीं गया है। हो सकता है पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया

हो, या ठाकुर के लोगों ने ... ।

कस्बे से चूड़ी लेकर मनियार आता था। मनियार ने उनकी पिटाई से लेकर हवालात में बंद करने तक की कहानी नमक-मिर्च लगाकर सुना दी थी। जैसे स्वयं उसने अपनी आँखों से देखा हो। पर देखा उसने कुछ भी न था। जिस दुकान से वह चूड़ी खरीदने गया था वहीं पर दूसरे मनियार ने उसे बतलाया था।

ग्यारह लोगों के कस्बे से वापस न लौटने की कशमकश से जूझते गाँव के लोगों ने वह रात जाग कर ही काटी थी। हरिया के घर ठंडे और उदास चूल्हे के साथ आठ-दस घरों में भी आज चूल्हे नहीं जले थे। बस्ती में मातम-सा छा गया था। अजीब-सी वीरानी में एक-एक घर डूब गया था। कहीं-कहीं बिल्लियाँ रोने लगती थीं या आपस में लड़ती-झगड़ती थीं, तो पहले से जले-भुने लोग-लुगाई उन्हें मारने को दौड़ते। लड़ती हुई वे बिल्लियाँ छलाँग लगाकर फुर्ती से भागतीं, तो उनके पीछे घात लगाकर कुत्ते भागते। दूर खेतों में गीदड़ हू-हू कर रहे थे। कुत्ते अलग रो रहे थे। आज रात गाँव में अजीब-अजीब बातें हो रही थीं, जिन सबके कारण गाँव वालों के बदन में सिहरन दौड़ जाती थी।

सुबह के नौ बजे होंगे। ग्यारह के ग्यारह लोग सामने से आते दिखाई दिए। हरिया अपनी कोठरी में अकेला था। सम्पत के साथ वह सभी को एक-एक करके देखता है। सम्पत और हरफूल की कमर में चोट आई थी। पर वे हरिया को बतलाना नहीं चाहते थे। बताने से भी क्या...? बूढ़ा जिस्म है, कितना तो टूट चुका है। पुलिस चौकी में हुई घटना को सुनकर और दुखी होगा। पर हरिया के मन में जो सवाल उपज रहे थे, उनका जवाब भी तो देना पड़ेगा। लेकिन हरिया ने कोई सवाल नहीं किया। बस इतना ही कहा, “मुझे मालूम है कि तुम्हारी रिपोर्ट पुलिस चौकी में नहीं लिखी गई।” हरिया की बात सुनकर सम्पत को आश्चर्य हुआ और उसने पूछा “पर तुम्हें कैसे मालूम ददा?”

“अस्सी साल का हो गया हूँ मैं सम्पत! मुझे पता है।”

“पर ददा तुमने ही तो कहा था जाने को!” सवाल था उसके स्वर में।

“हाँ कहा था। इसलिए कि हमें कोशिश करनी चड़्यै। कोशिश करना म्हारा काम है।”

सम्पत सोच रहा था कितनी बड़ी बात कह दी ददा ने। हरिया निपट गँवार, अनपढ़, पर अस्सी साल का तजुर्बा उसके भीतर से बोल रहा था। सम्पत जब-जब कोई काम शुरू करता था, उसे अपने ददा का ही सहयोग मिलता था। हरिया ने ही उसे शहर भिजवाया था। पहले ही दिन उसने कहा था “सम्पत अब इस गाँव में कुछ नहीं रखा। यहाँ बेगारी और बेइज्जती के अलावा कुछ नहीं है।” वैसे ददा की बात ठीक ही थी। गाँव में उसकी जाति के लिए क्या है। शुरू से ही गाँव के हाशिए पर रह रहे थे वे। अब भी वही स्थिति है। गाँव में उसके अलावा और कौन पढ़ सका है।

किसने हिम्मत की...?

कल कस्बे की पुलिस चौकी में उनके साथ हुई घटना से लहना गाँव की दलित बस्ती के लोगों की हिम्मत कम नहीं हुई थी बल्कि बढ़ी थी। उनमें ठाकुर और पुलिस के खिलाफ आक्रोश और भी बढ़ गया था। संघर्ष करने का पथ मिला था उन्हें। कल दोपहर बाद तक वे पुलिस चौकी में बंद रहे। बाहर कस्बे में मालूम हो गया था कि पुलिस चौकी में ठाकुर के खिलाफ रिपोर्ट लिखाने आए ग्यारह दलितों की जमकर पिटाई हुई और वे वहीं बंद भी हैं। कस्बे में दलितों की अच्छी-खासी जनसंख्या थी। पढ़े-लिखे कम थे। कुछ नौकरी-पेशा थे। दस-बीस लोगों ने तुरता-फुरती में पुलिस-चौकी से ग्यारह लोगों को छुड़ाने के लिए लखनऊ से दिल्ली तक फोन खड़खड़ा दिए। विपक्षी पार्टी का मौर्य भी तो कस्बे में ही रहता था। शाम होते-होते उनकी जमानत हो गई थी। रात में वे कस्बे में ही रहे। डॉक्टरी भी हुई थी एक-एक की। पुलिस इन्स्पेक्टर को मुअत्तिल करने की माँग की गई थी। सुबह कस्बे से वे चले तो उन्हें हरसम्भव मदद करने की बात की गई थी। ठाकुर के खिलाफ उनकी रिपोर्ट भी दर्ज हो गई थी।

शाम हुई तो गाँव में हरिया के घर पर फिर एक पंचायत जुड़ी। पंचायत में वे सभी थे जो कल कस्बे गए थे। बिरमो भी सर पर पल्लू किए अपने बेटे के पीछे बैठी थी। कल और परसों का दिन नौकरीपेशा वालों के लिए छुट्टी का दिन था। परसों इतवार था। गाँव के चार-पाँच लोग शहर में चपड़ासगीरी किया करते थे। उनसे भी सलाह-मशवरा करना था। गाँव में कई वारदातें हुई थीं ठाकुर की तरफ से, पर आज तक पंचायत नहीं जुड़ी थी। इस बार सभी के मन में ठाकुर के खिलाफ आक्रोश उभर आया था। कल शाम तक शहर से वे लोग भी आ जाएँगे। सुबह से लोगों को सूचना देने के लिए कह दिया गया था। हरिया ने आज ज्यादा कुछ न कहा था। उसे जो कहना होगा वह परसों भरी पंचायत में ही कहेगा। अपने मन की बात अभी कहकर हल्की न करना चाहता था वह।

सुबह शहर से अखबार वाले भी आ गए। चौबीस वर्षीय एक लड़का और साथ में लड़की। दोनों ने जींस पहनी हुई थी। दोनों के लम्बे-लम्बे बाल थे। पहचानना मुश्किल था कि कौन उनमें लड़का है और कौन लड़की। लड़की के कंधे पर कैमरा लटका था और लड़के के पास चमड़े का बैग। यह गाँव उनके लिए अजूबा था और वे दोनों गाँव वालों के लिए अजूबा बन गए थे। खासकर औरतों के लिए जिन्होंने जींस पहने और खुले बालों वाली किसी लड़की को आज तक न देखा था।

इस गाँव में आने के लिए पूरे आठ मील की पैदल यात्रा करनी पड़ी थी उन दोनों को। गाँव तक आते-आते वे अच्छे-खासे थक गए थे। गले खुश्क हो गए थे। आँखों में धूल-मिट्टी पड़ी अलग। गाँव में कहीं-कहीं कीचड़ से होकर आना पड़ा था

उन्हें। पाँव के साथ-साथ जींस के पायचे भी भींग गए थे। धुलिया की चौपाल पर आकर उन्होंने राहत की साँस ली। जैसे एवरेस्ट की चढ़ाई सफल हो गई हो उनकी। उनके आसपास उत्सुकतावश बस चार-पाँच नंग-धड़ंग बच्चे खड़े थे। थोड़ी दूर पर एक व्यक्ति बैल की पिछली दोनों टाँगों में पैनी देते हुए हई-हई कर ले जा रहा था। सिर पर चारा ले जाती हुए कोई महिला उन्हें बार-बार देख रही थी।

शहर से आए युवक का नाम अनुपम और युवती का नाम मोनिका था। दोनों ट्रेनीज थे। मोनिका को सिगरेट की तलब लगी तो वह जेब से पैकेट निकालकर माचिस ले उसे सुलगाना ही चाहती है कि अनुपम ने उसे कोहनी मारकर सिगरेट न पीने का संकेत दिया।

अब तक दो-तीन लोग उनके पास आ गए थे। जिज्ञासु बच्चों की संख्या भी बढ़ने लगी थी। दो-तीन लोग पास आए, तो अनुपम ने अपने आने का उद्देश्य बतलाया। थोड़ी देर के बाद एक व्यक्ति ने पूछा “पानी पिँगे आप लोग।”

“हाँ,” दोनों के मुँह से एक साथ निकल पड़ा। थोड़ी देर में ही एक बच्चा लोटे में पानी ले आया। पानी पीकर उन्हें तृप्ति हुई।

सूरज की गर्म-गर्म किरणें और भी अधिक संख्या में उगने लगी थीं। हरिया के घर में कच्चे आँगन में झगोला-सी खाट पर वे दोनों बैठे थे। अपने-अपने गिलास में चाय पीते हुए उन्हें महसूस हुआ था, गाँव में सचमुच गरीबी थी। अब तक गाँव के और लोग भी जुट गए थे। कच्चे कोठों के ऊपर सिर पर पल्लू रख औरतें बैठी थीं। मोनिका ने कैमरा निकाल चित्र लेने आरम्भ किए, तो उनकी जिज्ञासा और भी बढ़ी। कबूतरी के दो-तीन चित्र उसने अलग से लिए। सबकी निगाहें उसी पर लगी थीं। मोनिका के कानों में न बाली, न बुंदे थे, न कलाई ही में चूड़ियाँ। तरह-तरह के सवाल उसके भीतर उभर रहे थे। अब तक अनुपम ने सभी सवालों को लिख लिया था।

उसने पूछा “कब हुई यह घटना...?”

“मंगलवार को।” हरफूल ने उत्तर दिया। कबूतरी चुप बैठी थी।

“उसका क्या नाम है, यानी जिसने इनको (कबूतरी की तरफ इशारा करते हुए) नंगा किया।” मोनिका ने सवाल पूछा था।

“दीपक सिंह।” सम्पत ने जवाब दिया था।

“ठाकुर का मँझला है वह।” हरफूल ने कहा।

“मँझला यानी...।” अनुपम स्पष्ट करना चाहता है।

“ठाकुर का बीच का लड़का, बड़े से छोटा...।” सम्पत बतलाता है।

“पर क्यों किया उसने इनको नंगा?” अनुपम ने अगला सवाल किया था।

कुछ क्षण मौन रहा था उनके बीच। भीड़ में हर कोई सोच रहा था। क्या जवाब

दें? और जवाब दिया था हरिया ने “म्हारी जात की औरतों को पैले से ही ठाकुरों के द्वारा नंगा किया जाता रा है। उनकी बेइज्जती की जाती रई है। गाँव का रवाज बन गया है म्ये।” कहते हुए हरिया का चेहरा गुस्से में तमतमा गया था। गालों पर छाई झुर्रियों में अजीब-सी कशमकश पैदा हो गई थी उसके। हरिया के बात कहने के बाद, लोगों में फुसफुसाहट बढ़ गई थी।

“बिल्कुल सौलहाने सई है।” कुछ स्वर उभरे थे।

“पहले कोई घटना हुई?” अनुपम पूछता है।

“ना सारे गाँव में सबसे पैले मेरे पोते की बऊ को ही नंगा किया गया। कुछ म्हारी बहू-बेटियों को हवेली में नंगा किया गया। दिन के उजाले में भी और रात के अँधेरे में भी। अब किस-किसका नाम बताऊँ। सारे गाँव ने झेला है उसे।”

“म्हारी बियरबानी मुँह से न कहें पर मन जानता है उनका।” हरिया के कहने के बाद अजीब-सा सन्नाटा तैर गया था वहाँ।

“सुना है तुम्हारी तरफ से ठाकुर से कर्ज लिया गया था।” अनुपम का अगला सवाल था।

“हाँ, पाँच सौ रुपल्ली का करज। मेरा पोता पाँच साल से दस किलास पास है। उसी की खातिर सहर भेजा था काम-धंधे के लिए।” हरिया का स्वर फिर उभरता है।

“गाँव में कोई स्कूल है क्या?” मोनिका ने सवाल किया।

“नहीं...।” सम्पत ने उत्तर दिया।

“पोस्ट आफिस।”

“नई,” किसी का स्वर उभरा।

“पुलिस चौकी...?”

“ना...”

“आँगन बाड़ी?”

“क्या बाड़ी...?” किसी ने पूछा।

“यही गाँव की महिलाओं को पढ़ाने के लिए,” अनुपम ने स्पष्ट किया।

“ना” हरिया ने दोटूक जवाब दिया।

“एडल्ट सेंटर...?”

“का...?”

“बड़े-बूढ़ों को पढ़ाने के लिए।” उसने फिर समझाया।

“म्हारे गाँव में कोई सेंटर-वेंटर नहीं है।”

“डिस्पेंसरी, डॉक्टर...।”

“नई...।”

“कुआँ?”

“नई।”

“पानी कहाँ से पीते हैं।”

“म्हारे जिनावर और आदमी एक ही जगह का पानी पीवै हैं।” हरिया बीच में बोला था।

“कहाँ से?” अनुपम ने पूछा।

“गंदे तालाब का पानी।” किसी ने कहा था।

अनुपम और मोनिका एकबारगी सोचने को मजबूर हो गए थे।

वे किस सदी के गाँव में आ गए थे। आसपास टूटे मकान, फटे-पुराने कपड़े पहने लोग, नंग-धड़ंग धूल-मिट्टी में सने बच्चे। लम्बे-लम्बे घूँघट काढ़े औरतें। मोनिका और अनुपम दोनों को आश्चर्य हुआ था। कस्बे की पुलिस चौकी में कल हुई घटना का ब्योरा भी बता दिया था सम्पत ने। जिन्हें चोट आई थीं, उनके भी चित्र लिए गए थे।

जाने से पूर्व मोनिका ने अलग से कबूतरी से चार-पाँच सवाल किए थे जैसे ठाकुर के मँझले ने उसके साथ बलात्कार तो नहीं किया, उसे कितने बजे नंगा किया गया। कौन-कौन वहाँ उस समय मौजूद थे आदि-आदि। मोनिका और अनुपम को अभी ठाकुर की हवेली भी जाना था। वे उठ खड़े होते हैं। एक आदमी रास्ता बताने के लिए साथ हो लिया था। गाँव के कच्चे रास्तों में जगह-जगह पानी भरा था। कुछ देर चलने के बाद खेत शुरू हो गए थे। दुर्गन्ध भरे परिवेश से खेतों के बीच आकर मोनिका को अच्छा लगता है। वह आदमी आगे जा रहा था और वे पीछे-पीछे। अनायास मोनिका को जैसे कुछ याद आ जाता है।

“क्यों अनुपम तुम्हें मालूम है न, पिछले माह ही तो हमारे पेपर में लम्बी सरकारी विज्ञप्ति छपी थी।”

“हाँ, मुझे मालूम है।” अनुपम चलते-चलते उत्तर में कहता है।

“और यह सब। इस गाँव में तो कुछ भी परिवर्तन नहीं है। इट् मीन्स वे सारी सरकारी घोषणाएँ, विज्ञापन क्या केवल...।”

और अनुपम ने उसकी बात पूरी की थी “वह सब दिखावा था और यह सच, जो तुमने अपनी नंगी आँखों से अभी-अभी देखा। फिर सच और झूठ में फर्क तो होता ही है।”

“पर इतना गैप...?” सवाल था मोनिका का।

“अभी तुमने देखा ही क्या है, दो साल की पत्रकारिता में? मैं तो कहता हूँ कि हमारी पत्रकारिता जितनी गाँव से जुड़ेगी उतना ही करीब होंगे हम सभी। वरना यह भी तो सच ही है कि अखबार, मैगजीन या तो ग्लैमर बेच रहे हैं या फिर दारू की भट्ठी, मन्त्रियों के भ्रष्टाचार, हर्षद मेहता जैसे लोगों की दलाली और दाउद इब्राहिम जैसे स्मगलर्स के कस्टम, पुलिस से सम्बन्ध या फिर कौन औरत कहाँ बिकी, किसने

नंगा किया, पुलिस तथा अर्ध सैनिकों द्वारा बलात्कार की खबरें परोस रही हैं।”

“यह तो है।” मोनिका चलते-चलते अपनी सहमति देती है। तभी साथ में आया हुआ वह व्यक्ति सामने की एक पुरानी हवेली की ओर अंगुली से संकेत कर बतलाता है

“बाबूजी, यई है ठाकुर की हवेली। संभल कर जाना। यह आदमी निरा दरिंदा है दरिंदा।” वह आदमी वहाँ ठिठक कर खड़ा हो जाता है और वे कौतूहलवश हवेली की ओर बढ़ जाते हैं।

लहना गाँव में लगभग एक हजार परिवार थे। जितना पुराना गाँव उतनी ही लम्बी जड़ों वाली फलती-फूलती परम्पराएँ। ग्रामीण समाज में नागफनी की चुकीली शाखाओं की तरह रची-बसी थीं वे। परम्पराओं और रूढ़ियों की गिरफ्त में फँसे गाँव तथा गाँव वालों पर जाति भेद की अमिट छाप देखी जा सकती थी। गाँव दो हिस्सों में बँटा था। एक हिस्से में सवर्ण तथा दबंग जाति यानी बामन, बनिया, ठाकुर, राजपूत, जाट, त्यागी, यादव, गूजर, कायस्थ तथा कुर्मी जाति के लोग रहते थे। दूसरे में अवर्ण और निर्बल जातियाँ यानी चमार या चामड़, बाल्मीकि, खटीक, तेली, नाई, जुलाहे, खटबुने, मनियार आदि थे। एक हिस्से में गाय, भैंसों थीं, दूध-दही, बड़े-चौड़े मकान, पलंग, मसहरी, चाँदी के बर्तन, पेंचदार हुक्के, दूसरे हिस्से में टूटे-फूटे मकान, झंगोला हुई चारपाई, मिट्टी के हुक्के, पीतल, कांसे के बर्तन। एक हिस्से की औरतें बीस-बीस गज की घाघरी पहनतीं, चाँदी के गोटे की चमकीली बार्डर वाली ओढ़नी, दूसरे हिस्से की औरतों को फटे-पुराने कपड़े ही मयस्सर होते। गाँव में मन्दिर और कुआँ सवर्ण जातियों के हिस्से में ही था। एक जोहड़, जिसे गाँव के लोग तालाब भी कह देते थे, पानी के नाम पर वही अवर्णों के हिस्से में था, जिसमें जानवर और आदमी एक साथ नहाते और पानी पीते थे। अवर्णों के खेत न थे। वे सब सवर्णों की सम्पत्ति थे। उन्हीं में दलित जाति के लोग मजदूरी करते थे। अलबत्ता श्मशान भूमि गाँव के दोनों हिस्सों में थी। सवर्णों की अलग और अवर्णों की अलग। यानी सवर्णों और अवर्णों के मुर्दों की भी जात बनी रहती थी। अपनी-अपनी जाति को सीने से चिपकाए वे मिट्टी में मिल जाते थे। गाँव में जन्म लेने वाले हर बच्चे को पता हो जाता था कि वह किस जाति का है, उसका गोत्र क्या है, उसका पेशा क्या है, उसे शोषितों की पंक्ति में बैठना है या शोषकों की।

जैसे ही रात हुई, धुलिया की चौपाल में लोग जुड़ने लगे थे। एक तरफ औरतों के बैठने की जगह बनाई गई, दूसरी तरफ पुरुषों के। दो लालटेन पहले ही मँगा ली गई थीं, जिनमें तेल भर लिया गया था। चार-पाँच हुक्के भी रख दिए गए थे। इस बार पंचायत में आने से न औरतों को मना किया गया था, न बच्चों को।

सबसे पहले हरफूल उठकर बोलता है “पंचो तीन साल पहले जिस बहू को तुम सब हींगना गाँव से बिया कर लाए थे, उसे ठाकुर के मँझले ने सारे गाँव में नंगा कर घुमाया। अब पंच तो परमेश्वर होवे हैं। तुमी सब मिलकर तै करो कि क्या करना चड़्यै?”

तभी बीच में किसना कह उठा “हरफूल! तुमारी इकले की बऊ न थी, सारे गाँव की थी। उसकी इज्जत सारे गाँव की, सारी बस्ती की है।”

“हाँ, बात तो ठीक है।” कुछ लोगों ने समर्थन किया।

औरतों के बीच फुसफुसाहट उभरी “सई बात है भैना, किस के घर में बऊ बेटी ना है। सारे गाँव की इज्जत को धूल में मिला दिया है उस कुते ने।” बिरमो उन्हीं के आगे बैठी थी। वह गुस्से में बड़बड़ाई “सुसरे के आग लगी हुई है। बाप-बेटे को म्हारा जी तो ऐसा करे है कि उनका वोई दराती से काट दें।”

पंचायत में मर्द और औरतों के खेमे में अलग-अलग शोर होने लगा था। बीच में किसना को बोलना पड़ा “अब यूई रोला-रूक्का करते रओगे कि कुछ फैसला भी करोगे।” उसकी बात सुन पंचायत में हो रहा शोर थम गया था।

“भेरी मानो तो उनकी बियरबानी को भी ऐसैई नंगा कर देना चड़्यै।” कोने में बैठा हुक्मी बोला था।

“होस की बात कर हुक्मी। तू पगला गया है क्या, म्हारी और उनकी बियरबानी क्या अलग-अलग हैं।” बीच में बैठे हरिया को बोलना पड़ा था।

“बात तो बूढ़ा सई कहवै है।” औरतों के बीच से कुछ स्वर उभरे थे।

अचानक बिरमो का कुन्दन आक्रोश में कहता है “ठाकुर के खेतों में खड़ी फसल जला देनी चड़्यै हमें।”

हरिया फिर चमका “अन्न को भी कोई तबाह करे है क्या?”

“फिर हमें क्या करना चड़्यै?” रामौतार खड़ा होकर बोला।

“उतावली मत मचाओ, जो करेंगे पंच ही करेंगे।” हरिया के बराबर में बैठा सिरिया बोला था इस बार।

“हमें रात में जाकर ठाकुर की हवेली जला देनी चड़्यै।” अबकी किसनी का बेटा बोला था।

“तुम सब बच जाओगे क्या।” हरफूल ने टोका।

“उनके जिनावर कस्बे में ले जाकर बेच देने चड़्यै।” कोई बीच में कह उठता है।

“थै तो चोरी हुई।” बूढ़ों में से किसी ने कहा

“भलेराम जी फिर क्या करें?” गिरधारी बाल्मीकि ने बीच में उठकर कहा था।

“डूब मरो सुसरो।” अस्सी साल के हरिया की सफेद मूँछें फड़की थीं।

“डूब मरने के अलावा अब बचा ही क्या है।” बीच में किसी ने कहा।

“तुम कैसे जवान हो, कमबख्तों म्हारी बऊ को नंगे होते देखते रहे। ज रा भी सरम लिहाज नई आई। अब कोई कुछ कहवै, कोई कुछ। तुम्हारी गाँड़ में तब गू ना था, जो अब निकला जावै है?”

हरिया की बात सुन सारी पंचायत में सन्नाटा उतर आया। एक-एक व्यक्ति जैसे बुत बन गया हो। हुक्के पर रखी चिलम के बीच में पड़ा तम्बाकू जल गया था। बाहर बोरसी में उपले सुलग कर अंगारे बन दहकने लगे थे। किसी ने आज हुक्कों को मुँह नहीं लगाया था। तभी दोनों लालटेनें बुझ गईं। पंचायत में बैठे लोग-लुगाइयों में हलचल-सी मच गई। लालटेन को हिलाकर देखा, उसमें तेल समाप्त हो गया था। पर कोई आदमी-औरत बाहर नहीं गया। सब वैसे ही बैठे रहे, पूर्वस्थिति में। हरिया फिर चमका था “कोई अपनी जगै से न हिलै, अँधेरा हो गया हो तो क्या, हमें किसी का मूं ना देखना है।”

कुछ देर के सन्नाटे के बाद परसा ने अपना सुझाव रखा “हमें शहर चले जाना चड्यै।”

“पर शहर में मिलेगा क्या?” छिद्दा ने बीच में टोका।

उसकी बात पूरी की हरफूल ने “शहर में क्या है, न ढंग का रोजगार, न रहने को जगै। झुगियों में रहोगे। सूअरों की तरै कूड़ों में मूं मारते फिरोगे। कलिया का लौंडा गया था पारसाल, कैसी दुरगति हुई थी उसकी?”

अब तक सम्पत चुप था। वह अचानक खड़ा होकर कह उठा “शहर में होने को तो बहुत कुछ है पर सबको वह मिल नहीं पाता। हमें शहर जाकर कोशिश तो करनी चाहिए।”

“तूने कितनी कोशिश करके देख ली। कुछ हुआ, बता।” हरफूल के स्वर में गुस्सा था।

“पर भईया शहर में छुआछूत, जात-पाँत तो नहीं है।” सम्पत ने फिर अपनी बात रखी थी, जिसका समर्थन उसकी उम्र के युवकों ने किया था।

“जातपात की बीमारी सब जगै है, क्या गाँव क्या शहर।”

“पर हियाँ के बरब्बर तो नई होगी।” बीच में बिरमो का कुन्दन बोल उठा था।

तभी किसी ने सुझाव दिया “कबूतरी से भी तो सलाह-मशविरा करना चड्यै कि नहीं।”

“हाँ, बात तो सई है। वह तो बिचारी सबसे दुखी होगी।” कोई अँधेरे में ही कहता है।

तभी कबूतरी की रुलाई फूट पड़ती है। अँधेरे को चीरते हुए उसकी आवाज वहाँ बैठे सभी स्त्री-पुरुष, बूढ़े-जवान, बच्चों के हृदय को कंपित कर दूर-दूर तक चली जाती है। कबूतरी को रोते सुनकर एक बार सम्पत का मन भारी हो गया।

कबूतरी को चुप करने में लगी थीं बिरमो और रामकली। जितना वे चुप करातीं उतनी ही उसकी हिचकी बँधती। आँसुओं के साथ उसका कातर स्वर उभर रहा था “मईया...मेरा तो गाँव में कोई भी नहीं है। मुझे ठाकुरा ने नंगा कर दिया और सब देखते रै गए...।”

जैसे सबको साँप सूँघ गया था। बहुत देर तक कोई न बोला था। हरिया की भभकी ने अचानक माहौल को तोड़ दिया “अब म्यै रोना-धोना छोड़ो, भौत हुआ। सबने अपनी-अपनी बात कह ली। अगर मैं कुछ कऊँ तो, मेरी बात मानोगे?”

हरिया कुछ देर चुप रहा। गाँव में सबसे अधिक उम्र का बूढ़ा था हरिया। आज उसी को पंचायत का प्रमुख बनाया गया था। हरिया अँधेरे में जैसे लोगों की धड़कनों को जैसे टोह लेना चाहता था। वह बोला “मैं कुछ कऊँ, तुम सब मानोगे...?”

“हाँ, हम सब मानेंगे।” पंचायत में बैठे सभी स्त्री-पुरुषों का सामूहिक स्वर उभरा, जैसे जयघोष किया हो उन्होंने।

“तो हम नया गाँव बसाएँगे।” अन्ततः हरिया ने अपना फैसला दे ही दिया।

“नया गाँव और अपना गाँव।” गाँव के लोग-लुगाई हक्के-बक्के दोहराने लगे।

भरी पंचायत में सन्नाटा-सा तैर गया था। जैसे सभी की साँस अटक गई हो। अपनी जमीन, अपने घर भले ही टूटे-फूटे हों, कैसे छोड़ेंगे। हरिया ने सभी को अजीब से धर्म संकट में डाल दिया था। कुछ देर तक उनके बीच चुप्पी रही, जिसे हरिया ने तोड़ा “बस सबकी हवा निकल गई! अरे हिन्याँ रओगे तो ऐसे गुलाम बनकर रैना होगा। पानी में रह कर कहीं मगरमच्छ से बैर होवै है भला? फिर हम कर भी क्या सकते हैं? हम तो लाचार हैं। बस्ती के आधे मानसों की हड्डियाँ तो बूटी हो गई।”

बीच में चार-पाँच लोगों के खाँसने से हरिया पलभर के लिए चुप हो गया है। “हिन्या से निकलना ही पड़ेगा। बाकी तुमारी मरजी। मेरी तो मंशा अब यई है। जिस गाँव में म्हारी कोई इज्जत नई, उस गाँव में रैने से कोई फायदा नेई।” कहकर हरिया चुप हो गया। उसके तुरन्त बाद पंचायत में खुसर-फुसर होने लगी। लोग-लुगाई अलग-अलग सलाह-मशवरा करने लगे। तभी बिरमो का स्वर उभरा “म्हारा बुढ़ा ठीक कहवै है। हमें हिन्या से चले जाना ही चईयै। अब इस गाँव में रहने में कोई धरम-धौरा नई है।”

आधी रात बीत गई थी। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा था, पर हरिया का फैसला सुन पंचायत से उठे लोगों के भीतर अनायास ही जैसे उजाला हो गया था। कैसी अजीब बात थी? एक अस्सी साल के बूढ़े ने उन सबको संघर्ष की राह दिखलाई थी। वही बूढ़ा जो अस्सी साल से सारी परम्पराओं को किसी न किसी तरह मानता रहा था, आज अचानक उसके बूढ़े जिस्म से विद्रोह की भाषा उभर आई थी। सचमुच लहना गाँव के दलितों को गुलामी का अहसास हो गया था।

सूरजपाल चौहान

साजिश

“नत्थू तू पागल है क्या? मेरी बात क्यों नहीं मानता? इस ट्रांसपोर्ट के धन्धे में रखा ही क्या है? दिन-रात की मेहनत और तमाम तरह की सिर खपाई, कहीं दुर्घटना हो जाए, तो हो गया जीवन बर्बाद। ऊपर से सबसे बड़ी बात ये कि लोहा तुझे फले या न फले। कैसे चुकाएगा बैंक का कर्जा?” बैंक मैनेजर ने नत्थू को समझाते हुए कहा।

“फिर आप ही बताइए साहब मैं क्या करूँ? आप तो जानते ही हैं कि मैंने कितनी कठिनाई से बी.ए. की परीक्षा पास की है। पिता तो बचपन में ही चल बसे थे। माँ ने किस तरह सारी उम्र अपमान सहकर गाँव के मोहल्ले बुहार कर मुझे पढ़ाया, मैं ही जानता हूँ। बड़े सपने संजोये थे कि पढ़-लिखकर किसी शहर में सरकारी नौकरी मिल जाएगी। कितनी सड़कें नापीं लेकिन सफलता हाथ न लगी। हजार-डेढ़ हजार की क्लर्की हेतु पच्चास हजार की रिश्वत माँगते हैं लोग। भला मैं कहाँ से लाऊँ इतनी मोटी रकम। अब मैंने तय किया है कि बैंक से लोन लेकर एक मेटाडोर खरीद ली जाए। इस कार्य में कृपा कर आप मेरी सहायता करें।” नत्थू ने बैंक मैनेजर के सामने हाथ जोड़ते हुए कहा।

बैंक मैनेजर राम सहाय शर्मा नत्थू की बातें ध्यान से सुने जा रहा था। बीच में टोकते हुए बोला “नत्थू यही मैं तुझे समझाने का प्रयास कर रहा हूँ। ट्रांसपोर्ट के काम में कई प्रकार के लफड़े हैं, फिर तुझे इस काम का अनुभव भी नहीं है। यह काम तो बड़े-बड़े व्यापारियों का है।”

“तो फिर साहब, आप ही बताएँ कि मैं क्या करूँ?” नत्थू असमंजस की सी स्थिति में बोला।

“तू पढ़ा-लिखा है, मैं तो केवल सलाह ही दे सकता हूँ। तू पिगरी लोन हेतु फार्म भर कर क्यों नहीं देता? इस काम में लागत कम है और फायदा ज्यादा।” बैंक मैनेजर राम सहाय ने नत्थू को प्यार से समझाते हुए कहा।

“लेकिन साहब...।”

“अरे छोड़ न लेकिन-वेकिन को। किसी भी काम को व्यापार का रूप दिया जा सकता है। ला जल्दी से भरकर दे मुझे अपना फार्म, अभी कर्ज की मंजूरी हेतु अपने हस्ताक्षर किए देता हूँ।” मैनेजर ने नत्थू की बात को बीच से काटते हुए कहा।

बैंक मैनेजर की बातों के जाल में नत्थू पूर्ण रूप से उलझ चुका था। नत्थू को तनिक भी सोचने का अवसर नहीं मिला। नत्थू ने एक बार साहस बटोर उससे कहा “सर, मैं इस कार्य हेतु कर्जा नहीं लेना चाहता। मैं कोई अन्य कार्य कर लूँगा, लेकिन सूअर का काम नहीं करूँगा।”

“बस, तुम लोगों में यही कमी है। दो-चार किताबें क्या पढ़ गए कि समझने लगे अपने आपको बड़ा आदमी। कल्लन जाटव के लड़के श्यामा को देख, तेरी तरह बी.ए. पास है। उसने भी तो बैंक से कर्जा लेकर अपने चमड़े के काम को आगे बढ़ाया है। यह नेक सलाह मैंने ही उसे दी थी। आज लाखों में खेल रहा है।” बैंक मैनेजर ने अपने माथे पर बल डालते हुए कहा।

“किन्तु सर...।”

“फिर वही किन्तु-परन्तु! मैं तेरा कोई बुरा चाहूँगा। नत्थू भैया, दूसरे कार्यों में कम्पीटिशन बहुत अधिक है। तू उनमें सफल नहीं हो पाएगा, आगे तेरी मर्जी।” बैंक मैनेजर ने अपनी आँखों से ऐनक उतारते हुए कहा।

मैनेजर की बात सुनकर नत्थू के मन में रह-रहकर सवाल उठने लगे। वह सोच रहा था “एक्सीडेंट हो गया तो क्या होगा? बर्बाद हो जाऊँगा मैं, फिर कैसे चुकाऊँगा बैंक का कर्ज।”

बैंक मैनेजर राम सहाय मन ही मन खुश था। वह अपना ब्रह्मवाण नत्थू पर पूरी तरह से छोड़ चुका था। उसने सोचा कि अब लोहा गर्म है तो क्यों न हथौड़ा मारा जाए। हैड क्लर्क को आवाज लगाते हुए उसने कहा

“सतीश जरा हेल्प करना इसको फार्म भरवाने में। पिगरी लोन के लिए इसका कर्जा आज ही स्वीकार करना है।”

और फिर सतीश भारद्वाज ने सारी औपचारिकताएँ फटाफट पूरी कर दीं। हैड क्लर्क भारद्वाज ने भरा हुआ फार्म बैंक मैनेजर के सम्मुख मेज पर रख दिया। मैनेजर ने तुरन्त ही उस पर अपनी मंजूरी के हस्ताक्षर कर दिए। उसने नत्थू के चेहरे की ओर देखते हुए कहा “नत्थू तुम कल आकर अपना कर्ज का रुपया ले जाना।”

पढ़ा-लिखा नत्थू उस बैंक मैनेजर की साजिश को समझ नहीं पाया। वह तो मन ही मन खुश था कि बैंक मैनेजर कितने भले आदमी हैं, पिगरी-फार्म खोलने की कितनी

अच्छी सलाह दी है उन्होंने। अब वह घर के आँगन में बाड़ा बनाकर सूअर पालने का धंधा करेगा। नत्थू मार्ग में चलते-चलते यह सब बातें सोच रहा था।

बैंक मैनेजर शर्मा और हेड क्लर्क सतीश भारद्वाज दोनों बहुत खुश थे। वे दोनों अपनी सफलता पर एक दूसरे को देख कर मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे।

“साले चूहड़े-चमार पढ़-लिखकर व्यापार करेंगे? बैंक से उधार लेकर ट्रांसपोर्ट का धन्धा करेंगे, व्यापारी बनेंगे, ट्रेड चेंज करेंगे?” शर्मा और भारद्वाज आपस में बातें करते-करते ठहाका लगा कर हँसे।

“भारद्वाज भैया...।”

“जी सर...।”

“भविष्य में ध्यान रखना कि कोई भी अछूत-वर्ग का युवा अपना धन्धा शुरू करने के लिए बैंक से कर्जा हेतु प्रार्थना-पत्र भर कर दे, तो उसे उसके पैतृक धन्धे में ही लगने हेतु प्रेरित करना है। उसे ऐसा विश्वास दिलाओ कि वह अपना पैतृक धन्धा छोड़कर दूसरे धन्धों की कल्पना भी न करे।” बैंक मैनेजर ने अपने दिल की बात को बताते हुए हेड क्लर्क भारद्वाज से कहा।

“लेकिन सर, ऐसा करने से हमें क्या लाभ होगा?” सतीश ने गम्भीर मुद्रा बनाते हुए बैंक मैनेजर शर्मा से पूछा।

“अरे सतीश तू बुद्धू है।”

“कैसे सर...।”

बैंक मैनेजर ने दबे स्वर में सतीश से पूछा “जिसके बाप-दादा हमारे घरों की गंदगी साफ करते आए हों और जूठन खाकर बड़े हुए हों, भला उन्हें तुम अपने साथ बैठा कर खाना खिलाओगे?”

“मैं आपका अभिप्राय नहीं समझा।”

मैनेजर ने इधर-उधर देखा। आसपास कोई नहीं था। उसने मेज पर रखे पेपरवेट को हाथ से नचाते हुए कहा “देख सतीश, अगर ये अछूत अपना खानदानी धन्धा बन्द कर कोई नया धन्धा करने लगेंगे, तो आने वाली पीढ़ियाँ हमारे घरों की गंदगी कैसे साफ करेंगी? उस स्थिति में घर की गन्दगी क्या तुम खुद साफ करोगे?”

“अरे बाप रे।” सतीश ने अपना माथा पकड़ लिया और हैरानी से बोला “मैंने इस पहलू पर कभी सोचा ही नहीं था।”

“यही तो अन्तर है...आज भी हम चंद प्रतिशत लोग इस वर्ग पर अपनी सत्ता कायम रखे हुए हैं।”

“मान गए सर! क्या दिमाग पाया है आपने सर?” हेड क्लर्क सतीश ने बैंक मैनेजर शर्मा से कहा।

“चलो भारद्वाज, आज तुम मेरे घर चलो। आज अपनी इसी सफलता पर दोनों घर में बैठकर जश्न मनाएँगे।” मैनेजर शर्मा ने हेड क्लर्क सतीश से कहा।

नत्थू ने घर जाकर सारी बातें अपनी पत्नी शान्ता को बताईं। नत्थू की बातें सुनकर शान्ता का माथा ठनका। शान्ता पढ़ी-लिखी तो कम थी लेकिन थी बड़ी समझदार। बैंक मैनेजर की साजिश को वह जान गई थी कि मैनेजर ने उसके पति को ‘पिगरी लोन’ के लिए ही प्रेरित क्यों किया। वह उसे किसी और प्रकार का काम करने की सलाह दे सकता था।

“आखिर आपको उस धूर्त और मक्कार बैंक मैनेजर ने अपने जाल में फँसा ही लिया। आप इस मक्कार के ब्रह्मफॉस में आ गए।” शान्ता ने नत्थू से कहा।

“अरे, पागल है क्या तू? मैनेजर साहब भला मुझे मूर्ख बनाकर क्या लेंगे? वह क्या मेरे दुश्मन हैं? ‘पिगरी लोन’ हेतु उन्होंने मुझे उचित ही तो सलाह दी है।” नत्थू ने शान्ता की ओर हैरानी से देखते हुए कहा।

“आ गए न आप भी उसकी बातों में! क्या खाक पढ़े-लिखे हो? जब दूसरी जाति के लोग ट्रांसपोर्ट या दूसरा काम कर सकते हैं, तो तुम क्यों नहीं कर सकते?”

“अरे मूर्ख औरत! उसमें मेहनत बहुत अधिक है। लोहा फले या ना फले, यदि कभी दुर्घटना हो गई तब क्या होगा? घर बैठे ही हो जाऊँगा बर्बाद।” नत्थू ने शान्ता को बीच में ही टोकते हुए कहा।

नत्थू की बात सुनकर शान्ता मन-ही-मन मुस्कराई और बोली “सबसे कम मेहनत तो झाड़ू लगाने के काम में है। सुबह-सुबह मोहल्लों की सफाई करो और दारू पीकर सारे दिन मस्ती मारो। कोई काम फले या न फले। ये बेतुकी बातें ही हमें निकम्मा बनाती हैं। यही बातें हमारे विरुद्ध काम में लाई जाती हैं। मेरी बात मानो और कल जाकर बैंक से अपना कागज वापिस ले लो।” शान्ता ने नत्थू को समझाते हुए कहा।

शान्ता की बातों ने नत्थू की विचारधारा को फिर से बदल दिया। नत्थू जैसे सोते से जाग गया हो। मन ही मन उसने बैंक मैनेजर राम सहाय शर्मा को सबक सिखाने की ठान ली। इस विषय पर उसमें और शान्ता में लम्बी चर्चा हुई। दोनों ने तय किया कि बैंक मैनेजर शर्मा को सबक मिलना ही चाहिए।

उसी साँझ को उसने अपने टोले-मुहल्ले के युवकों से बात की। अगले दिन अगल-बगल के गाँवों के टोलों में भी यह चर्चा का विषय बन गया। इतवार के दिन नत्थू ने अपने गाँव में एक सभा बुलाई। शान्ता भी उस सभा में गई। दोनों ने बैंक मैनेजर द्वारा दलित युवकों को केवल ‘पिगरी’ का कर्ज देकर उन्हें उनके सुअर पालने के पुश्तैनी धन्धे में रखने और दूसरे धन्धों और पेशों में न जाने देकर, समाज की

मूलधारा से अलग रखने की साजिश पर प्रकाश डाला। इस आशय का एक प्रस्ताव भी सभा में पारित किया गया और अधिकारियों को भेज दिया गया। इसी सभा में मनचाहे पेशे के लिए कर्ज की सुविधा के लिए बैंक पर धरना देने की तिथि भी निर्धारित की गई।

निर्धारित तिथि पर दूर-दराज के दलित-पिछड़े टोलों के युवक नत्थू के घर के बाहर जमा होने लगे। एक विशाल जनसमूह नत्थू और शान्ता के नेतृत्व में चल पड़ा।

“मनचाहे पेशे के लिए कर्ज देना होगा।”

“पुश्तैनी धन्धों में रखने की साजिश बन्द करो।”

“हमें भी बहुमुखी विकास का अवसर दो।”

नारे लगाते हुए सैकड़ों लोगों ने बैंक को घेर लिया।

इतनी बड़ी भीड़ को देखकर बैंक मैनेजर राम सहाय शर्मा के हाथ-पाँव फूल गए। उन्होंने बड़े बाबू सतीश भारद्वाज को पता लगाने के लिए भेजा। बड़े बाबू ने नत्थू और शान्ता को सबसे आगे देखा, तो वह समझ गया कि माजरा क्या है।

इसी बीच जिला प्रशासन की तरफ से मैनेजर को फोन पर फोन आ रहे थे। वे पूछ रहे थे, “इस अशान्ति का कारण क्या है? पुलिस जा रही है, पर मामला शान्ति से निपटाओ! मामला दलितों का है। मामूली सी बात पर आप लोग बखेड़ा लगाते हैं।” प्रशासन एवं बैंक के ऊपर के अफसर फोन पर ताकीद पर ताकीद कर रहे थे।

लौटकर बड़े बाबू ने बताया “सर वही नत्थू को जो ट्रांसपोर्ट का लोन न देकर ‘पिगरी लोन’ दिया है। साला पालिटिक्स मारने लगा है सर। अपनी औरत को भी नेता बना के ले आया है। थोड़ा पढ़ क्या गए ये लोग सर, अब सर पर हाथ रखने लगे हैं। हैं तो साले नीच जात, पर होड़ लगाते हैं ब्राह्मण, बनियों से।”

इसी बीच नत्थू, शान्ता और कुछ अन्य प्रतिनिधि मैनेजर के कमरे में जबरन घुस आए। साथ में गाँव के मानिन्द लोग भी थे। मैनेजर ने तुरन्त लहजा बदल लिया। “अरे आओ भई नत्थू! बेकार तुम गुस्सा हो गए! हम तो उसी दिन तुमको ट्रांसपोर्ट का लोन दे देते। बड़ा अच्छा पेशा है ट्रांसपोर्ट का भी। लाओ अभी कागज पलट देते हैं। हम क्यों मना करेंगे भाई? जो धंधा तुम करना चाहो करो। हम तो तुम्हारी भलाई के लिए ही बात कर रहे थे कि तुम्हें...।”

शान्ता ने टोकते हुए कहा “बस कीजिए मैनेजर साहब। अपनी भलाई की बात अब हम खुद सोच लेंगे। आप कष्ट मत कीजिए। सदियों से आप लोग सोचते रहे हैं हमारे लिए। अब आप आराम कीजिए। अपना नफा-नुकसान हम खुद समझेंगे। गलती करके ही लोग सीखते हैं। हमें गुमराह मत कीजिए। आप अपने बेटे को ‘पिगरी का लोन’ देकर प्रशिक्षित करें, तो अच्छा रहेगा। पिछले हफ्ते आपने क्या कहा था और अभी कैसे बात कर रहे हैं? गिरगिट की तरह रंग बदलना तो कोई आप लोगों से सीखे।”

“अरे नहीं देवी जी आप बुरा मान गईं। ए सतीश जी जल्दी से दूसरा फार्म भरवाओ। अभी सैंक्शन कर देते हैं ट्रांसपोर्ट का लोन।”

“आइन्दा फिर किसी को गलत पट्टी पढ़ाई तो अच्छा नहीं होगा शर्मा जी! जो जैसा कर्ज माँगे वैसा दीजिए। आदेश उपदेश देने का धंधा बहुत हो चुका। अब यह सब बन्द कीजिए। अब सुनना सीखिए। नहीं तो अच्छा नहीं होगा।” गाँव के युवकों ने एक स्वर में कहा।

“आइन्दा ऐसा नहीं होगा।” मैनेजर ने झेंपते हुए वायदा किया।

बाद में सुना कि मैनेजर श्री शर्मा ने आवेदन देकर अपना स्थानान्तरण कहीं और करवा लिया है।

कावेरी

सुमंगली

“आह! अगे माय! आह...!” बुखार से सुगिया बेचैन है। शारीरिक पीड़ा से कहीं ज्यादा पीड़ा उसके मन में है। क्योंकि अपनेपन के दो शब्द किसी से नहीं मिले। इस भरी दुनिया में उसका अपना कहलाने वाला है भी कौन? कोई भी तो नहीं। सिर्फ मंगली कुतिया ही ऐसी है जिसे वह अपना कह सकती है। अपनी मजदूरी का आधा हिस्सा मंगली को ही खिलाती है और आधे से अपना गुजारा करती है। जो प्यार उसे मनुष्य नहीं दे पाया वह प्यार इस मूक जानवर से पाती रही है।

“कूँ...कूँ...कूँ...कूँ...” मंगली सुगिया के बिस्तर से सटी बैठी है। सुगिया को उठते देख वह भी उठ बैठी। सुगिया उसे अपनी ओर खींच लेती है। “आ मंगली! तुझे मैं क्या कहूँ? बहन, बेटा, माँ या दादी? तू ही तो मेरे लिए सब कुछ है। जब से इस झोंपड़ी में आई हूँ तुम भी उस दिन से साथ दे रही हो। साथ देने का कारण भी था। भयावनी काली रात, मूसलाधार वर्षा और दिल दहला देने वाली कड़कती बिजली। डर के मारे जान निकली जा रही थी। उस समय तू हमदर्द सहेली की भाँति झोंपड़ी के बाहर भींग रही थी, जो उस काली भयावनी रात का सहारा बन सकी। परन्तु ऐसा हमदर्द कहाँ मिला जो तुम्हें छोड़ दूँ? आ...आ...और नजदीक आ।”

सुगिया को अपनी कहानी मालूम नहीं। किसने उसे जन्म दिया और किसने पाला, कुछ भी तो नहीं जानती वह। जब से होश सँभाला तभी से उसकी कहानी की शुरूआत हुई है। जब वह आठ या नौ साल की थी, अपने को ठेकेदार की रखैल ही समझी थी। ठेकेदार के हवाले उसे किसने किया था? ठेकेदार की कामिनों के बीच वह भी कामिन का काम करती थी। उसी के बराबर की और भी बहुत सी कामिन थीं, जो ठेकेदार के आदेश पर दिन भर खटती थीं और रात में भोजन-पत्तर के बाद बेखटके सो जाती थीं। सोने के लिए भला गलीचा लगा कमरा कहाँ नसीब होता? बस खुले प्रकृति के आँगन में ही अपनी कथरी बिछाकर सो जातीं। जब बिल्डिंग बन कर तैयार हो जाती, तो कुछ दिन भवन का सुख अनुभव कर लेतीं। फिर तो इनके झोले बेरहमी से

बाहर फेंक दिए जाते। सुगिया को यह सब अच्छा नहीं लगता। मर-मर कर घर तैयार करो। पर हरामजादे थोड़े दिन चैन नहीं लेने देते। फेंको-फेंको, सामान बाहर निकालो! 'मकान एलाटमेंट' हो गया। पर उसे समझ में नहीं आता कि यह मुआ 'एलाटमेंट और फेकाउटमेंट' क्या होता है। उसे लगता यह तो बस हमारी कथरी-पथरी को बाहर फेंकने का बहाना मात्र है। बेचारी निरीह दृष्टि से देखती रह जाती।

सुगिया जब मात्र बारह वर्ष की थी, तभी उसे औरत बना दिया गया। उसे याद है वह काली मनहूस रात। अपनी टोली के बीच वह बेखबर सोई हुई थी। अचानक उसके शरीर पर एक लौह-स्पर्श-सा हुआ और उस पर एक दैत्यनुमा छाया सवार थी। वह चीखती रही, सुबकती रही। भगवान का वास्ता देती रही पर उसकी चीख-पुकार रात के अंधियारे में विलीन हो गई और उस बहशी दरिन्दे, भूखे भेड़िये ठेकेदार ने अपनी मनमानी करके ही उसे छोड़ा। दर्द के मारे वह बेहोश हो गई। उसके सारे कपड़े खून से तर थे। उसके शरीर का पोर-पोर फोड़े के समान दुख रहा था। सुबह आँख खुलते ही अपनी सेवा में तल्लीन एक बुढ़िया उसे नजर आई। यह बुढ़िया कोई और नहीं साथ में काम करने वाली दुखना की माँ थी। उसे पास पाकर वह फूट-फूटकर रो पड़ी थी। उसकी गोद में सिर छिपाकर कई घण्टे तक अपनी बरबादी का मातम मनाती रही थी। रोते-रोते उसकी बड़ी-बड़ी आँखें अंगारों के समान दहक उठी थीं।

“चुप रह बेटी! चुप रह! यह तो एक न एक दिन होना ही था पर तू बड़ी अभागन है री, जो इस छोटी उम्र में ही सब कुछ झेलना पड़ा। अब एकदम चुप हो जा वरना उस पिशाच को मालूम हो गया तो तेरी चमड़ी उधेड़कर रख देगा। हाँ हम गरीबों का जन्म ही इसलिए हुआ है। हमारी मेहनत से अट्टालिकाएँ तैयार होती हैं और उसके पुरस्कार के बदले में हमारे शरीर को रौंदा जाता है।” दुखना की माँ ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा।

सुगिया को दवा-दारू के बल पर जल्द ही चंगा बना दिया गया। सारा खर्च उसी कमीने ठेकेदार ने उठाया था। लेकिन उस दिन के बाद तो सुगिया पर अत्याचार का सिलसिला शुरू हो गया। किसी में इतना साहस नहीं था, जो ठेकेदार के विरुद्ध आवाज उठाता। सुगिया दिन पर दिन टूटती जा रही थी, बिखरती जा रही थी। पर किससे कहे अपना दुख? अगर काम छोड़ती है या अत्याचार का विरोध करती है, तो भूखों मरने की नौबत आ जाती है। यह पापी पेट जो न करवाए। हाँ दुखना कभी अपनापन भरे सहानुभूति के दो शब्द कह जाता है। वह मौका पाकर दुखना को अपनी पीड़ा सुना देती। दुखना भी भला क्या कर सकता था? उसे मालूम था कि जब तक ठेकेदार इसे पूरी तरह निचोड़ नहीं लेगा, छोड़ेगा नहीं। सुगिया दुखना को साहस भी देती। किन्तु उसमें इतनी हिम्मत न थी कि ठेकेदार के साथ उलझे। वह जानता था कि

इस भेड़िये के पंजे से किसी को छुड़ाना आसान काम नहीं है। सुगिया हार मानकर चुप्पी साध लेती। चौदह साल की उम्र में वह माँ बन गई। जब बच्चा पैदा हुआ तो बदनामी के डर से ठेकेदार के होश उड़ गए। उसने दुखना को डॉट-फटकार कर सुगिया के साथ सगाई करवा दी। दुखना न चाहते हुए भी बाध्य होकर तैयार हो गया था।

दुखना के साथ सुगिया की गृहस्थी की गाड़ी बड़े मजे से दौड़ती जा रही थी। पर अभागे का सौभाग्य शायद भगवान को भी नहीं सुहाता। अचानक ही सुगिया के सिर पर पहाड़ गिर पड़ा। एक दिन दुखना राजमिस्त्री की चार तल्ला बिल्डिंग पर ईंट और गारा दे रहा था। अचानक संतुलन खो जाने से उसका पैर फिसल गया। धम्म की आवाज ने सभी को आकृष्ट किया। चारों तरफ से लोग दौड़ पड़े। थोड़ी देर में यह खबर आग की तरह फैल गई। टोकरी पटक कर सुगिया भी दौड़ी। पीठ पर बँधा बच्चा न जाने कब गिर गया। उसे भी होश नहीं। वह तो दुखना की माँ की कृपा से बच्चा सकुशल बच गया। सुगिया पथराई आँखों से पल भर के लिए हतप्रभ-सी दुखना के खून से लथपथ निर्जीव शरीर को देखती रही, फिर पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

“हाय स्वामी! तुम भी मुझे छोड़ चले। मत जा स्वामी...मुझसे मत रूठ। मैं किसके सहारे जिऊँगी! आ ह ...ह!”

बहुत मुश्किल से सुगिया को संभाला गया था। फिर कब क्या हुआ कुछ पता नहीं। वह तो दो दिन तक बेहोश पड़ी रही। जब भी थोड़ा होश आता उसके होंठ फड़फड़ा उठते “मत जा...मुझे भी साथ ले चल।”

कुछ दिनों बाद सुगिया और उसका बच्चा दोनों ठीक हो गए। पर सुगिया के लिए चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा था। वह जाय तो किधर जाए? यद्यपि उसके बेटे का असली बाप जिंदा था, फिर भी दुनिया की नजरों में वह बिना बाप का ही बच्चा था। सब जानते हुए भी, पिता का भरपूर प्यार दुखना ने ही उस बच्चे को दिया था। सुगिया को उसने इस बारे में कभी भूल से भी एक शब्द नहीं कहा था। वह बेचारी खुद ही अहसानों से दबी रहती। दोनों का प्यार नियति को भी नहीं भाया। दुखना को हमेशा के लिए उनसे छीन लिया। सुगिया एक पल भी उसे नहीं विसरती। बिना उसे खाना खिलाए वह खुद कभी नहीं खाती थी। अब तो एक कौर भी डालना उसके लिए दूभर था। थाली में हाथ डालते ही फफकने लगती। फिर भी उसके लिए न सही, इस मासूम के लिए तो जीना ही था। हर पल दुखना याद आता। मर्द आखिर मर्द ही होता है, उसका आपसी प्रेम देखकर मजदूर भी जलते थे। दुखना की माँ को कई बार लोग छेड़ते “अरे जा, जा बड़ी पोते वाली बनी फिरती है। जैसे सचमुच यह दुखना का ही बेटा हो।”

बुढ़िया भी ईट का जवाब पत्थर से देती “अरे जा-जा! बड़ा आया है दूध धोया बनने। किसी को कुछ कहने से पहले अपने गिरेबान में भी तो झाँका होता। तू किसका पाप है, मुझे पता है।” फिर स्वतः उसकी आँखों से आँसू उमड़ पड़ते। वह फिर कहने लगती “हम गरीबों की यही जिन्दगी है। जीने वाला बिना दूसरों को गिराए खुद ऊपर नहीं उठ सकता रे।”

सुगिया को एक-एक बात याद आती तो माथे पर हाथ रखकर टप-टप आँसू टपकाने लगती।

दुखना ने बच्चे का नाम सुखदेव रखा था। एक दिन सुखदेव को बहुत जोर का बुखार आ गया। बुखार घटने का नाम ही नहीं ले रहा था। बदन तवे की तरह जलने लगा था। सुगिया के पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी। वह सबसे पैसे माँगकर थक गई। कहीं भी बात नहीं बनी। अन्त में ख्याल आया उसी पिशाच ठेकेदार का, जो फिलहाल उसकी मदद कर सकता था। उस कुत्ते की सूरत तो वह देखना भी नहीं चाहती थी। पर बेटे के जीवन का सवाल था। आखिर बेटा तो उसी का है। जरूर मदद करेगा! ममता की मूर्ति माँ उस भेड़िये के सामने अपना आंचल पसार कर गिड़गिड़ा रही थी।

“बाबू सुखदेवा को बहुत जोर का बुखार हो गया है। जरा छूकर देख ले बाबू! यदि इसे तुरन्त डॉक्टर के पास नहीं ले गई, तो कुछ भी हो सकता है। बस दो हाजरी के रुपए दे दो बाबू! बड़ी किरपा होगी।”

ठेकेदार मुँह पर ताव देते हुए बोला “आ पहले इधर तो आ मेरी बुलबुल! मुझे विश्वास था कि तुम खुद एक दिन मेरे पास आओगी। मुझे बुलाना नहीं पड़ेगा।”

“बाबू उसे तुरन्त अस्पताल ले जाना है। दुखिया पर दया करो।” वह बोली।

लेकिन वह हवस का पुजारी अपने ही नशे में चूर इसकी कुछ न सुन सका, बच्चे को गोद से छीनकर अलग हटा दिया।

“बाबू ऐसा जुल्म मत करो। आखिर तुम्हारा ही तो बेटा है। पहले इसकी जान देखो।” सुगिया गिड़गिड़ाती रही।

“हूँ...हूँ मेरा बेटा। छिनाल-पतुरिया। ऐसी बात मुँह से निकाली तो गला घोट दूँगा समझी। सौ मर्द के पास रहकर मुझे बदनाम करती है! खबरदार जो दुनिया की गंदगी को मेरे मुँह पर फेंकने की कोशिश की।”

सुगिया बुत की भाँति अपने दम तोड़ते बच्चे को देखती रही। फिर हल्की-सी आशा लिए अपने आपको परिस्थिति के हवाले कर दिया। कोई माँ अपने बच्चे को बचाने के लिए इससे बड़ी कुर्बानी और क्या कर सकती है? एक ओर उसके शरीर से खिलवाड़ हो रहा था, दूसरी तरफ उसका बच्चा निर्जीव-सा पड़ा था। सुगिया अपनी जिन्दगी से तंग आ गई थी। कैसी विवश थी वह माँ। अपनी हवस की प्यास बुझाकर

उस पिशाच के बच्चे ने एक नया पैसा देना तो दूर, उसे तुरन्त अपनी नजरों से दूर हो जाने को कहा। अपने दुर्भाग्य पर सुबकती सुगिया बच्चे को छाती से चिपकाए कूड़ा फेंकने वाले ठेकेदार के पास भागी-भागी गई। पर हर ठेकेदार का रूप उसे एक जैसा लगा।

उसकी जवानी को घूरती हुई दो खूंखार आँखें हर जगह मिलीं। एक पल गँवाए बगैर वह पास की प्राइवेट डिस्पेंसरी की ओर भागी और जाकर डॉक्टर के पैर पर बच्चे को रख दिया।

आँसुओं के फैलाव को बड़ी मुश्किल से रोकती हुई बोली “डॉक्टर बाबू भगवान के लिए इस बच्चे को बचा लो। आप जो भी कीमत चाहो देने को तैयार हूँ। जल्दी करो साहब वरना बच्चे को कुछ हो जाएगा।”

उस अभागिन को शायद यह पता नहीं था कि बच्चा तो कब का दम तोड़ चुका था। डॉक्टर ने बड़ी मुश्किल से सुगिया को अलग कर बच्चे को देखा।

“अनर्थ हो गया।” वह लम्बी साँस खींचकर बोला।

आँखों से आँसू छलछला आए। सुगिया के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा “बेटी अब कोई भी डॉक्टर इसे जिन्दा नहीं कर सकता।”

सुगिया के ऊपर फिर एक वज्रपात! उसे विश्वास नहीं हो रहा था। वह पागल की तरह चिल्लाने लगी।

“नहीं ऐसा न कहो बाबू! कह दो यह झूठ है! झूठ है...मेरा बच्चा ठीक है। ठीक से देखो बाबू!”

उसके क्रंदन से सभी मरीजों की आँखें नम हो आई थीं। बड़ी कोशिश के बाद उसे विश्वास कराया गया कि बच्चा मर गया है। वह छाती पीटती झोंपड़पट्टी में आ गई। वह बच्चे की अन्तिम क्रिया के बाद तक बेहोश थी। आँख खुली तो दुखना की माँ की गोद में पाया। होश में आते ही वह चिल्लाई “मेरा बच्चा! मेरा बच्चा।”

दिन मानो पहाड़ बन गए थे। ऐसे समय में उसे सास का बड़ा सहारा था। लेकिन यह सहारा भी जल्दी ही छूट गया। जवान बेटे और पोते की मौत ने बुढ़िया को भी घसीट लिया। मातम मनाने के बाद जिन्दगी उसी पुराने ढर्रे पर चल पड़ी।

“सुगिया हमारी बात मानो। कोई जीवन साथी चुन लो। पहाड़-सी जिन्दगी कैसे गुजारोगी।” लोग कहते।

सुगिया फफकने लगती। आँसू की बूंदें टप-टप चू पड़तीं। वह कैसे समझाए कि उजड़ी हुई गृहस्थी को वह अब हरा-भरा नहीं देख सकती। वह सोचती शरीर नोचवाने से अच्छा किसी के साथ लग जाए। परन्तु कोई भी तैयार न था। जवानी भर उसके शरीर को ठेकेदारों ने अपनी हवस का शिकार बनाया। इसके अलावा कोई चारा नहीं

था सुगिया के पास। अब तो हमदर्द के रूप में मंगली मिल गई थी। प्यार के झोंके तो सपने की तरह आए और चले गए।

आज बुखार में उसे मंगली की कूँ...कूँ...कूँ...की आवाज भी भली लग रही थी।
“मंगली तुझमें और मुझमें क्या फर्क है। तू भी जीवन से हारी मैं भी हारी। जिँगे साथ मरेंगे साथ। तेरे और मेरे दिल को समझने की कोशिश किसने की? किसी ने तो नहीं।” वह बुदबुदाई...!

सुशीला टाकभौरे

सिलिया

नानी प्यार से उसे सिलिया ही कहती थी। बड़े भैया ने अपनी शिक्षा अनुरूप सूझ-बूझ के अनुरूप उसका नाम शैलजा रखा था। माँ पिताजी की वह सिल्लो रानी थी।

सिलिया ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ रही थी। साँवली-सलोनी, मासूम-भोली, सरल व गम्भीर स्वभाव वाली सिलिया, स्वस्थ देह के कारण अपनी उम्र से कुछ ज्यादा ही बड़ी लगती थी। इसी वर्ष 1960 की सबसे अधिक विशिष्ट घटना घटी हिन्दी अखबार 'नई दुनिया' में विज्ञापन छपा 'शूद्र वर्ण की वधू चाहिए'।

मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल के जाने-माने युवा नेता सेठी जी अछूत कन्या के साथ विवाह करके समाज के सामने एक आदर्श रखना चाहते थे। उनकी एक ही शर्त थी कि लड़की कम से कम मैट्रिक हो।

मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के इस छोटे गाँव में भी विज्ञापन को पढ़ कर हलचल मची थी। गाँव के पढ़े-लिखे लोगों ने ब्राह्मण, बनियों ने सिलिया की माँ को सलाह दी "तुम्हारी बेटी तो मैट्रिक पढ़ रही है, बहुत होशियार और समझदार भी है तुम उसका फोटो और नाम-पता-परिचय लिखकर भेज दो। तुम्हारी बेटी के तो भाग्य खुल जाएँगे, राज करेगी तेरी बेटी! सेठी जी बहुत बड़े आदमी हैं, तुम्हारी बेटी की किस्मत अच्छी है।"...

सिलिया की माँ अधिक जिरह में न पड़ कर केवल इतना ही कहती "हाँ भैया जी। हाँ दादा जी। हाँ बाई जी, सोच-विचार करेंगे।"

सिलिया के साथ पढ़ने वाली सहेलियाँ उसे छेड़तीं, हँसतीं और मज तक करतीं मगर सिलिया इस बात का कोई सिर-पैर नहीं समझ पाती। उसे बड़ा अजीब लगता क्या कभी ऐसा भी हो सकता है?

इस विषय में घर में भी चर्चा होती। पड़ोसी और रिश्तेदार कहते "फोटो और नाम-पता भेज दो।"

तब सिलिया की माँ अपने घर वालों को अच्छी तरह समझा कर कहती

“नहीं भैया, यह सब बड़े लोगों के चोचले हैं। आज सबको दिखाने के लिए हमारी बेटी के साथ शादी कर लेंगे और कल छोड़ दिया तो हम गरीब लोग उनका क्या कर लेंगे? अपनी इज्जत अपने समाज में रह कर ही हो सकती है। उनकी, दिखावे की चार दिन की इज्जत हमें नहीं चाहिए। हमारी बेटी उनके परिवार और समाज में वैसा मान-सम्मान नहीं पा सकेगी फिर वह, न ही हमारे घर की रह जाएगी, न ही बाहर की! न इधर की न उधर की! हमसे भी दूर हो जाएगी। हम तो नहीं देवेंगे अपनी बेटी को। हमीं उसको खूब पढ़ाएँगे-लिखाएँगे। उसकी किस्मत में होगा तो इससे ज्यादा मान-सम्मान वह खुद पा लेगी।”

माँ की बातों को सुनकर सिलिया के मन में भी आत्मविश्वास जगने लगा था और साथ ही आत्मसम्मान जाग उठा था। उसे वह दिन आज भी अच्छी तरह याद है।

12 साल की सिलिया डरी सहमी-सी एक कोने में खड़ी थी और मामी अपनी बेटी के प्रति अत्यंत दुःखी और निराशा जैसी भावनाएँ व्यक्त कर रही थी।

“...क्यों री, तुझे नहीं मालूम, अपन वा कुएँ से पानी नहीं भर सके हैं? क्यों चढ़ी तू वा कुआँ पर, क्यों रस्सी बाल्टी को हाथ लगाई?” और वाक्य पूरा होने के साथ ही दो-चार झापड़, घूँसे और बरस पड़ते मालती पर। बेचारी मालती। दोनों बाँहों में अपना मुँह छिपाए चीख-चीखकर रो रही थी। साथ ही कहती जा रही थी

“ओ बाई माफ कर दे, अब ऐसा कभी नहीं करूँगी।”

मामी का गुस्सा और मालती का रोना देखकर सिलिया अपराधबोध का अनुभव कर रही थी। वह अपनी सफाई में बहुत कुछ कहना चाहती थी मगर इस घमासान प्रकरण में उसकी आवाज धीमी पड़ जाती। मामी को थोड़ा शान्त होते देख सिलिया ने थोड़ा साहस बटोरा “मामी मैंने तो मालती को मना किया था मगर वह मानी ही नहीं। कहने लगी जीजी प्यास लगी है, पानी पिँएँगे। मैंने कहा, कोई देख लेगा तो कहने लगी “अरे, भरी दोपहरी में कौन देखने आएगा। बाजार से यहाँ तक दौड़ते आए हैं, प्यास के मारे दम निकला रहा है।”

मामी बिफरकर बोली “घर कितना दूर था, मर तो नहीं जाती? मर ही जाती तो अच्छा रहता इसके कारण उसने कितनी बातें सुनाई।” मामी ने दुख और अफसोस के साथ अपना माथा ठोंकते हुए कहा था “हे भगवान तूने हमारी कैसी जात बनाई।”

सिलिया नीचे देखने लगी। सच बात थी। गाडरी मुहल्ला के जिस कुएँ से मालती ने पानी निकाल कर पिया था वहाँ से बीस-पच्चीस कदम पर ही मामा-मामी का घर था। जिसकी रस्सी बाल्टी और कुएँ को छूकर मालती ने अपवित्र कर दिया था वह स्त्री रेवड़ पालती थी। गाडरी मुहल्ले के अधिकांश घरों में भेड़ और बकरियों को पालने का और उन्हें बेचने-खरीदने का व्यवसाय किया जाता था। गाडरी मुहल्ले से

लगकर ही आठ-दस घर भंगी समाज के थे। सिलिया के मामा-मामी यहीं रहते थे। मालती सिलिया की हमउम्र थी। बस साल-छः महीना छोटी होगी मगर हौसला और निडरता उसमें बहुत ज्यादा थे। जिस काम को करने की नसीहत उसे दी जाए, उसे करके वह खतरे का सामना करना जानती थी। सिलिया गम्भीर और सरल-स्वभाव की आज्ञाकारी लड़की थी।

मालती को रोता हुआ देख उसे खराब जरूर लगा मगर वह इस बात को समझ रही थी कि इसमें मालती की ही गलती है “जब हमें पता है कि हम अछूत दूसरों के कुएँ से पानी नहीं ले सकते, तो फिर वहाँ जाना ही क्यों?” वह बकरी वाली कैसी चिल्ला रही थी.. “ओरी बाई दौड़ो री, जा, मोड़ी को समझाओ देखो तो, मना करने के बाद भी कुएँ से पानी भर रही है। हमारी रस्सी बाल्टी खराब कर दई जाने...।”

और मामी को उसने कितनी बातें सुनाई थीं “क्यों बाई, जई सिखाओ हो तुम अपने बच्चों को.. एक दिन हमारे मूंड पर मूतने को कह देना। तुम्हारे नज दीक रहते हैं, तो का हमारा कोई धरम-करम नहीं है? का मरजी है तुम्हारी, साफ-साफ कह दो।”

मामी गिड़गिड़ा रही थी “बाई जी, माफ कर दो। इतनी बड़ी हो गई मगर अकल नहीं आई इसको। कितना मारूँ हूँ फिर भी नहीं समझे।” और मामी वहीं से मालती को मारती हुई घर लाई थीं।

‘बेचारी मालती!’ सिलिया सोच रही थी कि भगवान उसे जल्दी ही अकल दे देंगे, तब वह ऐसे काम नहीं किया करेगी।

इसके एक साल पहले की बात है पाँचवीं कक्षा के टूर्नामेंट हो रहे थे। खेलकूद की स्पर्धाओं में उसने भी भाग लिया था। अपने कक्षा शिक्षक और सहपाठियों के साथ वह तहसील के स्कूल में गई थी। उसकी स्पर्धाएँ आरम्भ में ही लेने से जल्दी पूरी हो गई। वह लम्बी दौड़, कुरसी दौड़ स्पर्धाओं में प्रथम आई थी। वह अपनी खो-खो टीम की कैप्टन थी और खो-खो की स्पर्धा में उसी के कारण जीत मिली थी। खेलकूद के शिक्षक गोकुल प्रसाद ठाकुर जी ने सबके सामने उसकी बहुत तारीफ की थी। साथ ही पूछा था “शैलजा, यहाँ तहसील में तुम्हारे रिश्तेदार रहते होंगे, तुम वहाँ जाना चाहती हो, हमें पता बताओ, हम पहुँचा देंगे” सिलिया मामा-मामी के घर का पता जानती थी। मगर शिक्षकों के समक्ष उनका पता बताने में उसे संकोच हो रहा था। शर्म के मारे वह नहीं बता पाई। उसने कहा “मुझे तो यहाँ किसी का भी पता मालूम नहीं।” तब सर ने उसकी सहेली हेमलता से कहा था “हेमलता, इसे अपनी बहन के घर ले जाओ। शाम को सभी एक साथ गाँव लौटेंगे, तब तक यह वहाँ आराम कर लेगी।” हेमलता ठाकुर सिलिया के साथ ही पाँचवीं कक्षा में पढ़ती थी। उसकी बड़ी बहन का ससुराल तहसील में था। उनका घर तहसील के स्कूल के पास ही था।

हेमलता सिलिया को लेकर बहन के घर आई। बहन की सास ने हँस कर उनका

स्वागत किया। हेमलता को पानी का गिलास दिया। दूसरा गिलास हाथ में लेकर सिलिया से पूछने लगी “कौन है, किसकी बेटी है? कौन ठाकुर है?” सिलिया कुछ कह न सकी। हेमलता ने कहा “मौसी जी मेरी सहेली है, साथ में आई है। इसके मामा-मामी यहाँ रहते हैं मगर इसे उनका पता मालूम नहीं है।” बहन की सास उसे ध्यान से देखते हुए विचार करती रही फिर हेमलता से जाति के विषय में पूछा। हेमलता ने धीरे से बता दिया। उसे लगा जाति सुनकर मौसी जी एक मिनट के लिए चौंकी। पर उन्होंने अपने आप को संयत करते हुए सिलिया से पूछा

“गाडरी मुहल्ला के पास रहते हैं?”

सिलिया ने हाँ कहकर सिर झुका लिया। तब मौसी जी ने अतिरिक्त प्रेम जताते हुए कहा “कोई बात नहीं बेटी हमारा भैया तुम्हें साइकिल पे बिठा के छोड़ जाएगा।” ऐसा कहकर मौसी जी पानी का गिलास लेकर वापिस अन्दर चली गई। सिलिया को प्यास लगी थी मगर वह मौसी जी से पानी माँगने की हिम्मत नहीं कर सकी। मौसी जी के बेटे ने उसे गाडरी मोहल्ले के पास छोड़ दिया था। सिलिया रास्ते भर कुड़ती आ रही थी। आखिर उसे प्यास लगी थी, तो उसने मौसी जी से पानी क्यों नहीं माँग कर पिया। तब मौसी के चेहरे पर एक क्षण के लिए आया भाव उसकी नज़रों में तैर गया। कितना मुखौटा चढ़ाए रखते हैं ये लोग? मौसी जी जानती थीं कि उसे प्यास लगी है पर जाति का नाम सुनकर पानी का गिलास लौटा ले गई। ‘क्या वे पानी माँगने पर इन्कार कर देतीं?’ सिलिया को यह प्रश्न साल रहा था।

सिलिया को देखकर मामा-मामी मालती और सभी लोग बहुत खुश हुए थे। बड़े उल्लास के साथ मिले थे मगर सिलिया हेमलता की बहन की ससुराल से मिली उमस को भूल नहीं पा रही थी। शाम के समय मामा ने उसे स्कूल पहुँचा दिया था।

सिलिया का स्वभाव चिन्तनशील बनता जा रहा था। परम्परा से अलग नए-नए विचार उसके मन में आते। वह सोचती आखिर मालती ने ऐसा कौन-सा जुर्म किया था, प्यास लगी और पानी निकाल कर पी लिया। फिर वह सोचने लगती कि क्यों वह हेमलता की मौसी जी से पानी नहीं ले सकी थी? और अब यह विज्ञापन उच्च वर्ग का नवयुवक, सामाजिक कार्यकर्ता जाति भेद मिटाने के लिए शूद्र वर्ण की अछूत कन्या से विवाह करेगा? यह सेठी महाशय का ढोंग है, आडम्बर है या सचमुच वे समाज की परम्परा को बदलने वाले सामाजिक क्रांति लाने वाला महापुरुष हैं? उसके मन में यह विचार भी आता है कि अगर उसे अपने जीवन में ऐसे किसी महापुरुष का साथ मिला तो वह अपने समाज के लिए बहुत कुछ करेगी। लेकिन क्या कभी ऐसा हो सकता है? यह प्रश्न उसके मन से हटता ही नहीं था।

माँ के यथार्थ के आधार पर कहे गए अनुभव कथन पर उसका आस्थापूर्ण

विश्वास था। मध्यप्रदेश की जमीन में सन् 60 तक ऐसी फसल नहीं उगी थी जो एक छोटे गाँव की अछूत मानी जाने वाली भोली-भाली लड़की के मन में अपना विश्वास जगा सके।

दूसरों की दया पर सम्मान? अपने निजत्व को खोकर दूसरों के शतरंज का मोहरा बनकर रह जाना, बैसाखियों पर चलते हुए जीना! नहीं, कभी नहीं!

सिलिया सोचती, “क्या हम इतने ही लाचार हैं, आत्मसम्मानरहित हैं? हमारा अपना भी तो कुछ अहं भाव है। उन्हें हमारी जरूरत है, हमको उनकी जरूरत नहीं। हम उनके भरोसे क्यों रहें। अपना सम्मान हम खुद बढ़ाएँगे!”

सिलिया ने मन ही मन दृढ़ संकल्प किया “मैं बहुत आगे तक पढ़ाई करूँगी, पढ़ती रहूँगी, शिक्षा के साथ अपने व्यक्तित्व को भी बड़ा बनाऊँगी। उन सभी परम्पराओं के कारणों का पता लगाऊँगी, जिन्होंने हमें अछूत बना दिया है। मैं विद्या, बुद्धि और विवेक से अपने आपको ऊँचा सार्थक करके रहूँगी। किसी के सामने झुकूँगी नहीं मैं। न ही अपमान सहूँगी।”

इन बातों का मन ही मन चिन्तन, मनन करती सिलिया ने एक दिन अपनी माँ और नानी के सामने कहा

“मैं शादी कभी नहीं करूँगी माँ।”

माँ और नानी अपनी भोली-भाली बेटी को ध्यान से देखती रह गईं। नानी खुश होकर बोली “शादी तो एक न एक दिन करनी ही है बेटी, मगर इसके पहले तू खूब पढ़ाई कर ले, इतनी बड़ी बन जा कि बड़ी जात के कहलाने वालों को अपने घर नौकर रख लेना।”

माँ मन ही मन मुस्कुरा रही थी। सोच रही थी, “मेरी सिल्लो रानी को मैं खूब पढ़ाऊँगी, उसे सम्मान के लायक बनाऊँगी।”

रजत रानी 'मीनू'

सुनीता

सुनीता मात्र सात साल की थी। मानों तभी से उसको लड़की होने का अहसास होने लगा था। यानी वह लड़के से कुछ अलग है, कुछ कम दर्जे की है।

परिवार में दूसरे बच्चे का जन्म जब लड़की के रूप में होता है तो घर में कोई भी खुशी का इजहार नहीं करता। यदि यह क्रम लड़के की चाह में जारी रहे तो बेटियाँ परिवार की नजरों में और ज्यादा बोज़ लगने लगती हैं। कहने को तो सुनीता का परिवार अम्बेडकरवादी और बौद्ध था, लेकिन संस्कार वही पुराने। दिखावे के लिए बेटी को स्कूल भेज दिया था। सुनीता के भाई का जन्म हुआ तो घर में खुशी की लहर दौड़ने लगी। मोहल्ले भर में मिठाइयाँ बाँटी गईं। दावतें दी गईं। जैसे-जैसे भाई बड़ा होता गया, जैसे-जैसे सुनीता को अपने साथ हो रहे उपेक्षापूर्ण व्यवहार का अहसास असह्य होता गया।

एक दिन माँ ने कहा “सुनीता आज स्कूल मत जा। भाई को संभालना है। घर में कामकाज बहुत ज्यादा है।”

सुनीता बोली “माँ कल से मेरी परीक्षाएँ हैं।” मुझे आज स्कूल जाना जरूरी है। टीचर इसे इम्पोर्टेंट बता रही हैं।”

माँ ने पिताजी को आवाज लगाते हुए कहा “एजी सुनते हो, यह तुम्हारी लाडली अब तो जबान लड़ाने लगी है।”

छेदालाल ने कहा “क्या बात है भई? क्यों शोर मचा रही हो?”

सुनीता की माँ ने फिर से बात दोहराते हुए कहा “आज इस लड़की को स्कूल जाने से मना किया तो कहती है कल से मेरी परीक्षाएँ हैं।”

पिताजी ने तीखे स्वर में डाँटा “ए सुनीता कान खोल के सुन! हमें तुम्हें कलट्टर-वलट्टर तो बनाना नहीं है और न ही तू बन पाएगी। फिर तेरी पढ़ाई लल्ला से बढ़ कर तो है नहीं। जैसे भी तो पराए घर जाएगी, तो चिट्ठी-पत्री लायक थोड़ा-सा पढ़ जा। वंश तो लल्ला ही चलाएगा।”

सुनीता को लगा जैसे उसके ऊपर बिजली सी गिर गई है। वह टूटने लगी। उसके मन पर यह अहसास और भी गहरा हो गया कि वह लड़की है क्योंकि लड़की को स्वाभाविक रूप से परिवार वाले उपेक्षा की दृष्टि से देख सकते हैं। उसके बालमन ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि उसे पढ़ना है। सुनीता माँ-बाप की बात को कड़वे घूँट की तरह पी गई। किन्तु सब कुछ सहते हुए भी पढ़ती रही। इम्तहान भी उसने ठीक-ठाक से दिए।

समय बीतता गया। सुनीता समय के अन्तराल को झेलती रही। पारिवारिक समस्याओं को सहती रही। एक दिन सुनीता अखबार लिए पिताजी के पास दौड़ी-दौड़ी आई। पिताजी ने पूछा “क्या बात है सुनीता? इस अखबार में कुछ खास चीज छपी है क्या जो इसे बगल में दबाए घूम रही हो?”

“हाँ पिताजी, मैं पास हो गई हूँ प्रथम श्रेणी में।”

पिताजी ने अरुचि दिखाते हुए मुँह बनाया और कहा “ठीक है, इसमें इतना खुश होने की क्या बात है?” सुनीता इस खुशी से दौड़ी आई थी कि पिताजी इस खबर को सुनकर खुश होंगे, किन्तु छेदालाल ने न तो प्रसन्नता व्यक्त की, न ही प्रोत्साहन दिया। इससे सुनीता का दिल बैठ गया।

सुनीता की खुशी उसके पिता छेदालाल की चिन्ता का कारण बनने लगी। वे सोचने लगे, लड़की शादी के लायक हो गई। ठाकुर शेर सिंह का बेटा बहादुर सिंह और चन्दा अहीर ने तो उसे छेड़ने की हिम्मत भी की थी। स्कूल जाते देख वे उस पर बुरी नजर डालने लगे थे।

वे व्यंग्य कसते थे “चमारी पढ़-लिखकर अफसर बनेगी। गाँव में बड़ी जाति के लोग लड़कियों को पढ़ाना जरूरी नहीं समझते, पर छेदा चमार को अपनी औकात का शायद पता नहीं है।” सुनीता स्कूल से सीधी घर आती। सबकी बातों को अनसुनी करती। मन ही मन सोचती ‘कैसे इन बदमाशों के दाँत खट्टे किए जाएँ।’ फिलहाल वह अपनी शिक्षा पूरी करनी चाहती थी। इसलिए वह पढ़ाई से अपना मन भटकने नहीं देती थी। वह सोचती माँ पिताजी को गुण्डों के बारे में बताएगी तो वह निश्चय ही उसकी पढ़ाई रोक देंगे। तब वह लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाएगी। इसलिए वह चुपचाप सहती रही।

एक दिन ‘सुनीता’ ने सोते समय सुना कि उसके पिताजी उसकी माँ से कह रहे हैं कि उन्होंने उसके लिए एक लड़के की बात चलाई है, जो ट्रक ड्राइवर है। बहुत नेक चाल-चलन का है। सुनीता की माँ ने बीच में टोकते हुए पूछा था, “मैंने तो सुना है यह ट्रक ड्राइवर बहुत पियत हैं।”

पिताजी ने सुनीता की माँ चन्दो देवी की बात को महत्वहीन समझते हुए कहा, “खाना-पीना तो जिन्दगी का शौक है और आजकल कौन नाही पियत है? शहर में

अफसर लोग भी पियत हैं। पीना खाना बुरा थोड़े ही है। इसे स्टेटस कहते हैं। लड़के की पक्की नौकरी है। खान-पियन-पिहन ओढ़न की कमी थोड़े ही रहेगी?”

सुनीता की माँ पुनः बोली “अजी पियन वालों के घर उजड़ जात हैं। लाख सम्पत्ति कमाने पर पियन वालन के घर कौड़ी नाए जुड़त है।”

यह बात सुनकर छेदालाल ने ठंडे दिल से कहा “कल मैंने एक लड़का और देखा है। बस पचास साल का है। चार बच्चे हैं। बेचारे का दुर्भाग्य है कि उसको बदचलन लड़की मिली, सो उसने उसको छोड़ दिया था। उसके छोटे-छोटे बच्चे हैं। कोई देखने वाला नहीं है। धन-दौलत की भगवान की कृपा से कोई कमी नहीं है। मैं सोचता हूँ कि उसी से सुनीता की शादी कर दूँ, तो सुनीता राज करेगी।”

सुनीता की माँ ने कहा “सुनीता अभी पन्द्रह साल की है और वह...?”

पिताजी बीच में ही बात काटते हुए बोले “मैं कल ही उसकी शादी की बात चलाता हूँ।”

सुनीता यह सब सुनकर बहुत दुखी हुई। इसलिए नहीं कि उसकी शादी कुमेल वर से की जा रही है, बल्कि इसलिए कि उसको आगे पढ़ना है। उसने मन ही मन निश्चय किया कि वह शादी अभी हरगिज नहीं करेगी। सुबह उठकर सुनीता ने हिम्मत जुटाते हुए उदास मन से कहा

“माँ मैं अभी शादी नहीं करूँगी। मैं आगे और पढ़ूँगी।”

“बेटी हम लोग गरीब हैं, और ऊपर से नीच जात हैं। लोग तरह-तरह की बातें बनावत हैं कि ये चमारिन की छोकरी पढ़-लिखकर का दिल्ली की गद्दी पर बैठेगी?” माँ ने कहा।

“माँ इन सबको बकने दो। इन ऊँच जात वालों का काम ही यह रहा है कि हमें और खासतौर पर शूद्रों की औरतों को पढ़ने व बढ़ने न दें, ताकि इनका जात-पात, छुआ-छूत का भेदभाव चलता रहे।” सुनीता रूँधे हुए स्वर में बोली।

“सुनीता तुम कैसी बात कर रही हो? भेदभाव! यह तो बाप-दादा से चला आ रहा है, तू कैसे तोड़ेगी ये सब बेटी।” उत्सुकता से माँ ने पूछा।

“माँ चमार और भंगी को पुश्तों से इसलिए शिक्षा से दूर रखा गया ताकि ये लोग अपना सफाई का, चमड़े का पुश्तैनी धंधा न छोड़ें अगर पढ़ेंगे तो ये बोलने लगेंगे। ये अपने हक की बात करने लगेंगे और उन्हें पाने के लायक बन जाएँगे। तब वे कॉलेज जाएँगे, अफसर बन जाएँगे। साहित्यकार, पत्रकार बन जाएँगे।” सुनीता ने माँ को समझाते हुए कहा।

सुनीता ने माँ की रुचि देखकर बात को आगे बढ़ाते हुए कहा “आजादी मिलने के बाद आज तक एक फीसदी भी हमारे लोग इन पदों पर नहीं पहुँच पाए हैं। ना ही सरकार में हमारी भागीदारी रही। यह ऊँची जात वाले नहीं चाहते कि हम भी राजपाट

करें। हम तो केवल वोट देने वाले बन कर रह गए हैं। वह भी उनकी मर्जी मुताबिक वोट देने वाले।”

आखिरकार सुनीता ने बार-बार आग्रह करके ग्यारहवीं में दाखिला ले ही लिया। स्कूल में उसकी पोजीशन आने के कारण दसवीं के वजीफे ने बहुत मदद की थी। जबकि एस. सी. होने के लिए वजीफा राशि बहुत तुच्छ थी। पहाड़ जैसी शर्तें थीं। वह खूब मेहनत करती और पढ़ाई के अलावा स्कूल में वाद-विवाद प्रतियोगिताओं एवं खेल-कूद आदि में भी हमेशा आगे रहती थी। इसके लिए वह अतिरिक्त मेहनत करती थी। सुनीता ने अच्छे नम्बरों से इंटरमीडियट की परीक्षा भी पास कर ली।

अब उसके पिता जल्दी से जल्दी उसकी शादी कर देने पर आमादा थे। लेकिन दिन-प्रतिदिन उनकी आर्थिक दशा खराब होती गई और वह जहाँ जाते शादी में ऊँचे दहेज की माँग सुनते। इस कारण वे संकट में फँस गए। पिता का संकट बेटी के लिए वरदान साबित हुआ। सुनीता अभी भी और पढ़ना चाहती थी। पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़ी होकर यह दिखाना चाहती थी कि उसमें भी कुछ कर गुजरने का माद्दा है। इसलिए लाख बाधाओं को झेलते हुए भी वह आगे बढ़ती गई। गाँव का मुखिया सज्जन सिंह किशोरावस्था से गुजरती हुई सुनीता को भूखे भेड़िये के समान घूरता था। एक दिन सुनीता के पिताजी से बोला “ए छेदा तू इस गाँव के रीति-रिवाज जानता है? हमारे गाँव में अछूत छोकरी को ज्यादा पढ़नों लिखों ठीक नाहे है। इसलिए हम तोहके समझात हैं कि तू जल्द आपनी छोकरी के हाथ पीले कर दे।”

सुनीता ने ‘इंटर’ पास करके दलित, गैर-दलित बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दिया था, जिससे उसे आगे की पढ़ाई में मदद मिल जाती थी। सुनीता अपने छोटे भाइयों को जब भी अंग्रेजी स्कूल में पढ़ते देखती, उसे खुशी होती। परन्तु अपनी पढ़ाई के प्रति माता-पिता की अरुचि देखकर वह दुखी भी होती थी। वह भेदभाव महसूस करती। सुनीता सोचती बाबा साहब ने कहा था

“स्त्री शिक्षा के बगैर दलित वर्ग ब्राह्मणवाद के विरुद्ध जीती हुई लड़ाई हार जाएगा। हमारे लोगों को ज्यादा से ज्यादा शिक्षित होना चाहिए। मेरे भाई अतिरिक्त पैसा खर्च करने पर भी पढ़ाई से जी चुराते हैं। कैसे होगा इस वर्ग का कल्याण?” यह सोच कर सुनीता चिन्ता में डूब जाती। साथ ही इस वर्ग को कैसे उठाया जाए मन ही मन यह चिन्तन भी हमेशा करती रहती थी।

सुनीता के बी. ए. करने तक गाँव के माहौल में कुछ परिवर्तन हुए। यहाँ पहले बाबा साहब की मूर्ति लगी, फिर अम्बेडकर पुस्तकालय खोला गया। एक अम्बेडकर छात्रदल बना। इस दल के बनने के बाद ब्राह्मणवादी उच्च जातियों के गुण्डों से एक दो बार दलितों की मुठभेड़ हुई। गुण्डों को जेल की हवा खानी पड़ी। बाद में वे दलित लड़कियों के प्रति कुछ उदार हुए। सुनीता ने बी. ए. के बाद बी. एड. किया। नौकरी

के लिए उ. प्र. के अर्द्धसरकारी कॉलेजों में अनेक अर्जियाँ दीं। उसने वहाँ देखा कि उससे बहुत कम योग्यता वाले लोग शिक्षक पदों पर आसीन हैं। उसको जाति भेद के कारण कहीं नहीं लिया गया और वह निराश होकर बैठ गई। पर संयोग की बात थी, कि उसकी बी. ए. की सहेली मनीला द्विवेदी से उसकी भेंट हो गई। मनीला दिल्ली में शिक्षिका थी।

उसने एक दिन सुनीता से पूछा “तुम्हें कहीं नौकरी नहीं मिली, तो दिल्ली में क्यों नहीं ट्राई करती हो।” एक दिन सुनीता ने सुनीता से पूछा था। उसके बाद सुनीता ने दिल्ली जाकर आर. के. पुरम के रोजगार कार्यालय में अपना नाम दर्ज कराया। सरकार पर आरक्षण कोटा भरने का दबाव पड़ा तो शिक्षा विभाग में जगह निकली। प्रशासनिक विद्यालय में साक्षात्कार के बाद शिक्षिका पद पर सुनीता की नियुक्ति हो गई। सुनीता ने अपनी पढ़ाई का क्रम जारी रखते हुए एम.ए., एल.एल.बी. भी कर लिया। अभी वह और ऊँची नौकरी पाना चाहती थी। आई.ए.एस. या उसका आई.पी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण करने का इरादा था।

उसे अपने अछूत वर्ग के उत्थान की चिन्ता सदैव सताती रहती थी। वह स्वयंसेवी मंचों पर जोरदार भाषण दिया करती थी और भाषणों में वह हमेशा स्त्री एवं दलित वर्ग की उपेक्षा के कारणों का खुलासा करती और निवारणों पर जोर देती थी। सुनीता ने बाबा साहब को पढ़ा था। वह अपनी जमात को रँगें स्यारों से सावधान रहने के लिए प्रायः आगाह किया करती थी! वह कहती, गाँधी दलितों के कभी हिमायती नहीं हो सकते। गाँधी स्त्रियों, दलितों का उद्धार करना नहीं चाहते थे। सुनीता को हरिजन शब्द से चिढ़ थी। उसने गांधी के इस ‘हरिजन’ शब्द को दलितों के लिए गाली बताया, जिससे ब्राह्मणवादी बुद्धिजीवी बौखला उठे। मीडिया में वह विवाद का रूप पा गया। पर सुनीता की जड़ें जनाधार में थीं, इसलिए वह हिली नहीं।

सुनीता मार्क्सवादी चिन्तकों की पुस्तकें खरीद कर लाती और उनका अध्ययन करती। स्कूली शिक्षा और स्वतंत्र अध्ययन से उसको लगा कि केवल गाँधी, नेहरू, लोहिया, मार्क्स आदि के विचारों से सच्चा समाजवाद या समानता देश में नहीं लाई जा सकती। अम्बेडकरी विचार मनुष्य को मनुष्य से जोड़ता है। वह सच्ची मानवीय शिक्षा देता है। एक दिन सुनीता के पिताजी ने कहा “बेटी किताबों में क्यों इतना पैसा बर्बाद करती हो? क्या इतनी किताबें पढ़ लेती हो?”

सुनीता को यह सुनकर अच्छा नहीं लगा। उसके पिताजी के घर में बाबा साहब के चित्र तो बहुत थे, परन्तु पुस्तकों के नाम पर वही छोटी-मोटी फुटपाथी दो-चार पुस्तकें मात्र थीं।

सुनीता की मेहनत रंग लाने लगी। उसकी भाषण कला के कारण बड़े-बड़े राजनैतिक नेता उसे अपनी-अपनी पार्टियों में लेना चाहते थे। दिल्ली में सरकारी कर्मचारियों

ने मिलकर 'दिल्ली जन हिताय' एक संगठन बनाया। संगठन अध्यक्ष ने सुनीता से कहा "सुनीता जी आप हमारे संगठन से जुड़ जाओ। आपके अंदर बहुत संभावनाएँ हैं।" सुनीता ने अपने कैरियर के प्रति चिन्ता जताते हुए कहा "मुझे आई.ए.एस. की परीक्षा देनी है।"

"सुनीता जी कलक्टर बनकर क्या करेंगी? कलक्टर जैसे लोग तो आपकी फाइलें लिए हुए आपके सामने जी हुजूर किया करेंगे।" फेंकू राम जी ने समझाया सुनीता ने मन ही मन विचार किया। क्यों नहीं वह नीति निर्धारक बने? यह सवाल उसे झकझोरने लगा। कलक्टर बनना उसका व्यक्तिगत विकास होगा पर राजनीति में जाना उसके समाज के हितार्थ होगा। खूब सोच-समझकर अन्ततः उसने राजनीति में प्रवेश कर लिया। उसका राजनीति में प्रवेश बूढ़े माता-पिता को अच्छा नहीं लगा। उन्हें लगा कि वह व्यर्थ ही समय और पैसा बर्बाद कर रही है।

सुनीता चुनाव में लगातार दो बार पराजित हुई, फिर भी वह निराश नहीं हुई। वह जानती थी कि एक दिन जीत अवश्य होगी। हार तो बड़ों-बड़ों की भी होती है। तीसरी बार सुनीता भारी मतों से विजयी हुई। अब वह सांसद बन गई थी। वह अपनी पार्टी की महासचिव भी बनी। जीत से सुनीता की और उसके परिवार एवं उसके राजनैतिक गुरु सीताराम जी को बड़ा बल और इज्जत मिली।

सुनीता के पिताजी के घर पर अब गाँव-देहात वालों का तांता लगा रहता था, परन्तु अब गाँव के सारे लोगों की नजरें बदलीं। व्यवहार में नाटकीय अन्तर आया। गाँव के जो लोग छेदालाल को कुछ नहीं समझते थे, वे कुत्ते की तरह दुम हिलाते हुए उनके घर पहुँचने लगे। वे पत्रकार जो वर्ण-व्यवस्था के विरोध के कारण सुनीता से कुपित थे, अब उसकी तारीफ अखबारों के मुख्य पृष्ठ पर छापने लगे। कथित उच्च जातियों के वे उजड़ड बेटे जो उसे परेशान करते थे, अब बड़े विनम्र, भद्र-पुरुष बन गए थे। वे 'बहन जी, बहन जी' गाने लगे थे। मुखिया सज्जन सिंह जो सुनीता की पढ़ाई के खिलाफ बराबर उसके पिता को टोकता था, अब छेदालाल की बहुत इज्जत करने लगा।

"मुझे तो पहले ही पता था कि सुनीता बेटी पूरे गाँव की नाक बनेगी।" वह कहते फिरता। गाँव में सुनीता के स्वागत की तैयारियाँ स्वयं सज्जन सिंह ने की।

चौधरी धनीराम छेदालाल के पास आए और बोले "तुम्हारी बेटी अब तो सांसद हो गई है। अपने गाँव का आधुनिकीकरण करा लो। चलो हम भी तुम्हारे साथ दिल्ली सुनीता के बंगले पर चलते हैं। आखिर हमारे गाँव भर की बेटी ही तो है वह।

सुनीता के पिताजी ने सुनीता से गाँव का आधुनिकीकरण कराने की बात कही, तो उसने मुस्कराते हुए कहा "पिताजी मैं क्या कर सकती हूँ? मैं एक लड़की हूँ। यह काम तो आपके बेटे करेंगे, वही वंश चालक हैं।" छेदालाल बेटी के सामने सिर झुकाए हुए अपराधी की मुद्रा में खड़े थे।

“नहीं बेटी यह काम तो तुम्हीं कर सकती हो, बेटे नहीं।” वे बोले।

“पिताजी मैंने यह बात आपको नीचा दिखाने के लिए नहीं, बल्कि आपको कुछ याद दिलाने के लिए कही है। जब मैं बहुत छोटी थी तो आपने कहा था, पढ़-लिख कर क्या करेगी बेटी? तुम्हें कलक्टर-वलक्टर तो बनना नहीं है और न तू बनेगी ही, वैसे भी वंश चालक तो मेरे बेटे ही हैं। वह दिन आपको भी याद है न पिताजी!” सुनीता ने कहा। सुनीता का बचपन उसकी आँखों में तैरने लगा था।

पिता झेंपे तो जरूर, पर सुनीता पर उन्हें गर्व हो रहा था। उनकी सारी पुश्तैनी-रूढ़िगत सोच, पुरुष अहम् और मनुवादी व्यवस्था की दी हुई हीन-भावना के दुर्ग ढह गए थे।

“बेटी भी बाप की गुरु हो सकती है। यह मैंने आज जान लिया बिटिया!”

सुनीता मुस्करा दी। इस मुस्कान में संकल्प, इच्छा शक्ति, हठ और संघर्ष झाँक रहे थे।

रमणिका गुप्ता

बहू-जुठाई

आज सुबह टोली में ढोलक जोर-जोर से बज रही थी। पिपही की आवाज भी बीच-बीच में ढोलक की धमक को चीर-चीर देती थी। एक-एक कर लोग राधू के चबूतरे पर जमा हो रहे थे। बाराती सर पर फेंटा बाँधे, कमर में धोती कसे चले आ रहे थे। माधो के सर पर पाग थी। सेहरे के नाम पर परास के दो फूल खोंस दिए थे। झालर-सी उसकी काली लटें गर्दन पर झूल रही थीं। मसैं भींग रही थीं। माँ छाती पर हाथ धरे बारात जल्दी जाने के लिए मन ही मन मन्नत मना रही थी।

राधू का मँझला बेटा माधो। दो बरस से गौना करवाने की कोशिश में लगा था राधू, पर कोई न कोई बाधा आ खड़ी होती थी और गौना रुक जाता था।

“अब तक तो बहू आ गई होती। दुई-दुई निकोनी, दुई-दुई रोपनी, कटनी में शामिल होयके, कमाय के घरे लायल भी होती कुछ तो। एक-आध बाल बुतरू के बाप बन गयल (गया) होते माधो। पर का कहिये। जब माधो का ब्याह भइले, तबे कोऊ एसन-एसन सवाल नाय उठल रइले। अब गौना के बख्त आइते-आइते तो जुगे बदल गेल! कोऊ इस गाँव में बेटी नाय देवे के चाही। ई ससुर बिरसा के बेटवा भी तो भाईग (भाग) के ससुराल में बस गेल हय। बिदायगियो (विदाई) नाय करले के तैयार भईल उकर (उसका) ससुर। बड़ी मुश्किल से तैयार करले माधो के ससुर के। ऊकर बेटा भी कॉलेज पढ़े हय। कौनो पर विश्वास नखो करत।” सोच-सोच कर राधू अस्थिर हो उठा।

“अपन गाँव में तो केकरो (किसी) से कहना-सुनना बेकार हय। केकरा (किस) पर विश्वास कर अय। सभे की बहू तो ठाकुर जुठलाय है, और सभे के माय, ठाकुर साहब के बाप।” राधू मन ही मन सोचते हुए बुदबुदाया “कोऊ में दम न हय।”

तभी पहलवानों के साथ ठाकुर साहब का बराहिल नेग लेकर आ गया। पूरे पाँच सौ रुपए की चमचम करते सिक्कों की माला भेजी है ठाकुर साहब ने दुल्हन के लिए।

“लगे है इस बार दुल्हन के चाँदी चढ़ौते ठाकुर साहब।” मोहल्ले की बहुएँ सोच-सोच कर मन मसोस कर रह जा रही थीं। उनके भाग में चाँदी न थी। पीतल से

काम चला लिया था ठाकुर साहब ने। पर “तब ठाकुर साहब जवान हले, अब तो बूढ़ हो गेले”। यह सोचकर संतोष कर रही थीं वे सब कि उनको जवान ठाकुर ने जुठाया था, भले ही उन्हें पीतल ही मिला था। नौजवानों का दल अन्दर ही अन्दर उबल रहा था, पर बोल नहीं पा रहा था। बोलने का रिवाज नहीं था इस गाँव में। माधो के बड़े भाई की फजीहत देख वह सब सहम गए थे। राधू राह तक रहा था बाराती जुटने की। यह माधो का गौना था। गौने में दुल्हन ससुराल रहने आती है। ब्याह से अधिक रीति-रिवाज निभाने पड़ते हैं। असल खर्च तो इसी समय करना पड़ता है लड़के वालों को। दुल्हन के कपड़ों के साथ-साथ दुल्हन के माँ-बाप, भाई-बहन और भौजाई तक को कपड़े देने पड़ते हैं। फिर बाराती-सराती, दोनों का खर्च लड़के वालों का। कमाने वाली बहू जो घर में आती है! खर्च तो लगेगा ही!

“ये कोई बाबू साहिबन के घर की बहु नाय हय जे बस खाय और पहेरे खातिर आवो है! तबे तो अपना पीन्धे-ओढ़े खातर आपन पीहर से लावो है...” माधो की माँ बतिया रही थी कि कैसे करजा करके बहू को लाना पड़ रहा है।

राधू का गाँव प्रतापपुर प्रखण्ड में पड़ता है, जो चतरा सब डिवीजन में है। उन दिनों तो यहाँ दिन में भी सड़क पार करने में डर लगता था। जंगल में घुसना कठिन था। हजारीबाग जिला का यह छोर गया से सटा है। इस छोर पर नीलाजन बहती है। दूसरा छोर रामगढ़ गोला है जहाँ दामोदर बहती है। जैसी नदियाँ वैसे ही लोग हैं या जैसे लोग वैसे ही नदियाँ हैं। यहाँ बौखलाती हुई, उफनती हुई, पेड़ों को तोड़कर, पत्थरों को ठेल भागती हुई, लाल-लाल खपरों के झोंपड़ों के झुण्डों के बीच, जनसमूह की कतारों के बीच। लोग भी वैसे ही उत्साही। बात-बात पर भड़कने वाले। नीलाजन नदी पहाड़ से निकल कर एकदम हंटरगंज के मैदान में इतना फैल जाती है कि जल से अधिक जबर बालू हो जाता है। जलविहीन, निर्जला-सी शान्त बहती है नीलाजन नदी। यहाँ के लोग भी दबे-दबे हैं जल की तरह। बालू जैसे बलवान हैं जमींदार साब, जिन्होंने दबोच रखा है सबको। सर उठाया तो बस चढ़ बैठे! हवा वहाँ बालू का ही साथ देती है। आधा कोस पाड़ है नीलाजन का, पर पानी कहीं-कहीं ही दिखता है। घने जंगल में गाँव भी तो कहीं-कहीं ही हैं। जहाँ हैं वहाँ किलेनुमा जमींदार की कोठी, हवेली या किले की दीवारों के साए में बसे हैं भयभीत झोंपड़े। इन किलों, हवेलियों, दालानों को इन्हीं, भुइयों-मुसहरों ने बनाया है। इनकी दीवारों को चिना है नीवों को कोड़ा है, खलिहानों को भरा है। इन्हीं लोगों ने ‘कोड़ो’ (महुए के बीज) चुन-चुन कर तेल पिराया है, पीछे के गोदामघर में ढेर सारे पीपे भरे हैं, पर इन्हें अपनी थकी देह पर या उलझे बालों में लगाने को कभी नहीं मिला तेल। बिना तेल जटा-जूट बन जाते हैं उनकी औरतों के बाल।

इन घाटियों, पहाड़ों की दोल में बसा है प्रतापपुर और हंटरगंज प्रखण्ड। राजा

साहब के भतीजे की जमींदारी में था वह इलाका। अब कागजों में तो नहीं, लेकिन जमीन पर उन्हीं का कब्जा बरकरार है।

राधू सोच-सोच कर कभी उदास हो जाता है, कभी माथे पे चिन्ता की रेखा खिंच जाती है, तो कभी गुस्से से मुट्ठी भिंच जाती है। पता नहीं क्या होगा इस बार? 'बारात जल्दी जाए' इसकी चिन्ता लेकर वह उठा और चिल्लाया "चलो-चलो, जल्दी चलो। ढेर रात हो गेले, जनावर का खतरा हो जैते। सूरज ढले से पहिले पहुँचे के है। सभे लोग बाट जोहते हते। एसने ई गाँव के कौनो अपन बेटी देय के तैयार नाय है। चल बेटा चल। डोली में बैठ।" उसने माधो को पकड़ कर डोली में बैठाते हुए कहा। कहार डोली उठा कर चलने लगे। इस क्षेत्र में इधर दूल्हा भी डोली में चढ़ कर जाता है।

रात में देर गए बारात मुकुन्द भुइयों के घर लगी। मुकुन्द कोलियरी में काम करता था, इसलिए दुनिया को ज्यादा जानता था। बेटा राजू भी कालेज में पढ़ने लगा। मुकुन्द की मेहरारू भी धनबाद में ठेकेदारी में ही खटती थी। जब खदानें सरकारी हुई, तो दोनों जनी-मरद सरकारी हो गए। गया के ही बाबू साहब की ठेकेदारी चलती थी बर्ड कंपनी में। अब वह भी अपना नाम मुंशी में चढ़वा लिए, तो सरकार की खदान में हाजरी बाबू बन गए। बेटी फुलमतिया का विवाह माधो के साथ बचपन में ही हो गया था जब कोलियारी सरकारी नहीं थी। बेटी का गौना करने के लिए ही गाँव आया था वह। मुकुन्द का झोंपड़ा राधू से अच्छा था। रहन-सहन और धोती की क्वालिटी में भी फरक आ गया है। राधू की धोती अभी 'ठियोने' (घुटने) से ऊपर है। मुकुन्द की धोती मुकुन्द के पाँव छूती है।

सबेरे ही बारात बिदा करनी है। रात भर में सब 'नेग' पूरा होना है। औरतें नेग पूरा करने में लगी हैं। दूल्हा को अन्दर दालान में ले गई हैं। घर-आँगन में समधी को गरियाने के गीतों की बौछार में फूटती हँसी के अंकुर छहराए जा रहे थे। भोर होते-होते विदाई के गीतों की धुन से घर-बार रूआँसा हो गया। पता नहीं क्यों मर्दों में कुछ खुसर-फुसर चल रही है। मुकुन्द कुछ कहना चाहता है। वह बार-बार जनवासे वाले आँगन में जा-जाकर लौट आता है। घर के पिछवाड़े लड़कों की जमात जमी है। भुइयों टोली में चमार, दुसाध और यादव टोले के नौजवान भी जुटे हैं। एक-आध कोयरी, नउवा, साव जी के लड़के भी पहुँच गए हैं। भोर हो गई है। राधू इन्तजार में है कि मुकुन्द आकर विदायगी की सूचना दे। रस्म-रिवाज, नेग सब तो पूरे हो गए हैं। दोपहर से पहले बारात गाँव पहुँच जाए, तो ठीक होगा। धूप में किसी को परेशानी नहीं होगी। पर कोई आ ही नहीं रहा। आखिर राधू ने ही पूछ लिया "का देर है समधी भाई?"

घर पर चुप्पी का तना सन्नाटा जैसे किसी ने तोड़ दिया। औरतों की सतत आवाज के बावजूद तना एक सन्नाटा। तिलक-दहेज की प्रथा तो है नहीं इन लोगों की बिरादरी में। उल्टे लड़के वाले ही को देना पड़ता है लड़की के बाप को खर्चा एक

कमाऊ हाथ घर से ले जाने का। कोई बड़े घर की ब्राह्मण, बनिया या बाबू साहब की लड़की थोड़े ही है, जो खा-पीकर, शृंगार करके सज-धज के बैठी रहे हाथ पे हाथ धरे। इसे तो पहले बाप के, फिर ससुर के घर खटना ही है। मेहनत है चाहे जो करा ले बाप-भाई या ससुर-मर्द।

“अभी जितना जुटल-जुगाड़ होले, ले आयल है समधी भाई। अबकी कटनी में कमी पूरी कर देब। तोर बेटी के पैजाब जरूर किन (खरीद) देब।” राधू ने सफाई देते हुए कहा।

“एसन कोऊ बात न है समधी भाई। असल में तू जाने है जे हमर बेटीवा भी जवान हो गेले, कॉलेज में पढ़े है। पुरानी-सुरानी बात में कोऊ विश्वास नखे। तोर गाँव के कुछ रिवाजे एसन है कि लड़की विदा करे की सोच के, करेजा फटे लगत है। बड़ा करेजा करे पड़ते हमनी के, तब बिदायगी होते। ठाकुर साहब के यहाँ आपन बेटी के कलेवा बनावे खातर कैसे भेजवे पूछ रहल है राजू हमर बेटवा? बोन (बहिन) के तभे बिदा करबे, जब तोहनी सब गछबे, कि उकर बोन (बहिन) फुलमतिया के डोला आपन घर उतारबे, ठाकुर साहब के द्वार पर नाय।” मुकुन्द ने खुलासा करते हुए कहा।

“हाँ चचा ई बात का फैसला पहिले हेन्हे (यहाँ) ही करे होते। देख चचा हमर बोन फुलमतिया का बियाह तोर बेटबा संग भइले है, ठाकुर संग नाय। ओहे संग हम विदा भी करबे आपन बोन, पर उकर रखा तोहनी नाय कर सकब तो अभीये (अभी) बोल। ठाकुर साहब के जुठाय खातर नाय भेजबें हम आपन फुलमतिया। हम आपन घरे में रख लेब माधो के भी घर जमाई बनाय के। बोल चचा हमर शर्त मंजूर हय के नाय।”

राधू को तो मानो साँप सूँघ गया।

“ठाकुर साहब के खिलाफ बोले वाला कौनो पैदा होले आज हूँ इस युग में बिटवा। हमरे घर से ई आवाज उठते, तो कौनो जिन्दा न रहब होन्हे। पानी में रै कर मगर संग बैर कैसन करबे बचवा? ई हमर घर से का, हमर समूचे गाँवों से न हो सकत है। जे रिवाज पुरखन से चल रहल हय, चले दे। हमनी सब तों ठाकुरों के जुठन हय। उन्हीं की जमीन, उन्हीं के जुठा खाना खाय के पलत हैं। उन्हीं के जुठाई महरारू हम घर में रख सकत हैं। एही लिखल है हमर भाग में। जर्मीदारी कै गढ़ है प्रतापपुर बचवा। एक बेचारा सहदेव यादव है, जे कुछ बोले है हमनी के तरफ से। गाँव के लोग उकरा साथ देते, तब न? कई बार कह चुकल है एही बात, जे तू कह रहल है आइज। हमर बड़ बेटा एही गम में पागल होय के जंगल भाईंग गेल। अब जिद नाय कर बचवा, जाए दे। बहिन के बिदा कराय दे।” राधू ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

“नहीं जैते हमर बोन।” राजू चिल्लाया था।

“अब हमनी खाली हाथ धुरबे तो बी हमनी सब के घर उजड़ जैते बचवा। तोर

घर आन के डोला उठाय के ले जाब ऊ सब जालिम लोग। बड़े जबर हुई ऊ सब। पाँच-पाँच नाल बंदूक है उनकर (उनके पास) ठिने। तोर बोन के बीच चौक में मुजरा कराय देब कुंवर साहिब तो, जदी आज नाय जाब। कोठे पर बिठाय देलके है ऊ कई छोरियन के। इह बेर माफ नाय करवे हमनी के ठाकुर साहिब। देखा, हमर बड़ बेटा के घर उजड़ गेलय, ऐसन ही इन्कार करे पर। हमर बड़ बहू के अब ओहे लोग रख लेलके। माँझल बेटा के घर बसे दे बचवा।” राधू हाथ जोड़ते हुए बोला।

राजू के साथी जुट रहे थे। किसी ने जाकर माधो को राजू की सब बात बता दी थी। माधो के मन में हलचल सी मच गई थी। भय भी था, पर विद्रोह भी फटना चाह रहा था। माधो एक-दो बार शहर हो आया था। बाबू जीवन सिंह के साथ केदला कोलियारी भी गया था वह। माण्डू क्षेत्र से जीवन सिंह के दूर के भाई राजा पार्टी के टिकट पर एम.एल.ए. हुए थे। इस बार यूनियन का जोर बढ़ रहा था वहाँ। बड़ी मुश्किल से जीते थे बाबू साहब।

ठेकेदार लोग, मजदूर तो अपने गाँवों से ले जाते थे, पर इस डर से कि उन्हें भी कहीं यूनियन की हवा न लग जाय, उनको वे धौड़ा (मजदूरों के झोंपड़े) से बाहर निकलने नहीं देते थे। मजदूरों को डराने-धमकाने के लिए आरा, छपरा, औरगाँबाद से मँगाकर पहलवान रख रखे थे सब ठेकेदारों ने। सभी मजदूर जीवन बाबू के गाँव के ही भुइयाँ मुसहर थे। जो ठेकेदार देता उसी में खुश थे। गाँव से तो कुछ ज्यादा ही मिलता था उन्हें वहाँ। हफ्ता में राशन-पानी, चाय-चीनी का काट-कूट के, आठ आना हाथ में मिल जाता था नगद। नगदी तो कभी वो गाँव में छुए तक न थे। एक बार यूनियन वाले अड़ गए थे। एकता है उन सबमें। जीवन सिंह को भी पैसा बढ़ाना पड़ा था अपने मजदूरों का, भले ही उनके मजदूर हड़ताल नहीं किए थे। उन्हें बिना लड़े ही पैसा मिल गया था। पर एक बार ज्यादा पैसा मिल जाए, तो अब कौन कम लेता? रोज गरियाता था जीवन बाबू ‘सरवन के गाँवा जाय के देख लेब।’ याद कर माधो मुस्कराया। “पर का देख लेब? का बिगाड़ सके हैं गाँव में कुछो किकरा? हमर जमीन है? गाय-गोरू है? का छीन लेते जीवन बाबू? होन्हें तो कम से कम हफ्ता राशन-पानी और नगदी जैसे मिल जाता रहे। ऐही खातर ते गाँवा से भाइग-भाइग के जनी-मर्द सब कोलवरी में जा रहल है। हमहूँ फुलमतिया के ले के चल जाब।” माधो सोचकर मुस्कराया।

वह शहर जाकर जान गया है कि अब राजा साहब का राज नहीं है। अब तो खदानें भी उनके हाथ से चली गई हैं। केदला की राजा खदान पर सरकार ने अपना हाकिम बैठा दिया था, तभी सब ठेकेदारों की नाक में दम कर दिया है रेणुका जी की यूनियन ने। वह जानता है कि चतरा से एक बार कोयरी जीत चुका है। गया में एक भुइनी भी एम.एल.ए. बनी है। सोशलिस्ट पार्टी के कर्पूरी ठाकुर मुख्यमंत्री बने हैं।

“हमरीये ऐसन गरीब मुख्यमंत्री बन गले रहल। नऊआ ठाकुर रहले ऊ। जजमानी

करके पेट पाले वाला। ई तो राजा साहब और कांग्रेस के सब ठाकुर, भुईयार, बामन, लाला, जमींदार, सेठ मिल के गिरा देलके चाहे उकरा के राज। खरीद लेलके सब आदिवासी, हरिजन, एम. एल. ए. के। नहीं तो हमनी सबके भी भाग बदल जैते। हमर बड़ भाई, भाभी के गम में नाय पगलैते।”

एक-एक घटना चलचित्र की तरह नाचने लगी उसकी आँखों के सामने। वह देख रहा था यादों के परदे पर जब बड़ी भाभी को ठाकुर साहब डोला उतार कर ले गए थे, तो कैसे बुक्का पाड़ कर रोया था उसका बड़ा भाई। रात भर ‘सूते’ (सो) नहीं सका था वह। कभी मुट्ठी बाँधता रहा, कभी भींचता रहा, कभी खौलता रहा था। फिर भाभी के घर लौटने के पहिले ही घर से भाग गया था। कई दिन बाद घर लौटा था भाई, तो खूब रोई थी भाभी उसे देखकर। भाई ने कसम खाई थी कि भाभी को लेकर भाग जाएगा वह गाँव से बाहर। वह रात दोनों साथ ही बिताए थे। कितने प्रेम से बतियाता था बड़ा भाई। भाई ने अगले दिन उसे ठाकुर साहब के घर जाने से मना कर दिया। यादों का परदा भी काँप गया था ठाकुर के गुस्से की याद करके। ओह! कितना गुस्सा हो गए थे ठाकुर साहब। उसके ‘बप्पा’ को ही भेज के पूरे गाँव के लोगों को जमा कराया था उसने। भाई को पकड़कर मँगवाया गया। भाभी को झोंटा से पकड़ के खींचता-खींचता ऐसे ले जाया गया था जैसे द्रोपदी को दुःशासन। भाभी को नाचने-गाने का हुक्म दे दिया गया था। उसका तो शर्म के मारे मर जाने का मन करने लगा था। वह साफ देख रहा था यादों के झरोखे से जब उसका ‘बप्पा’ हाथ जोड़-जोड़ कर गुहार पाड़ रहा था, पर कोई सुनने वाला हो तब न? भाई जंगल में भाग गया था। कोई कहता है वह साधु बन गया पुलिस कहती है डकैत बन गया। पर सहदेव जी कहते हैं वह नक्सलाइट बन गया। अब पुलिस भी डरती है उससे। ठीक ही है जो भाग गया वह। इस गुलामी से तो अच्छा ही हुआ। माधो मन ही मन सारी घटनाओं को दुहरा-दुहरा कर भोग रहा था। उसका मन हुआ कि बप्पा से कह दे कि ठीक ही तो कह रहा है राजू। उसकी ब्याहता उसके संग रहेगी। ठाकुर साहब कौन होते हैं उसको ले जाने वाले? अपनी ब्याहता को अपने ही हाथ से दूसरे हाथ में नहीं सौंपेगा वह। पहिले उन सभी की माँओं को जुटाने के लिए ले जाते रहे हैं वह। अब भाभी को तो वही लोग रख लिए हैं। घर भी नहीं आने देते हैं उसे। अभी शुकर है गाँव की ‘छोरियन’ को नहीं ले जाते हैं ठाकुर साहब। उन्हें शक है कि ‘छोरियन’ में कोई उनकी अपनी औलाद न हो, उनका अपना खून न हो, उनके अपने ‘बीरज’ से पैदा। पर कोई सुन्दर ‘छोरी’ हो, तो वह ठाकुर साहब के बराहिल से नहीं बच सकती। वह कुंवर तो अपनी बहन के साथ भी ‘सूते’ से नहीं डरता। घर में घुसकर छेड़खानी करता है ‘बहु-बेटियन’ संग। कम से कम ठाकुर साहब ऐसा नहीं करते थे कभी भी। अब तो इस गाँव की ‘छोरियन’ को भी छिनाल बना दिया है उन सबने। किसी को सुरखी, किसी को पाउडर, किसी

को लिपिस्टिक ला के देते हैं। अब सब फिदा हो गई हैं उन 'सरवन' (सालों) पर। गाँव के किसी छोड़े (लड़के) को गदानती ही नहीं कोई। सबे अपने को ठाकुर की बेटी समझती है। माधो का मन कसैला-सा हो गया। वह तो अपनी फुलमतिया को अपने ही सुरखी-पाउडर ला देगा। माधो ने मन ही मन निश्चय किया।

राजू की चिल्लाहट ने उसकी तन्द्रा तोड़ी। गाँव की पंचायत बैठी। बराती-सराती सब बैठे। गाँव के मुखिया-सरपंच भी आ गए। फैसला हुआ

“यह केवल मुकुन्दा की बेटी के सवाल नाय हय। यह तो पूरे गाँव की इज्जत का सवाल हय। फुलमतिया मुकुन्द की ही बेटी नाय, पूरे गाँव की बेटी हय। हमनी सबकी इज्जत का सवाल हय। फुलमतिया का डोला ठाकुर साहब के द्वारे नाय, राधू के द्वारे लगतै। जरूरत पड़ते तो ई गाँव के हमनी सब लोग भी मदद करे के जायब। हमनी सब डोली के संग जायबो फुलमतिया के ससुराल।”

“लाठी चलते तो कौनो नाय टिकते होन्हे। हमनी सब तो जिन्दगी भर बैल हेंकौले रहल छड़ी से, कुदाली से माटी कोड़त रहल, एकाध गैंता भले होते पूरे गाँव में। हंसिया जरूर रख ले जनी सब, जे कटनी खातर ठाकुर साहब दे देलके हय।”

राधू ऐसे बोल रहा था जैसे लाठी-तलवार लिए डाकुओं से घिरा कोई निहत्था राही हो। उसे एक बन्दूक की नली सीधे अपने सीने पर तनी नजर आ रही थी, दूसरी नली माधो पर, फुलमतिया का झोंटा बराहिल के हाथ में।

“गैंता, हंसुआ, कुदाल कम होत है की? दुसाध टोली की लाठी भी फुलमतिया के डोली संग जायब।”

“हमर टोली के जवान भी तैयार हैं।” कई आवाजों ने ललकार कर कहा।

“अरे तो जादवों लोग कौनों पीछे रहब। बेटी तो हमरे गाँव की भी हय।” दूसरा चिल्लाया।

चमर टोली, दुसाध टोली के लोग मनुवादी व्यवस्था में बड़ जात होते हैं मुसहरों से। उनका उनसे बेटी-रोटी का आपस का रिश्ता भी नहीं होता। वे पानी भी नहीं पीते उनके यहाँ। आज बेटी की इज्जत की लड़ाई में सब साथ देने को तैयार हो गए हैं।

“आखिर हम गरीबन की भी तो कोई इज्जत है। इनकर बहू-बेटी के इज्जत है, तो हमनी के बहू-बेटी कौनो चीज में कम हैं, उनकर से। एक बस टाका-पैसा तो नाय है हमरी माय-बहन के पास! बस।” फट पड़ा एक नौजवान।

“जंगल में लाठी की कौनो कमी ना है चचा!” दूसरे ने राधू को दिलासा दिलाया।

“बन्दूक ही बन्दूक होते होन्हे!” राधू ने सावधान करते हुए कहा।

“ठीक है। अभिए (अभी ही) एक आदमी भेज देते हैं सहदेव के पास। गाँव के सीमाने आन मिलेगा आपन बन्दूक के साथ। एक दुनाली ऊ भी रखे हय।” मुखिया जी बोले।

“बारात आज के नाय, काल के जायब। हजारीबाग रेणुका जी ने इहाँ भी खबर भिजवाय देब, उहाँ के पानी के काबू कर लेबे ऊ। तब ठाकुर साहब के पैसा चाईट (चाट) के दुम नाय हिलाय (हिला) सकवे चोड़ा थानेदार।” सरपंच ने सुझाया।

राधू सोच में पड़ा था। इधर बिरादरी का डर, जग-हँसाई की फिकर, उधर ठाकुर साहब का भय, उसके बराहिलों का आतंक। कुंवर का गुस्सा याद करके तो वह काँप ही गया। बड़ी बहू के साथ किया कुकर्म चलचित्र की तरह घूम गया उसकी नजर के सामने भी।

“पूरा गाँव देखते रह गेल, कोई कुछो नाय बोलले। अब तो ओ लोग बड़ी बहू के आवे ही नाय देत हय। ड्यूटी के बाहर सामने की जमीन पर छप्पर छान के बसा देलके है होन्हे ही। जब भी चाहे तब ठाकुर बुला भेजत हैं। कोई बोले वाला नाय है टोले-मोहल्ले में। अब बड़ी बहू भी न जाने कौन-सा बैर सधाए खातर इतरा-इतरा कर चलत हय गाँव में। नइकी-नइकी साड़ी पींध दिखाती घूमे हय। पूरे गाँव के टोले-मोहल्ले के गरियाती फिरे हय। मुँहलगी ‘रखनी’ जे बन गेल हय ऊ ठाकुर साहब के। एक खेत भी देलके हय ठाकुर साहब उकरा के।” मन ही मन सोच कर वह भयभीत हो रहा था।

राधू की नजरों के सामने एक के बाद एक चित्र आता। वह फिर सोच में डूब जाता।

“ई कुँवर के कबी पटले (पटा) नाय (नहीं) ठाकुर साहब के संग। कुँवर काला कलूटा हले। न माय पर गैल है, न बाप पर। रानी साहिबा के तो आपन बाप के पैसे का बड़ा घमण्ड हय। ठाकुर साहब तो अब उनकरे के पास आय-जाय के ही छोड़ दैल हय। बड़ी बहू के झोंपड़े में पड़े रहत है। बस दो बखत के खाने के दायीदार भर हय वे हवेली में जाय के। बाकी रहना-सोना, पानी-खाना, सब तो बड़ी बहू के संगे होत हय। एसने तो सुख से रह रहले है बहू होन्हे अब।” एक क्षण को राधू के मन में आया कि कह दे कि क्यों वह सब गाँव की शान्ति भंग करने पर तुले हैं। विरोध करके भी क्या हुआ? बड़े बेटे की बहू भी गई। अब वह चली गई, तो वहाँ सुखी तो है वह। यह इज्जत उसे क्या देगी? पर वह यह बात कह नहीं पाया। वह माधो का चेहरा देख कर चुप रह गया।

“मान ले बप्पा! राजू की बात मान ले।” माधो रूआँसा होकर बोला। उसे लगा उसका बाप कमजोर पड़ रहा है। माधो के आगे फुलमतिया का डरा-सहमा आँसू भरा चेहरा घूमने लगा। कभी उनका हँसता चेहरा बड़ी भाभी के चेहरे में बदल जाता। डाल से तोड़ कर फेंका गया फूल की मानिंद तो कभी वह चेहरा माँ के चेहरे में बदल जाता। बूढ़ी माँ का झुर्रियों से भरा चेहरा, मसला हुआ काला पड़ गया फूल। अतीत माधो को आतंकित कर रहा था। भविष्य भयभीत और वर्तमान अस्थिर, दुविधा-ग्रस्त।

आखिर विदायगी हुई। गाँव के लड़के भी देशी पिस्तौल बनाने लगे थे। दो-चार साथ में ले लीं। चुपचाप लौट रही थी बारात डोली लेकर। न ढोल, न पिपही, कभी-कभी

बच्चे के रोने की आवाज सन्नाटा तोड़ती थी या गाँव के छोर से कुत्तों की। इतनी बड़ी बारात किसकी लौट रही है, कौतूहलवश अगल-बगल के गाँव के लोग देखने निकले। खबर आग की तरह फैल गई। एक नदी ही तो है दोनों जिलों के बीच। हजारीबाग के जंगलों में गया का मैदान पहुँच रहा था। बंजर धरती पर जीवट से जीने वाले लोग, हरी-हरी अलसाई धरती पर जमा हो रहे थे। हरियाली काँप रही थी भय की हवा से। पर कंकरीली जमीन हौसला न हार रही थी, हवा उसका कुछ बिगाड़ न पा रही थी।

कहारों ने डोली राधू के सामने रोकी। गगन में सूरज सुरख हो रहा था। पत्तों से छनती उसकी लालिमा ने फुलमतिया को आशीष दी और फुसफुसाई 'उतरो बहू अपने घर में जाओ।' डूबता हुआ सूरज, राधू के मन में उतर गया था। वह उसके पेट में पहुँच बोल रहा था। 'बहू को घर ले जाओ राधू।' राधू ने डोली से पर्दा उठाया। सास ने बहू का घूँघट उठा कर कहा "क्या सुन्दर है रे माधो तेरी बहुरिया।" राधू ने डूबते सूरज को अपने अंक में भर लिया था मानो। उसने भय को दबोचते हुए कहारों को कहा "डोली धर दे।"

डोली धरने की बात ठाकुर साहब को कहनी थी। डोली तो उनके द्वार पर लगती थी। इस बार अनहोनी हो गई। डोली लिए कहार उसी के द्वार पर खड़े थे। पूरे गाँव में एक चुप्पी, एक सन्नाटा। कनखियों से बतिया रहे थे लोग। मुँह से बोली तो नहीं फूट रही थी पर कुछ था जो डट गया था। मन? दिमाग? शायद दोनों।

आदतवश राधू भी बाट जोह रहा था, शायद कोई आकर उसे टोकेगा, गरजेगा उस पर। सो आना था जिसे वह आया। वह गरजा "क्यों वे राधू, क्या उल्टा दस्तूर चलाता है। डोला यहाँ क्यों लाया रे। ठाकुर साहब के द्वार पर सब नेग तैयार है बहु जुठाई खातर। काहे देर करत हो।"

राधू चुप! मूड़ी गड़ाए बैठा रहा। माधो से न रहा गया। वह फुलमतिया को उतारने के लिए बढ़ा ही था कि पहलवान की लाठी माधो और फुलमतिया के बीच तन गई।

"नहीं उतरेगी बहू यहाँ। चलो डोली ले चलो ठाकुर साहब के द्वारे पर," पहलवानों ने गरज कर कहारों को निर्देश दिया। कहार डोली उठाकर चलने को हुए तो फुलमतिया का भाई गरजा "नहीं जाएगी डोली ठाकुर के यहाँ। जिससे ब्याही है, डोली उसी के द्वार पर लगेगी।" माधो समेत गाँव के नौजवान चिल्लाए "नहीं जाएगी डोली।" पूरा जंगल हाथ हिलाकर बोला "नहीं जाएगी डोली, नहीं जाएगी डोली।" सूरज की लाल रोशनी पूरी की पूरी समा गई इन नौजवानों की आँखों में। एक साथ कई-कई सूरज लाल-लाल चमक उठे, इनकी पुतलियों में।

ऐसी आवाज की आदत न थी वहाँ किसी को भी। वहाँ की गलियों, रास्तों, सड़कों और खेतों की धूल ने पाँवों से लिपटना ही सीखा था, पर चढ़ना नहीं। यहाँ के नालों में, नदियों में बाढ़ नहीं आती। वह सूखना जानती हैं। बस इसलिए वह सूख

जाती हैं। सिमट जाती हैं। यहाँ हवा भी आजाद होकर नहीं घूम सकती। वह जंगलों में भटक जाती है, उलझ जाती है। यहाँ के बच्चे-बूढ़े, मर्द-औरत, यहाँ तक कि गाय-गोरू और जानवर भी उनके आवाज के इस तेवर से, इस अन्दाज से परिचित न थे। वे सब स्वयं भी अपनी आवाज सुन कर भौंचक हो गए थे। कैसे निकलेंगे उनके मुँह से ये शब्द 'नहीं जाएगी डोली।' वे तो 'जो हुक्म हुआ' कहना ही सीखे थे आज तक! एक नया अहसास था वह। आवाज अपनी 'टनक' सुनकर हैरान हो रही थी। क्या उन्हें बोलना आ गया था? क्या उनके भाग्य ने भी पलटी खाई थी? ठाकुर साहब जैसी बोली में क्या वे भी बोल सकते हैं? यह तो अनहोनी है। चमत्कार है! फिर तो वे अपना कहा 'नहीं जाएगी डोली ठाकुर साहब के यहाँ, नहीं जाएगी।' बार-बार दोहराने लगे। मानो सप्तम स्वर साक्षात् उतर आया था उनकी नरेटी (गले) में।

आज प्रतिरोध, नारा बन कर गूँज रहा था। डर टूटा था, भय का मिथक उनकी आवाज की तरावट से भसका था। एक परम्परा टूटी थी गुलामी की। सदियों पुरानी श्रृंखला टूटी थी। हवा भी आज आद होकर बहने लगी थी और धूल आसमान छूने की तैयारी में लगी थी।

कुम्हले इस अन्ध जे वेसुअर भोलोपर कुंइ जे ठिठक गए थे। जो ठिठके थे, वे सिर उठाकर सोचने लगे थे। जो सोचने लगे थे वे तर्क कर रहे थे "आखिर बात तो ठीक कह रहे हैं ये। क्यों हम लोग 'ठीक और गलत' का फैसला ठाकुर साहब की कचहरी और पहलवानों की लाठी पर छोड़ देते रहे हैं आज तक?" वह मन ही मन अपने से पूछने लगे थे। वे भी शामिल हो गए आवाजों के उस कोरस में। कोरस गूँज रहा था। किसी ढोल, किसी मान्दर को मात दे रहा था। जो भागे थे वे भी अब वापिस आ गए थे। गूँज अब गरज बन रही थी और गरज खूंखार हो ही जाया करती है।

हैरान होने की बारी अब पहलवानों की थी। हड़बड़ाकर एक पहलवान फुलमतिया को पकड़ने के लिए बढ़ा। माधो रोक नहीं पाया अपने को। वह बड़े भाई की तरह मैदान छोड़कर नहीं भागेगा। वह रोएगा भी नहीं। वह फुलमतिया को 'भाभी' नहीं बनने देगा। न वह उसे अपनी 'माँ' की जिन्दगी दुहराने देगा। उसने लाठी का एक वार दे मारा पहलवान पर और फुलमतिया को घर में घुसाकर किवाड़ बन्द कर दिया। वह जवाबी हमले के इन्तजार में ही था कि ताबड़-तोड़ लाठी चलने लगी। फुलमतिया के मायके के दुसाध, चमार, यादव, कोयरी सभी की लाठी आज भिड़ गई थी बाबुओं की लाठी से। यह एकता की लाठी थी। जबर थी। कौनो (किसी) स्वार्थ या राजनीति की लाठी न थी यह। बाकी सभी गाँवों के लोग, जो जमा थे ललकार कर साथ दे रहे थे राधू का, माधो और राजू का। एकता की मजबूत मुट्ठी पकड़े थी इस लाठी को, इसलिए जब बरसती थी यह लाठी तो 'सटाक-सटाक' जबान भी चलाती थी।

इसी बीच सहदेव यादव भी दुनाली बन्दूक लेकर पहुँच गए। भुइयाँ टोली के मुसहरों की, सदियों से भार तले दबी जड़ हुई संवेदना जगी थी। पत्थर बनी संवेदना आज अहल्या-सी उठ बैठी थी, पर उसके लिए उसे किसी राम के पाँवों की जरूरत नहीं पड़ी थी।

बस बुद्ध की तरह उनमें, अपने भीतर से एक ज्ञान जगा था। उन्हें मुहम्मद की तरह शायद इलहाम हुआ था। इलहाम कि वह आदमी हैं, गुलाम नहीं। इलहाम कि सभी बराबर हैं। ज्ञान कि वह भाग्य के बन्धुवा नहीं हैं। किसी पिछले जन्म का फल भी नहीं है। कि उनकी आवाज में, उनके हाथों में, वैसी ही ताकत है जैसी ठाकुर साहब के या उनके बराहिलों की आवाज या हाथों में है। यह कि वह भी उनके बराबर हैं। उनसे भी ज्यादा अच्छी लाठी चला सकते हैं। यह कि उनकी बहू-बेटी की भी वही इज्जत है, जो ठाकुर साहब की बहू-बेटी की है। यह कि वे भी इन्सान हैं, उन्हीं सब की तरह।

इस ज्ञान, इस इलहाम के बाद भुइयाँ टोली के मुसहरों को कौन गुलाम रख सकता था? उनका दिमाग खुल गया था। वे जान गए थे कि उन्हें आज तक गुलाम बनाकर रखा गया था। यह कि उनकी गुलामी भाग्य का फल है, यह सच नहीं है, बल्कि एक साजिश का परिणाम है। एक बहुत बड़ा झूठ था यह।

राधू के आँसू थम नहीं रहे थे। वह भय से मुक्ति के आँसू थे, खुशी के आँसू थे। उसने केवल भय जाना था। दुख भी वह नहीं जानता था। चूँकि सुख का स्वाद चखा नहीं था कभी उसने। आज उसने सुख को चीन्ह लिया था। इन्सान बनने का सुख महसूस किया था। सुख-दुख! हाँ, उसने आज सुख भोगा था। इन्सान बनकर जीना कितना सुखकर लग रहा था उसे। वह भी खड़ा हो गया तनकर, पूरा इन्सान बनकर।

इतनी जुटकर डटी हुई लाठियों के आगे, सौ पहलवान भी होते तो क्या करते? पहलवान भाग कर हवेली की ड्योढी पर गए। गुस्से से आग-बबूला हो गए ठाकुर साहब। कुँवर का गुस्सा तो ऐसे ही सातवें आसमान पर रहता था। पाँचों नाल बन्दूक निकल आईं। तब तक सहदेव यादव ने अपने गाँव खबर भेज दी। अब तो अगल-बगल के गाँवों में खबर फैल गई। ठाकुर साहब का गाँव युद्ध स्थल बन गया। डोली राधू के द्वार पर रखी गई थी। फुलमतिया घर के अन्दर थी, अपनी सास के साथ। पूरा गाँव द्वार छेक कर, घेर कर बैठ गया था। ठाकुर साहब आएँगे ही, सब जानते थे।

थाना को भी खबर हो गई। इधर से ठाकुर साहब आ ही रहे थे कि थानेदार भी जीप में आ पहुँचा। अगल-बगल के गाँवों के मुखिया और मानिन्द आदमी जमा हो रहे थे। सवाल था किस कानून के तहत बहू-जुठाई की रस्म चालू रखी जाएगी? न थानेदार के पास जवाब था, न मुखिया या सरपंच के पास। समूचे गाँव वाले, पूरे के पूरे लोग गाँव छोड़कर जाने को तैयार थे। 'रहें ठाकुर साहब अकेले ही आपन हवेली में, पर बहू का डोला नहीं जाएगा उनके घर।' अडिग था गाँव।

मरने-मारने को तैयार इतनी बड़ी जमात एक तरफ, मारने पर उतारू। पहलवानों की छोटी पर सजी-धजी, पूरी तरह हरबे-हथियार से लैस जमात दूसरी तरफ। वार के लिए दोनों तैयार।

“चलावा गोली ठाकुर साहब। ले आपन करेजा ठण्डा कर लेब। हमनी सो मरबे पर याद रखियो, तोहनी सब में से एको के जिन्दा न लौटे देब।” माधो ने ललकारते हुए कहा।

राजू ने अपनी देशी की नाल कुँवर साहब की तरफ कर दी। पहलवान ठाकुर साहब का मुँह ताक रहे थे। क्या आदेश देते हैं। थानेदार भी अकबका गया था। उसमें दम नहीं था कि राजू को पकड़ ले। गोली चलेगी तो जवाबदेह तो वही होगा।

फिर हजारीबाग से भी वायरलेस आ चुका था।

ठाकुर साहब सोच में पड़ गए थानेदार की नौकरी पर आँच आएगी तो साला पलट जाएगा। फिर कल खेतों का क्या होगा? इतने कमियाँ कहाँ से पावेंगे।

“क्या सोचा आपने ठाकुर साहब!” सहदेव ने पूछा।

“समय के साथ चलिए। अब पुरानी चाल छोड़िये। वह युग बीत गया। अब इनके मुँह में भी जबान आ गई है। ज्यादा जुल्म करिएगा तो बन्दूक भी आ जाएगी। अभी तो लाठी ही देख रहे हैं आप। अपने दुश्मन मत पैदा कीजिए। कल से खेत में हल नहीं जोतेगा कोई। न कोई बेगारी खटेगा। अब वह बँधुआ नहीं रहे आपके। सूद-मूल दोनों ही वसूल चुके हैं आप। इनकी माँ-बहन, बहू-बेटी अब इनकी अपनी हैं। वह सूद नहीं है अब आपके मूल की। सोच लीजिए। खबर हजारीबाग भी जा चुकी है।” सहदेव ने ताकीद की।

थानेदार ने आँखों ही आँखों में ठाकुर साहब को समय की नज तक के बारे में समझाया। ठाकुर साहब लौट पड़े चुपचाप। कुँवर कहता गया “ठीक है आज नहीं तो कल सबक सिखाएँगे।”

माधो कुछ कहने ही जा रहा था कि उसका बड़ा भाई भीड़ को चीरता हुआ कहीं से आ गया।

“हम भी सबक सिखाना सीख गए हैं कुँवर। कल की बात कल देखेंगे।”

माधो का भाई जोर से हँसा। पूरा गाँव ठट्टा कर हँस दिया।

गोया पहली बार उस रात हवेली का दरवाजा दहला, उसकी दीवारें काँपों। रात भर मुँडेर पर चौकीदार ने अगोरा। पहली बार शायद कोई मुँडेर टूट कर गिरी, जिसे गाँव भर ने देखा।

राधू की आँखों से झरती बूंदों की झड़ी में, भीतर से आती फुलमतिया की हँसी झिलमिला रही थी।

भागीरथ मेघवाल

सूरज की चिता

सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट न्यायालय का गलियारा तमाशबीनों से अटा पड़ा था। हर व्यक्ति उस पगली की एक झलक पाने के लिए बेताब था, जिसे इस न्यायालय में पेश करने के लिए रस्सियों से बाँधकर लाया जा रहा था। यह पगली अपने गाँव के आदमियों को देखते ही उन पर पत्थरों की वर्षा कर देती थी। उसके लिए डॉक्टर ने पागल होने का प्रमाणपत्र दिया था। उसके प्रेम विवाह के चर्चे अखबारों में छप चुके थे। उसको पुलिस पागलपन अधिनियम के अन्तर्गत पागलखाने भिजवाने का आदेश प्राप्त करने के लिए सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट के सामने पेश कर रही थी।

वर्तमान सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट कुछ ही दिन पहले इस सब-डिवीजन में बदली होकर आया था। उसके सख्त मिजाज और उसूलपसन्द होने के चर्चे वकीलों के बीच आम थे। लोग कहते थे, सच और झूठ को जानने में उसे ज्यादा समय नहीं लगता था।

महिला पुलिस सिपाहियों की गिरफ्त में जकड़ी उस लड़की के न्यायालय की सीढ़ियाँ चढ़ने के साथ ही उपस्थित लोगों में काना-फूसी शुरू हो गई। जली हुई बीड़ियों की गंध के साथ-साथ जुमले हवा में तैरने लगे।

“यही वह लड़की है जो चमार के लौंडे के साथ भाग गई थी। लौंडा तो अपनी करनी का फल भोग गया। यह रह गई।”

लड़की सूख कर काँटा हो गई थी। उसका गोरा रंग मटियाला हो गया था। कपड़े फट चुके थे, बाल उलझ कर घोंसला हो गए थे। उसके तेवर देख कर लगता था, वह सारे जमाने को जलाकर राख कर देना चाहती थी। पत्थर मार-मार कर हर तमाशबीन को लहू-लुहान कर देना चाहती थी। उसकी आँखें अंगारे की तरह दहक रही थीं।

लड़की को मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। न्यायालय के वातावरण को मजिस्ट्रेट की गम्भीरता ने और गम्भीर बना दिया था। मजिस्ट्रेट की उम्र कोई पैंतीस

बरस की रही होगी। चेहरे से शालीनता और रूआब टपकता था। उसने पुलिस द्वारा प्रस्तुत चार्जशीट पढ़ी, एक नजर लड़की की ओर डाली और उससे पूछा

“चन्दा देवी पुलिस और डॉक्टर ने आपको पागल करार दिया है। आप पर यह आरोप है कि आप लोगों को पत्थर मारकर घायल कर देती हैं। इस सम्बन्ध में आपको कुछ कहना है?”

“मजिस्ट्रेट साहब मैं पागल नहीं हूँ। पिछले एक महीने से मुझे ठीक से नहाने, खाने नहीं दिया है। मुझे ठीक से नहा-धोकर खाने और ठीक से कपड़े पहनने का अवसर दीजिए फिर मेरी आपबीती सुनिए। उसके बाद जो चाहे सो फैसला कीजिएगा।”

लड़की के इन वचनों से अदालत में उपस्थित लोग ही नहीं, मजिस्ट्रेट भी सकते में आ गए। जीवन की जो चोट लड़की ने झेली थी देखते ही देखते उस चोट का दर्द मजिस्ट्रेट के दिल तक उतर गया लगता था। मजिस्ट्रेट ने तुरंत पुलिस को आदेश दिया।

“आरोपी को ठीक से नहाने का अवसर दिया जाए। उसके लिए ढंग के कपड़ों की व्यवस्था की जाए। उसे ठीक से खाना खिलाया जाए और पुनः कल इस न्यायालय में पेश किया जाए। इसके साथ ही चेतावनी भी दी जाती है कि आरोपी चन्दा देवी को किसी भी प्रकार का शारीरिक-मानसिक कष्ट नहीं दिया जाए क्योंकि आरोपी के अब तक के व्यवहार में हमें पागलपन जैसी कोई बात नहीं दिखाई दी है।”

दूसरे दिन लड़की को पुनः न्यायालय में पेश किया गया। आज वह किसी कोण से पागल नहीं लग रही थी। उसने सलीके से साड़ी पहन रखी थी। करीने से बाल सँवार रखे थे। लड़की देखने में सुन्दर ही नहीं अति सुन्दर थी। मजिस्ट्रेट के सामने उसने कल जो दृढ़ता और बुद्धिमत्ता दिखाई थी उसके चर्चे कस्बे में ही नहीं आसपास के गाँवों में भी फैल चुके थे। उसे देखने के लिए आज दुगुनी भीड़ जुट आई थी।

मजिस्ट्रेट ने कल पूछे गए प्रश्न को पुनः दोहराया। लड़की ने उत्तर दिया

मजिस्ट्रेट साहब मैं पागल नहीं हूँ। मैं बी.ए. तक पढ़ी हुई हूँ। पाठ्यक्रम की पुस्तकों के अतिरिक्त भी मैंने बहुत कुछ पढ़ा है। बचपन में नानी, दादी के मुँह से राजकुमार और राजकुमारियों के किस्से सुने। इतिहास की पुस्तकों में पढ़ा कि एक राजा अपनी प्रियसी को पाने के लिए सैकड़ों-हजारों सैनिकों को युद्ध की आग में झोंक देते थे। अपनी अनेक रानियों को प्रसन्न करने के लिए पानी की तरह पैसा लुटाते थे। उनके लिए लाखों रूपए लगाकर महलें बनाते थे। मर जाने पर भव्य स्मारक बनाते थे। रानी पद्मिनी, संयोगिता, रूपमती, नूरजहाँ, मुमताज आदि के उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है।

शायद प्यार जीवन की सर्वोच्च भावना है जो फूल से गन्ध की तरह मनुष्य के हृदय में निवास करता है, किन्तु मेरे जीवन का दुखद अनुभव यह रहा कि प्यार का

यह नैसर्गिक अधिकार केवल धनिकों, कुलीनों और तथाकथित उच्च वर्ण की बपौती है। दूसरों को यह अधिकार नहीं, दलितों को कतई नहीं।

भूमि पर पड़ा हुआ बीज वर्षा के पानी का संग्रहण जिस प्रकार अंकुरित होता है, वैसे ही मेरे भीतर भी पैदा हुआ था सूरज के प्रति प्यार। मैंने भी अपने ढंग से एक इतिहास लिखना चाहा था कि प्यार का अधिकार, प्यार की भावना राजा-महाराजाओं, धनिकों और तथाकथित उच्च वर्ण के व्यक्तियों की बपौती नहीं है। वह इतिहास मुझे नहीं लिखने दिया गया। उल्टे हमारे गाँव वालों ने हमारे इतिहास को मटियामेट करने के लिए ऐसा इतिहास लिख दिया, जिसे पढ़-सुनकर मानवता का मस्तक शर्म से झुक जाए।

सूरज बचपन से ही हमारे खेतों में मजदूरी करता था। मेरे पिता गाँव के चौधरी हैं। सौ एकड़ से अधिक जमीन उनके पास है। दसियों गाय, भैंसों और बैल हैं। ट्रैक्टर भी हैं। सूरज के माता-पिता, भाई-बहन मेरे पिता तथा हमारी जाति के भूमिपतियों के खेतों में मजदूरी करके अपना जीवन निर्वाह करते थे। सूरज के घरवाले ही क्या उसकी बिरादरी के स्त्री-पुरुषों के पास अपनी मेहनत और पसीने के अलावा अन्य कोई पूंजी नहीं है। उनकी इस मेहनत और इस पसीने को गाँव के भूमिधारी कौड़ियों के मोल ही नहीं खरीदते हैं वरन् उनकी इज्जत से भी खेलते हैं। उन्हें नीच और अछूत मानते हुए भी उनकी जवान और सुन्दर स्त्रियों से मुँह काला करने में, इन उच्च वर्गीय होने का दम्भ पालने वाले लोगों को कोई शर्म नहीं आती। खेत-खलिहान और चारागाह में किसी भी दलित नारी की अस्मत् उतार लेना, ये लोग अपना जन्मजात अधिकार मानते हैं।

अन्याय और असमानता के रोग से ग्रस्त ऐसे समाज में मेरा जन्म हुआ। मुझे भी वह सब देखने-सुनने को मिला कि छोटी और नीच जाति के लोग दूसरे दर्जे के इन्सान होते हैं। इनके साथ जानवरों जैसा सलूक करने का अधिकार तथाकथित उच्चवर्गीय जातियों के लोगों को है। किन्तु मैं कभी इन थोथी मान्यताओं पर विश्वास नहीं कर सकी। इसका कारण था सूरज। देखने में सुन्दर, बोलने में मीठा और व्यवहार में हृदय को जीत लेने वाला किशोर! बचपन से ही मैं पारम्परिक मान्यताओं की विरोधी बन गई थी।

मैं बचपन में सूरज के साथ खेलना चाहती थी, तो मुझे मना किया गया। खेलने-खाने और स्कूल जाने की उम्र में उसे गाय-भैंस चराने जाना पड़ता था। मुझे पढ़ने का अवसर मिला। पढ़ाई ने जहाँ मेरी सोच को सत्य के साथ जोड़ा वहीं सूरज के प्रति अपनत्व को भी विकसित किया।

अनपढ़ होते हुए भी सूरज समझदार था। बातें ऐसी करता कि जी करता सुनते रहें। हमारे खेतों में भी वह इस तरह मन लगाकर काम करता, जैसे उसके अपने खेत

हों। पूरा खाना और पहनने को नहीं मिलता था फिर भी सूरज शरीर से स्वस्थ और पुष्ट होता चला गया। पता नहीं इसके पीछे गाँव के हवा-पानी का असर था या उसके भीतर का आत्मबल। उस पर जवानी का असर जादू बन कर आया था।

उस दिन आसोज की तेज धूप पूरे जोवन पर थी। हवा ने भी धूप से साजिश करके दम साध लिया था। एक पत्ता भी नहीं हिल रहा था। ऐसे में भी सूरज मक्की की खड़ी फसल पर कीटनाशक दवा का छिड़काव कर रहा था। फसल ऐसी खड़ी थी कि देखकर जी जुड़ा जाता था। सिर से डेढ़ दो हाथ ऊँचे मक्की के पौधे तीन-तीन भुट्टे लिए खड़े थे। उनके धारदार पत्तों की मार सूरज के गठीले बदन और सर्दी-गर्मी सह कर सख्त हो आई त्वचा पर बेअसर हो गई थी। पीठ पर दवा का ड्रम बाँधे हाथ में स्प्रेयर की नली थामे, दवा की फुहारें छोड़ते हुए सूरज अपने काम में मगन था। उसका पसीना खेत में सोने जैसी फसल बनकर लहलहा रहा था।

मैं कुँएँ पर खड़ी उसे देख रही थी। उस दिन एक कामना मेरे मन में जागी इस गबरू जवान का साहचर्य सुख पाने की। मेरी इस कामना में मेरी जातिगत खोट नहीं थी। जैसे मेरे वर्ग के लोग खेतों-मेंडों पर खेतों में काम करने आई कथित निम्न वर्ण की महिलाओं के शरीर से खेल कर अपनी वासना शान्त कर लेते थे। मैं चाहती तो वैसा ही खेल सूरज के साथ खेलकर अपनी वासना पूरी कर सकती थी। किन्तु मुझे ऐसी नीचता पसन्द नहीं थी। मैं सूरज को अपना जीवन साथी बनाकर उसके सुख-दुख में सहभागी ही नहीं बनना चाहती वरन् अपनी शिक्षा, सूरज की समझदारी और परिश्रमशीलता के जरिए दोनों का भाग्य बनाने का एक प्रयोग करना चाहती थी। मैंने जब अपने मन की बात सूरज को बताई तो वह आश्चर्य से मेरा मुँह देखने लगा! फिर गरीबी-अमीरी, ऊँच-नीच आदि की हजार बातें समझाकर ऐसा विचार त्याग देने का आग्रह करने लगा।

सूरज का समझाना मुझ पर बेअसर रहा। मैं अपने निश्चय पर दृढ़ थी, मैं प्यार का अधिकार पाना चाहती थी और प्यार का अधिकार देना चाहती थी। सूरज कब तक प्यार पाने के इस अधिकार की अवमानना कर सकता था। थोड़े ही दिनों में हमारे मन एकाकार हो गए।

मुझे मालूम था कि गाँव में रहते हुए मेरा और सूरज का विवाह सम्भव नहीं है। उसका घर मेरा देखा हुआ था। एक दिन हम दोनों चुपचाप गाँव छोड़कर दिल्ली चले गए। हम दोनों वयस्क थे, मेरी सहेली के सहयोग से हमारा विवाह हुआ। उसके प्रयास से सूरज को एक कारखाने में नौकरी भी मिल गई। मुझे भी एक स्कूल में अध्यापिका का काम मिल गया। सुबह-शाम मैं सूरज को भी पढ़ाती थी, पढ़ाई में उसकी गति बहुत तेज थी, हमारी गृहस्थी बस गई। हम तन-मन से एक हो गए। हमारे दिन सोने और रातें चाँदी की थीं, समय पंख लगाकर उड़ रहा था।

मेरी बिरादरी और गाँव के लोग चुप नहीं थे। वहाँ जो षड्यन्त्र चल रहा था, उससे मैं बेखबर थी। मैं सोचती थी कि घर-परिवार और गाँव के लोग देर-सवेर हमारे सम्बन्धों को स्वीकार कर लेंगे।

एक दिन मेरे बड़े भैया हमें खोजते हुए दिल्ली आए। तब हमें दिल्ली बसे कोई छः महीने हो गए थे। उन्होंने जब यह बताया कि पिताजी हम दोनों के सम्बन्ध को स्वीकार कर आशीर्वाद देना चाहते हैं तब मेरी खुशी का पारावार नहीं रहा था। लगा था, दुनिया बड़ी सुन्दर है। तब मुझे क्या पता था कि यह खुशी मेरे जीवन की अन्तिम खुशी होगी।

हम दोनों भैया के साथ गाँव लौटे। पिताजी ने हम दोनों का बेटी जंवाई की तरह स्वागत किया। हम दोनों सूरज के माता-पिता का आशीर्वाद लेने गए, सूरज का झोंपड़ा अब मेरा ससुराल था। बस्ती के लोग हमें देखकर बहुत प्रसन्न हुए थे।

फिर वह काली रात आई जो मेरे जीवन की कभी समाप्त न होने वाली रात बन गई। हमारी शादी की खुशी में मेरे पिता ने हवेली में जश्न मनाने का प्रबन्ध किया था, हवेली के चौक में चबूतरे पर दो कुर्सियाँ लगाकर मेरे और सूरज के बैठने की व्यवस्था की गई थी। बाकी लोगों के बैठने के लिए दरियाँ बिछाई गई थीं।

शाम होते ही जश्न शुरू हुआ। खूब राग-रंग, नाच-गाने हुए। रात के ग्यारह बजे होंगे कि यह जश्न मौत के जश्न में बदल गया। मेरी जाति के पन्द्रह बीस लठैत चबूतरे पर चढ़ आए, उन्होंने सूरज को कुर्सी से बाँध दिया और कुर्सी को उठाकर धरती पर पटक दिया। मुझे मेरे पिता और भाइयों ने कुर्सी से जकड़ कर बाँध दिया। लठैत अनाप-शनाप गालियाँ बकते हुए सूरज को उठाकर दूर ले गए जहाँ लकड़ियों की चिता चुनी हुई थी।

उपस्थित दलित वर्ग के लोगों को हिदायत दी गई कोई अपनी जगह से हिला तो उसका भी वही हाल होगा जो इस लौंडे का हो रहा है।

चिता पर पहले ही मिट्टी का तेल छिड़का हुआ था, माचिस की तीली जलाकर छुआते ही वह धू-धू करके जल उठी। सूरज को उठाकर उसमें फेंक दिया गया एक दो बार वह जान बचाने के लिए भागा तो उसे लम्बी लकड़ियों के सहारे वापस आग में झोंक दिया गया। मेरे सूरज को हैवानों ने जिंदा जला दिया, मजिस्ट्रेट साहब! और ऐलान कर दिया कि 'कोई भी ऐसी हिमाकत करेगा तो उसका भी वही हाल होगा।'

सूरज के घरवालों ने, बिरादरी वालों ने थाने में रपट लिखाई। तब मैं अपनी हवेली में कैद थी। लिखाई गई रपट पैसों की माटी तले दब गई। आठ-दस दिनों बाद जब अखबारों में खबर छपी तो एक सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट, एक डिप्टी एस. पी. और एक थानेदार की बदली होने के अलावा और कुछ नहीं हुआ।

कहने को हमारे देश को आजाद हुए 60 वर्ष हो गए हैं, हमारे संविधान में हर

व्यक्ति को समानता के अधिकार के साथ जीने का हक दिया गया है किन्तु आज भी बर्बर मानसिकताओं की बदमाशी इन सच्चाइयों को नकार रही है।

आप कानून के रक्षक हैं। आपका कानून और आपकी सरकार सूरज के हत्यारों को नहीं पकड़ सके। उन हत्यारों पर अगर मैं पत्थर फेंकती हूँ तो कोई गलत काम नहीं करती हूँ। आपका कानून अगर मुझे पागल करार देकर पागलखाने भेजना जरूरी समझता है, तो सूरज को जिन्दा जलाने वाले वहशियों को, बर्बरों को सजा देना भी उसे जरूरी समझना चाहिए। अब यह आपके हाथ में है कि आप न्याय करें या अन्याय।

पता नहीं सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट उस लड़की को न्याय दे पाएगा या नहीं।

लालचन्द 'राही'

पानीदार भ्रम

लक्ष्मी का विवाह हुआ ही था। अँधेरे घर में रोशनी की तरह जगमगा उठी थी वह। उसके कार्य और व्यवहार को देखकर गाँव की बड़ी-बूढ़ी औरतें भी उसे लक्ष्मी का रूप मानने लगी थीं। देवर तो इतना चाहने लग गया था उसे कि रात को सोते समय भी साथ ही सोने की जिद करने लग जाता था।

ससुराल आए हुए जुम्मा-जुम्मा आठ दिन भी नहीं हुए थे कि एक प्रातःकाल की घटना ने पानीदार लक्ष्मी के जीवन की धारा ही बदल दी।

गाँव के एक ही कुएँ में पानी था, जिस पर बैरवा और मीणा जाति के लोग एक ही सिक्के के दो पहलू के रूप में कुएँ के आमने-सामने के ढाने पर पानी भरा करते थे।

मुसलमानी आक्रमण के समय कुछ मीणाओं ने चोरी-डकैती और जंगली जीवन बिताने के बजाय चमारों की बस्ती में शरण ले ली थी। परिणामस्वरूप वे भी चमारी और बेगारी का काम हाथ में लेने पर मजबूर हो चुके थे।

लगभग छह-सात सौ वर्षों की गुलामी के पश्चात् गाँधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलन ने जोर पकड़ा और सन् 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के साथ बेगारी और चमारी के हीन कार्यों में लगे अनेक मीणा वंशी जातियों के लिए चमारी-बेगारी छोड़ने का यह सुनहरा अवसर था। हजारों दबे-पिछड़े, शोषित-पीड़ित लोगों ने मिलकर, 'बैरवा' जाति का निर्माण कर लिया।

इसी बैरवा जाति का मोहन, काम की तलाश में गाँव छोड़कर दिल्ली में सिलावटी करने लगा था। दलित बस्ती में रहते हुए वह अम्बेडकरवादी विचारधारा में भी जुड़ गया था। लक्ष्मी का ससुराल उसका अपना पैतृक गाँव था, जहाँ आकर कभी-कभी वह दलित-चेतना के समाचार और किस्सों से बैरवा और मीणाओं में समरसता के बीज का रोपण कर जाया करता था।

बहुत दिनों की मिन्नत और झिंक-झिंक के पश्चात् उसने अपने बेटे देवा को अपने पैतृक गाँव में परिवार और रिश्तेदारों से मिलने के लिए भेजा था।

बीस-बाईस बरस का बी. ए. का छात्र देवा, रात को ही गाँव आया था। प्रातः काल शौचादि से निवृत्त होकर नियमित स्नान करने का उसका अपना नियम था। अभी सूर्य की किरणें धरती पर नहीं पड़ी थीं, किन्तु गाँव में घंटियाँ अजान देने लग गई थीं, पंछी पेड़ों पर बाँसुरी बजाने लग गए थे, गाय-भैंसों राम-राम की तरह रट लगाने लग गई थीं! भीनी सौंधी, शीतल बयार कोयल की कूक और मुर्गे की बाँग जागरण गीत के रूप में सारे गाँव को सम्मोहित कर रही थी

पौ फटने के समय हल्के, लालिमा लिए धुंधलके में
डोलि चली रात की, मुदित हुई चातकी।

उपवन को मोतिन की खान दी, चाकी के पाट ने अजान दी।

गुनगुनाता हुआ देवा रस्सी, बाल्टी, तौलिया, साबुन, लोटा आदि के साथ अपने पहनने के वस्त्र लेकर कुएँ की ओर बढ़ रहा था।

दो-चार घरों का रुख कुएँ की ओर ही था, जहाँ से पनिहारिनों एवं स्नान आदि करने वालों को हुक्का गुड़गुड़ाते हुए भी देखा जा सकता था। कुआँ अभी तक ऊँघ रहा था। देवा ने बाल्टी से रस्सी बाँधकर कुएँ को जगाया और श्रीराम, श्रीराम करता हुआ स्नान करने लग गया।

देवा सिर पर पानी डालकर साबुन से लपालोप हो चुका था। उसका ध्यान रामधुन के साथ केवल स्नान में ही लगा था एक पुजारी की तरह।

इसी बीच लक्ष्मी भी न जाने कब कुएँ पर अपना बेवड़ा भर चुकी थी। फुर्ती से उसने अपनी बाल्टी का पानी देवा की आधी खाली बाल्टी में उंडेल दिया, रस्सी-बाल्टी समेटी और बेवड़ा उठाकर वापस लौट गई। घूँघट में उसने स्नान करने वाले को देखा तक नहीं। केवल सहज निष्काम दया-भाव से बचा हुआ पानी देवा की बाल्टी में उंडेल कर अन्य गृह कार्य निपटाने की जल्दी में वह कुएँ से घर की ओर लौट चुकी थी।

देवा ने दिल्ली से आते ही रात को लक्ष्मी के ससुर से 'जय एकलिंग जी' अर्थात् राम-राम कर ली थी। लक्ष्मी का ससुर एक छोटी-सी मुलकात में ही देवा का हम-विचार बन गया था।

वस्तुतः लक्ष्मी का ससुर गंगाराम और देवा का पिता मोहन मीणा और बैरवा जाति होने के बावजूद दाँत काटी रोटी जैसे ही थे। दोनों ने दो-तीन बार औरतों के साथ छेड़खानी करने वाले घीसा और माधो को धूल चटाई थी तथा अनेकों बार खेत-खलिहान में छुप कर दारू भी पी थी।

लंगोटिया होने का कारण यह भी था कि दोनों ही मरमट गोत्र के थे तथा मोहन की घरवाली लोदवाल थी तो गंगाराम की दादी भी लोदवाल ही थी। अनेकों बार दोनों सत्संग में बैठकर गुरुवाणियाँ सुन चुके थे तथा दोनों की आस्था गोविन्द गुरु और

सन्त बालीनाथ के प्रति भी जग गई थीं। दोनों ही अपने आपको मनुवाद और सामंतवाद के कारण दलित ही अनुभव करते थे।

सदैव की भाँति गंगाराम भी पौ फटने के पूर्व ही जाग गया था और अपनी पोल में हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। जैसे ही उसने अपनी बहू लक्ष्मी को देवा की बाल्टी में पानी उड़ेलते देखा तो वह आग बबूला हो गया, जैसे हुक्के की सारी आग उछट कर उसके तन-बदन पर बरस पड़ी हो।

वह अपने आपे से बाहर आ गया और दहाड़कर लक्ष्मी पर गालियाँ दागते हुए कहा “ठहर जा वहीं, अगर एक पग भी आगे चरयो तो यो गंडासो ही थारा प्राण ले लेगो।”

सहम कर डर के मारे लक्ष्मी के पाँव वहीं पर गड़ गए। ससुर के समक्ष हाथ भर का घूँघट खींचे वह पोला के आगे निःशब्द खड़ी थी।

“दाई जी काँई हो ग्यो? अजी कुण पे बरसरिया छो? काँई होग्यो रे गंगा राम?” आदि प्रश्नों के साथ देखते-देखते गंगाराम के घर के समक्ष भीड़ जमा हो गई।

देवा अभी राम-धुन के साथ अपना तौलिया धो रहा था। गंगाराम की क्रोध भरी गर्जना से उसके कान अभी भी बेखबर थे।

“अरे या चमारां की रखैल म्हानें भी चमार समझ रही छो। ईनें तोला कोनी कि मैं मरण-मारण धारी मीणा छां।”

“पण बात काँई होगी दाइ जी, म्हाने बताओ तों सणी?”

“अरे या दल्ली हाल्ला की रखैल, नाम सुं लछमी और चरित्तर सुँ कुल्टा, अब म्हारा घर में नी रे सके।”

धीरे-धीरे कुछ बैरवा स्त्री-पुरुष भी गंगाराम की गुआड़ी के समक्ष जमा हो चुके थे। सिर पर बेउडा धारे हुए बेचारी लक्ष्मी अपनी जगह पर खड़ी-खड़ी काँप रही थी। उससे न कुछ कहते बन रहा था न सुनते बन रहा था।

मुशिकल से सौ गज दूरी पर स्नान से निवृत्त हो वस्त्र पहन रहा था देवा।

गाँव के दो-तीन रिश्तेदारों ने उससे पूछा “काँई कर दियो भाया तने?”

“न्हाधो के कपड़ा ही बदलर्यो छँ काका!”

“जी, सुणाओ काँई बात छा?”

“अरे तू सुण कोन रियो क गंगाराम भाई की गाल्यो?”

“क्यँ, कुणने गाल्यो बक रियो छे बाबो गंगाराम?”

“अरे जँकी बहू ने तू छेड़ी छा क?”

“काका जी मैं तो वणा की बहू ने आज तक देखी ही नहीं और ये छेड़बा की बात करिया छो।”

“चाल म्हारे साथ और हो अराबरू।”

देवा गंगाराम के समक्ष खड़ा हुआ। दो-चार लोगों ने बचाव के लिए देवा को घेर रखा था। कुछ महिलाएँ लक्ष्मी के पास खड़ी हो गई थीं और कुछ लोग गंगाराम के पास भी खड़े हो गए थे। सभी का ध्येय भविष्य के हादसे को रोकना था।

गंगाराम अभी भी उछल-उछलकर तेवर दिखा रहा था किन्तु किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

एक महिला ने लक्ष्मी का बेउड़ा उतारा और हाथ पकड़कर घर में प्रवेश कराने के लिए आगे बढ़ी किन्तु दक्काल कर गंगाराम ने लक्ष्मी को घर में नहीं घुसने दिया। बेचारी खड़ी के खड़ी रह गई।

थोड़ी देर बाद लोगों को समझ में आ गया कि गंगाराम भ्रम में फँस कर बावला हो गया है। छोटे-बड़े सभी के द्वारा उसे समझाया गया किन्तु गंगाराम तो अपने भ्रम को ही तिल का ताड़ बना बैठा था। उसने अपना निर्णय सुना दिया कि यदि लक्ष्मी घर में प्रवेश कर गई, तो वह सामने वाले कुँ में ही कूदकर अपनी जान दे देगा।

नौबत यहाँ तक आ गई कि गंगाराम ने लक्ष्मी का झगड़ा लेने की ठान ली।

देवा के काका रतन से अब रहा नहीं गया और उसने भी सबके सामने कह दिया कि जब लक्ष्मी ही देवा की रखैल है तो झगड़ा भी देवा ही चुकाएगा।

“गंगाराम भाई बोल कतरो झगड़ो लेगो?” रतन ने कहा।

गंगाराम ने भी तत्काल कह दिया “एक लाख।”

“दूँ लो।” रतन बोला।

“अबार ई घड़ी चुकाणो पड़सी।”

“हाँ, मंजूर छ।” रतन ने स्वीकृति दे दी।

सबके सब अवाकू हो गए इस समझौते पर। आपस में काना-फूसी होने लगी।

देवा ने विनम्र भाव से कहा “पंचों में हाथ में गंगा लेके संत बाली नाथ और गोविन्द गुरु की कसम खाकर कहूँ कि आज तक मैंने ई लक्ष्मी की ओर देख्यों, के बात की, तो म्हने म्हारी माँ पर लांग खोली हो।”

“अरे मैं जानू छूँ एँ जी थाली में खाबो छो ऊमें छेद करो छो।”

“बाबा अब मूंडों सम्भाल के बोल, नीतों में भी बेरयाँ को बेरी बैरवा छूँ।”

“अरे हरामी झगड़ो देजा और लेजा थारी रखैल न।”

“भाया जी रूको घड़ी श्यात, मैं अबार याँको झगड़ो चुकाऊँ छूँ।” रतन ने कहा।

“अरे भिखमंगा तू काँई झगड़ो चुकाने लो। मरद को पूत छ तो गण (गिन) दे एक लाख और ले जा ई कुल्टा ने।”

देखते-देखते रतन ने अपने घर पर के कोठे को तुड़वा दिया और उसके चारों-पायों में गड़े चाँदी के सिक्कों से भरे घड़ों को सबके सामने लाकर रख दिया।

शर्त के अनुसार उस समय के भाव से सिक्कों का मोल रुपयों में आंका गया । गंगाराम के समक्ष गणना की गई और तत्काल देवा ने लक्ष्मी का हाथ थाम लिया ।

अब लक्ष्मी चुप नहीं रह सकी । वह फूट-फूटकर रोते हुए कहने लगी “ऐ म्हारा भगवान, आज थारी लछमी एक लाख रुपयों में बिक गई है । हे परमात्मा आज म्हारा ससरा जी ने खरा सोना में भी खोट बताई छ; हे दन महराज म्हारा ससरा को भ्रम दूर करजो ।”

रतन कुमार सांभरिया

शर्त

बत्ती ऑन करने का वक्त था। जसबीर सिंह चिन्ता और दुराशा से घिरा बैठा था, अपनी बैठक में। उसकी आँखें बगल वाले मार्ग को ही देख रही थीं, दूर तक। क्या बात हुई? क्यों नहीं आया अब तक वह? क्या बिरजू भी...? उसका नौकर बिरजू अन्दर की ओर से आकर खड़ा हो गया था, चुपचाप। जसबीर की नजर उसकी ओर घूमी तो संयमित होकर उसने पूछा “मैं तो इस राह को देख रहा था, बिरजू?”

बिरजू ने कारिंदगी के स्वर में कहा “मालिक साब, जब वह आया नहीं तो हवेली की गली से चला गया।”

जसबीर ने हैरत और घबराहट से पूछा “क्यों नहीं आया वह?”

“कह रहा था, उठा ही नहीं जाता, चलूँ कैसे?”

“साइकिल या रिक्शा पर घर लाते?” उसकी आँखें बदलीं। बिरजू ने हाथ जोड़ दिए और नम्र भाव से कहा “नहीं जुटा पाया, मालिक साब।”

जसबीर सिंह ने अपनी दीर्घकाय हवेली की ओर देखा। भित्ति चित्रों से सजी-सँवरी अपनी बैठक को निहारा। गेट के दोनों स्तंभों पर उत्कीर्ण संगमरमर के सिंहों पर दृष्टि डाली और सामने हरे-भरे लान को देखकर कहने लगा “अकेला ही पड़ा होगा न, वह।”

“नहीं मालिक साब, ऐसी बात नहीं है। आने-जाने वालों का ताँता लगा हुआ था और बड़े मालिक तो उसी की खाट पर बैठे थे, पायताने।” बिरजू ने अपनी बात रखी।

जसबीर सिंह के शरीर पर जैसे किसी ने जलती हुई सिगरेट बुझा दी हो। पूछा “बड़े भैया परमवीर सिंह?”

“हाँ, मालिक साब?”

“ठीक है समय बलवान है। सोच रहे होंगे, इस आड़ में अब दिन फिरेंगे उनके।” जसबीर का मुँह जैसे थूक से भर गया था। वह कुर्सी से उठा। गेट तक गया। थूका।

रूमाल से मुँह पोंछा। रूमाल को पैंट की जेब में रख लिया और फिर कुर्सी पर आकर बैठ गया था। उसने भृकुटियाँ सिकोड़कर बिरजू की ओर देखा “सुना है, उस दिन के बाद पानिया बिना अन्न-पानी के ही पड़ा है?”

“दीखता तो ऐसा ही है। खाट से लग रहा था।” बिरजू ने अपने मालिक की बात को पुष्ट किया।

इतनी ही देर में पानाराम ने आकर दस्तक दी। चिथड़े-चिथड़े मैल भरे कपड़े, नंगे पाँव, दम तोड़ता-सा कंकाल बना शरीर, मानो अब लाश में तब्दील हुआ। उसने जसवीर सिंह को न राम-राम की न नमस्कार। पहले तो उसने झुक कर दोनों हाथ जमीन पर टेके और फिर बैठकर द्रोपदी के चीर जितनी लम्बी साँस ली थी उसने।

जसवीर सिंह की आँखें पानाराम के जीर्ण-शीर्ण शरीर पर ज्यादा देर टिकी न रह सकीं। विह्वल मन से पूछा “यूँ कब तक भूखों मरोगे पानिया?”

“जब तक भूख लगेगी मुखिया साब!” पानाराम रुँआसा हो गया।

उसने अपनी बात रखी “क्या बताऊँ? वह दिन ही मनहूस था पानिया। रिश्तेदारी की शादी में हम सबका जाना हुआ और मेरे लड़के का तेरी लड़की के साथ...। अगर उसकी भी परीक्षा नहीं होती और तेरी लड़की भी उस दिन झाड़ू-बुहारी को नहीं आती तो आज का दिन नहीं दिखता।”

बिरजू जसवीर सिंह की कुर्सी के पास ही खड़ा था। उसने एक बार तो पानाराम की ओर दया व घृणाभरी दृष्टि से देखा और फिर जसवीर की ओर श्रद्धालु आँखों से देख कर कहा “बालक था कर बैठा गलती।”

जसवीर ने बिरजू की ओर गर्दन घुमाई। वह उसका यह अंखैया संकेत समझ गया और भीतर चला गया।

अब वह पानाराम की ओर देखकर कहने लगा “पानिया मैं कम दुखी नहीं हूँ, उस हादसे के बाद। अगर मेरी जमीन-जायदाद को कोई दूसरा वारिस होता तो मैं उस दुष्ट को गोली मार देता। एक मुँह सौ बातें। गाँव से निकलना नहीं बनता।”

लड़की की क्षतदेह और रुदन से सूजी आँखें जैसे पानाराम के सामने आकर खड़ी हो गई थीं। उसकी आँखें भर आईं और होंठ बस कंपकंपा कर ही रह गए थे।

जसवीर कुर्सी से उठकर पानाराम के पास बैठ गया था उकड़ूँ। उसने विवशता और लाचारी से पानाराम के गंधाते कंधे पर हाथ रखा। थोड़ी देर उसकी झुर्रियों में अटके आँसुओं को वह देखता रहा और दयार्द्रता का भाव चेहरे पर लाते हुए अपनी बात जमाई “पानिया, लोग मेरी खाली कुर्सी को भी ‘राम-राम’ कहकर निकलते थे। अब मैं यहाँ बैठा खाँस भी देता हूँ। लोग निकल जाते हैं, नीची गर्दन करके। और जब थोड़ी दूर आते जाते हैं न, जमीन पर थूक फूचक देते हैं। सच बताऊँ पानिया, ऐसा महसूसता हूँ, जैसे थूक के वे फुचके मेरे मुँह पर गिरते हों।”

बिरजू जब लौटा तो उसके हाथ में चाय के दो कप थे। उसे यह देखकर बड़ी हैरत हुई कि मालिक साब इस अदना से पानिया के सामने याचक बने बैठे हैं। उसने जसवीर सिंह का कप टेबुल पर रख दिया। दूसरा कप पानिया की ओर बढ़ा कर उसने कहा “पानिया चाय ले।”

पानाराम ने तरेरती आँखों से बिरजू को घूरा और फिर देखता हुआ अवसाद के भंवर में गुम हो गया। जसवीर सिंह ने बिरजू से कप लेकर पानाराम से कहा “कई दिनों से कुछ नहीं खाया-पिया है तुमने। इतनी हठी भी ठीक नहीं होती है।”

जसवीर ने जी भरकर चिरौरी की। चबुक को छूकर उसने क्रोध, आक्रोश और अन्तर्वेदना को पिघलाने की खूब चेष्टा की, लेकिन पानाराम था कि टस से मस नहीं हुआ। उसने कप को वापिस बिरजू की ओर बढ़ाकर कहा

“इसे टेबुल पर रख दो और जाकर अपने दूसरे काम देख लो।”

जसवीर को जैसे सन्निपात-सा हो गया था। वह बहुत कुछ बोलना चाहता था, लेकिन बोल नहीं पा रहा था। अपनी पुश्तैनी मान-मर्यादा और शोहरत को तिरोहित कर उसने पानाराम के दोनों कंधे पकड़े और बड़े अदब से उसको पास पड़ी कुर्सी पर बैठा दिया। उसने पानाराम की आँखों में आँखें डालीं और भावातिरेक से कहा

“पानिया, तुम छोटी जात वालों के बलबूते पर ही तो मेरी सरपंची बरकरार है, सालों साल से। तुम ही तो मेरे हाथ हो। अगर तुम मुझ से कट जाओगे तो मेरा क्या वजूद। पंखहीन पंछी को देखा है कभी? बस...।”

पानाराम निश्चेष्ट बैठा था, मूर्तिवत। उसे नहीं मालूम कि जसवीर क्या बलबला गया। उसे तो बस अपनी बेटी की चिन्ता ही दले जा रही थी। कुछ देर तक बैठक शान्त रही, आधी रात-सी। अन्ततोगत्वा इस चुप्पी को जसवीर ने ही तोड़ा “अगले माह तेरी लड़की की शादी है न, सारा पैसा मैं लगाऊँगा।”

पानाराम की आँखें डबडबा गईं। आँसू दुलक-दुलक कर नीचे गिरने लगे। कई दिनों से बिना धुले उसके गालों पर रेखाएँ खिंच गईं, मानो रेत से कोई कीड़ा रेंग गया हो। रुलाई को रोकते हुए वह कहने लगा

“वह रिश्ता तो दूसरे दिन ही टूट गया, मुखिया साब!”

“पैसे ले जाओ, दूसरी जगह दूर कहीं कर दो।” जसवीर पानाराम की हामी का इन्तजार करने लगा।

“पैसों और गरीब की इज्जत को एक ही तराजू में मत तोलो साब!” क्षुब्ध पानाराम फफक उठा।

जसवीर के चेहरे पर हताशा और चिन्ता एक साथ उभरी “थाना कचहरी घसीटोगे मुझे?”

“नहीं मुखिया साब।”

“तो।”

“एक मेहतर का घर कम हो जाएगा आपके गाँव से।” पानाराम ने दोनों हाथों से आँखें पोंछ लीं।

“गाँव छोड़ोगे?” जसवीर गल-सा गया।

पानाराम रो पड़ा “गाँव छोड़ने से वह दाग नहीं धुलेगा।”

“फिर?”

“जहर खाकर मरूँगा पूरे परिवार के साथ।” पानाराम की पलकों से आँसू चू पड़े।

जसवीर सिंह को कुछ सूझ ही नहीं रहा था कि क्या बोले क्या नहीं। अब किस तरह समझाए पानाराम को। उसने दो-तीन बार अपनी बात कहने का साहस भी किया, लेकिन होंठ बुदबुदा कर ही रह गए। एक शब्द भी मुँह से नहीं निकला। उसने एक लम्बी साँस ली और हिम्मत बटोरकर कहा “पानिया, यूँ तो बलात्कार के साथ-साथ एक हरिजन परिवार की हत्या का दाग भी लग जाएगा मेरी सफेद चादर पर।”

“हाथी को हथिया कोई नहीं कहता साब।” पानाराम की पानियायी आँखें जमीन देखने लगी थीं।

“किसी शर्त पर मान भी जाओ पानिया।” जसवीर के चेहरे पर लाचारी उभर आई थी।

उसका वह लड़का और लड़की सामने के लॉन में आकर बैडमिंटन खेलने लग गए थे। पानाराम ने अपनी गीली आँखें झपझपाकर उधर देखा और आर्द्र कण्ठ से कहा “एक शर्त है, मान लोगे?”

जसवीर सिंह के विपदग्रस्त मन को राहत सी महसूस हुई। उसके शुष्क और पपड़ाए होंठों पर खुशी तिर गई। उसे लगा जैसे वह कब्र से बाहर निकल आया है। वह मन ही मन विचारने लगा, पानिया ने पैसों के लिए इन्कार कर दिया है। इसे भेड़-बकरियाँ चराने के लिए जमीन चाहिए। बहुत लेगा तो दो-चार खेत माँग लेगा, अब। तीन सौ बीघा जमीन है। क्या फर्क पड़ता है अगर समुद्र से दो बूँदें निकल गईं। उल्लसित मन से उसने पूछा “पानिया उसी नालायक की कसम मान लूँगा। अपनी शर्त बताओ भी तुम।” उसने खुले दिल से हामी भर दी थी।

बात पानाराम के होंठों तक आती और फिर वापिस लौट जाती थी। शब्दों की इस आंतरिक आवाजाही से पानाराम भीतर तक हिलहिला कर रह गया था। अन्त में उसने अपने भीतरी और बाहरी दोनों पक्षों को संभालकर कहा

“मुखिया साहब इज्जत का सवाल है यह। आपकी इज्जत सो मेरी इज्जत। आपकी लड़की हमारे समाज के किसी लड़के के साथ एक रात बिताएगी।”

जसवीर सिंह दिल का मरीज था। उसने पानाराम की शर्त सुनी कि अब फटा,

अब फटा । अपने कलेजे को पकड़ लिया था उसने और खँसते-खँसते बेहाल हो गया था । बदहवासी की इस हालत में वह दो-चार कदम दीवार की ओर बढ़ा और खूँटी से टँगी दोनाली बन्दूक उतार ली । वह बन्दूक की नाल को पानाराम के सीने पर रखकर स्ट्राइगर दबा ही रहा था कि उसे एकाएक खँसी उठ गई । बन्दूक की नाल घूमी । उसका वह लड़का सामने के लॉन में अपनी बहन के पास बैडमिंटन खेल रहा था । वह गोली जैसे उसी के लिए बनी थी । गोली उसकी छाती को बंध सामने की दीवार से जा टकराई । सामने जब लड़का गिरा तो जसवीर के हाथ से बंदूक छूट गई । जैसे कटा हुआ पेड़ गिरता है जमीन पर, जसवीर गिर पड़ा था । वह मरते-मरते बस इतना ही बोल पाया था “पानिया!”

पानाराम कुर्सी से उठा । उसने जसवीर सिंह की छाती पर पाँव रखकर उसे लाँघा । लॉन की तरफ वह लपका । उसके मृत पुत्र के मुँह पर थूका और कबीरदास जी का कोई भजन गुनगुनाता हुआ अपने घर लौट आया ।

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल

अस्वीकृति

प्रिय मित्र,

मेरा पत्र पाकर तुम्हें आश्चर्य तो होगा, किन्तु इसके माध्यम से कुछ ऐसी बातें बताना चाहता हूँ, जिन्हें किसी न किसी कारण से मैं अब तक छिपाए रहा। अब उन्हें छिपाए रखना न ही उचित होगा और न ही सम्भव। प्रायः मेरी स्थिति और मनःस्थिति से तुम सबसे ज्यादा परिचित थे। पर, कभी-कभी लगता है कि परिचय का दायरा कितना ही विस्तृत क्यों न हो, उनमें कहीं न कहीं अवरोध रह ही जाता है। ऐसा अवरोध, जिसे हम खोजने का प्रयत्न ही नहीं करते अथवा हमारी आँखों से सदैव ओझल बना रहता है।

हर आदमी के दो व्यक्तित्व होते हैं। एक जो सोचता है, आचरण को प्रेरणा देता है। दूसरा वह, जिसका मुखौटा चढ़ाए व्यक्ति समाज में अपने को व्यक्त करता है, बड़े-बड़े भाषण देता है और स्वयं को जलसों व जुलूसों का बेताज बादशाह घोषित करता है। व्यक्तित्व की पूजा करने के लिए लोगों की बड़ी भीड़ अपना कीमती समय बर्बाद कर देती है। उसको देवदूत मानती है, अपना मसीहा स्वीकार करती है, जीवन की अपंगता का अपरिहार्य अंग मानती है और यह ऊपरी व्यक्तित्व सज-सँवरकर अपने सफेद और उजले कपड़ों के भीतर अपने अन्दर के व्यक्तित्व को छिपाता रहता है। एक सीमा तक सफल भी हो जाता है। व्यक्तित्व का यह लबादा ही उसकी शान है। किन्तु आदमी कहीं न कहीं तो अपने को उघाड़ता है, अपने लबादे को उतारता है, अपनी वास्तविकता में झँकने का प्रयास करता है। इन क्षणों में होने वाले अनुभव से ही सही मानव की पहचान होती है।

जिन बातों को जाहिरा तौर पर मैं तुम्हें नहीं बता पाया, जिन्हें बताने की हिम्मत भी अपने में पैदा नहीं कर पाया, उन्हें पत्र में लिखते समय एक सिहरन तो जरूर हो रही है, किन्तु जब मैं सोचता हूँ कि इससे सरल और सुलभ माध्यम न मिल सकेगा फिर जो बात मेरे अन्दर घुमड़ रही है, वह अप्रकट ही रह जाएगी।

150 ❖ दूसरी दुनिया का यथार्थ

मुझे वे दिन अच्छी तरह से याद हैं, जब मैं जाति या वर्णभेद, सम्प्रदाय भेद और वर्गभेद की काली और कलुषित दीवारों को खंडित करके उसके मलवे को धरातल में दबा देने के लम्बे-चौड़े भाषण दिया करता था और अपनी धाराप्रवाह वाणी से शब्दों के मजबूत जाल बिछाया करता था। मैं हमेशा कहा करता था कि अभेद, अद्वैत और विश्व एकता की अद्वितीय भावना वाले देश में भेद-भावना का विष समाज पर गहरा प्रभाव डाले हुए है। लगता है, उसे गहरी नींद में सुला देना चाहता है, ताकि देश की पीढ़ी इस अभिशाप से ग्रस्त रहे।

मैं आजतक मानता हूँ कि जिस देश में जगद्गुरु शंकराचार्य ने चांडाल तक में उसी ब्रह्मतत्व के दर्शन किए, जो उनके अन्दर था, तो वह अस्पृश्य कैसे हो गया? क्या उसे अस्पृश्य मानकर हम स्वयं को अस्पृश्य होने का दावा नहीं कर रहे हैं? वह हमको छू सकता है और हम हैं कि उससे दूर भागते हैं। तब अस्पृश्य तो हम हुए। जगद्गुरु ने भेदभाव मिटाने के लिए हमें अमर प्रकाश दिया और उनसे प्रकाश प्राप्त करने का दम भरने वाले हम अस्पृश्यता और भेदभाव को समाप्त करने में सोच-विचार का सहारा ले रहे हैं। सौ, दो-सौ नहीं, करोड़ों की संख्या में। आखिर क्यों?

कितनी ही बार एकलव्य को ठुकराए जाने के लिए मैंने गुरु द्रोणाचार्य को भला-बुरा कहा था। रईसों और धनवानों के प्रतिनिधित्व के रूप में उन्हें चित्रित किया था। कितना कुशल धनुर्धर केवल जाति और वर्ग के कारण अपमान का घूँट पीकर रह गया। उसने केवल इतना ही तो चाहा था कि गुरु द्रोणाचार्य उसे भी धनुष विद्या सिखाएँ। ज्ञान किसी की बपौती नहीं होती, किन्तु गुरु ने राजकीय कारणों से अथवा साधनों के वशीभूत होकर राजपुत्रों को ही धनुष विद्या सिखाने का बहाना बनाया और उस भील-पुत्र को ठुकरा दिया।

उस भील-पुत्र ने हार न मानी। वह वास्तविक विद्या का अधिकारी था। एक दिन उसने गुरु और उनके राजसी शिष्यों को यह बता दिया कि वह किसी से कम नहीं है। हाँ, इसके पीछे उसकी संकल्प शक्ति काम कर रही थी। विवेक ने उसका साथ दिया था, शील और गुणग्राहकता ने उसे अपनाया था। तभी तो गुरु के महान शिष्यों पर भौंकने वाले एक कुत्ते का मुँह वह अपने वाणों से बन्द कर सका। शिष्य ने फिर भी अपनी गुरु भक्ति और विनम्रता ही दिखाई। गुरु को आश्चर्य में डाल दिया उसने, परन्तु गुरु ने उससे क्या माँगा? उसका सर्वस्व। वह तो सहारा माँगने आया था। सहारा देने के स्थान पर उसे ठुकराया गया, वह दास बना रहा तो उसकी याचना और विनम्रता को भुनाने में किसी ने कोई कसर नहीं छोड़ी, अब मुझे लगता है कि मैं आदर्शवाद के कागजी सिद्धान्तों की ओस चाटता रहा। मैं समझता था कि संसार को समानता, एकता और भाईचारे का सुकोमल सन्देश देकर मैं अपने गाँधीवादी चोले की सार्थकता सिद्ध कर सकूँगा किन्तु जब मेरी परीक्षा का क्षण आया तो मेरे सारे आदर्श

और नारे, सिद्धान्त और कर्म, विश्वास और धर्म, समानता और भाईचारे का दम्भ, दलित और शोषित वर्ग के उत्थान में बहाए गए आँसू और लिखे गए लम्बे लेख एक बार में ही कागज की नाव हो गए।

तुम विक्रम के विषय में सब कुछ जानते हो। दलित परिवार से उस बालक को विकास की सीढ़ियाँ चढ़ाने में मेरे योगदान के विषय में भी तुम बहुत कुछ जानते हो। तुम जानते हो कि मैंने उसे अपना पूरा प्यार दिया, अपने हर काम में उसे अपने साथ रखा, उसके कष्टों को अपना समझकर दुलराया, उसकी परेशानियों में उसे पूरी सांत्वना दी। मैं उसका अध्यापक था, संरक्षक भी था। उसके आँसुओं को मैंने अपनी धोती के छोर से पोंछा, उसके ताप में चंदन लगाया, उसके शीत में गहरे विश्वास की ऊष्मा दी। अपने एकलव्य के लिए मैंने द्रोणाचार्य के धर्म का अनुसरण नहीं किया। फिर एक दिन हम कितने दूर हो गए, यह बताने के लिए ही मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ।

तुम्हें पता है कि मेरी दो पुत्रियों में एक विवाह के योग्य हो चुकी थी। अपने चारों ओर जुड़ने वाली भीड़ के कारण मैं अपने इस सामाजिक दायित्व के प्रति बेखबर-सा हो गया था। नेहा की उम्र बढ़ती जा रही थी किन्तु मैं दुर्बोध सामाजिक दायरों में बँधता जाता था।

विक्रम की शिक्षा-दीक्षा और बुद्धि-विवेक ने उसे प्रगति की मंजिल की तरफ बढ़ाना आरम्भ कर दिया था। उसने प्रथम श्रेणी में एम. ए. किया। मेरी बेटी ने भी उसी के साथ विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया। नेहा शोध करना चाहती थी और विक्रम किसी कंपटीशन में जाना चाहता था। दोनों अपनी-अपनी तैयारियों में लग गए। जब कभी मिलते, मैं उनकी प्रगति की चर्चा उनसे अवश्य करता। इस बीच मैं राजनीतिक उथल-पुथल में इतना व्यस्त हो गया कि विक्रम से उसी समय मिल पाया, जब उसने मुझे पकड़कर कहा “सर, मैं आई.ए.एस. में सेलेक्ट कर लिया गया हूँ। अब मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए।”

“मेरा आशीर्वाद! क्या तुमने कभी इसमें कमी पाई है? क्या तुम्हें कभी लगा है कि मैंने तुम्हें पराया समझा है? मेरा रोम-रोम तुम्हारी प्रगति को देखकर पुलकित है।” मैंने उससे कहा।

मेरी बात सुनकर वह मेरे सामने सर झुकाए खड़ा रहा, जैसे वह कुछ और सुनना चाहता हो। मैंने मुस्कान भरे कुछ वाक्य उसकी प्रशंसा में और दुहरा दिए। पर वह वैसा ही खड़ा रहा।

“क्या बात है, विक्रम? क्या इस प्रगति से भी खुश नहीं हो। चिन्ता न करो, आगे भी उन्नति के बहुत से चांसेस हैं। हम पूरी कोशिश करेंगे।”

“नहीं सर, वह तो आगे की बात है। मैं चाहता हूँ...।” वह फिर भी वाक्य पूरा नहीं कर सका और बीच में ही अटक गया। जैसे कुछ बात उसके मुँह तक आती थी

और वह उसे कह नहीं पा रहा था। लगता था जैसे वह कोई असामान्य बात कहना चाहता हो।

मैंने उसे धीरज-सा दिलाते हुए पूछा, “हाँ-हाँ, बताओ। क्या चाहते हो? तुम आज अनोखा व्यवहार कर रहे हो।”

अचानक विक्रम का स्वर खुला, “सर, कहना तो बहुत दिनों से चाहता था किंतु मन को तैयार करने और शक्ति को जुटाने में बहुत समय लगा। पहले तो सोचा, कहूँ या न कहूँ? कहूँ तो कैसे कहूँ, बात को कहाँ से आरम्भ करूँ? अब मैं विकास की उस सीमारेखा पर खड़ा हूँ, जहाँ पर मैं विराट् तो नहीं हो गया किन्तु साहस का कोई अज्ञात पुंज मेरे शरीर में अवश्य प्रविष्ट हो गया है। सर, यदि आप मेरी सहायता करें तो नेहा के साथ...।”

मैं बीच में ही बोल पड़ा। नेहा का नाम आते ही मुझसे चुप न रहा गया। मैंने उनसे पूछा “हाँ, नेहा के साथ क्या प्रोग्राम है?”

“मैं नेहा के साथ विवाह करना चाहता हूँ।” वह इस बार एक ही साँस में अपने दिल की सारी बात कह गया और मुझे अजीब से उद्वेलन में डालकर बैठक से बाहर चला गया।

क्या कहा विक्रम ने? क्यों कहा विक्रम ने? ऐसा क्यों सोचा विक्रम ने? नेहा के लिए मैंने कुछ भी नहीं सोचा। क्या दोनों इतना आगे बढ़ चुके हैं? या यह केवल विक्रम के मन की मूर्खता है। मैंने विक्रम को सहारा दिया, मैंने कूड़े के ढेर से उठा कर उसे सही जगह पर बैठाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी किंतु उसने मेरे घर की दीवार में ही छेद कर दिया। यह क्या किया विक्रम ने? मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूँ इस सम्बन्ध को। आखिर!!!

मैं ज़ोर से चीखा, “यह क्या बदतमीजी है?”

मेरी आवाज घर के कोने को भेदकर मानों सड़क तक पहुँच गई। मुझे लगा कि उस निर्वस्त्र सड़क ने मुझे भी नंगा कर दिया।

शत्रुघ्न सिंह 'अनाम'

राम नाम सत् है

“पारवती देवी! तुमने ठाकुर सिंह का खून किया है?”

“नाहीं साहेब।”

“किसने किया?”

“हमको नहीं मालूम।”

“खून तुम्हारे आँगन में हुआ तुम कहाँ थीं...फिर भी तुम्हें नहीं मालूम?”

“नाहीं साहेब।”

“मोहन सिंह के साथ तुम्हारा सम्बन्ध था?”

“हाँ साहेब।”

“कैसा सम्बन्ध था?”

“जो सम्बन्ध मेहरारू और मरद का होता है।”

“वह तुम्हारा पति था?”

“नाहीं साहेब?”

“पारवती देवी मोहन सिंह का कत्ल तुम्हारे ही घर में हुआ था। यह सच है कि तुमने उसकी हत्या नहीं की, लेकिन हत्यारा कौन है, इसे तुम जानती हो। तुम उसका नाम बता दो। हो सकता है, अदालत तुम्हारा बचाव कर सके।”

“हमार बचाव होके का होगा साहेब। हमार मरद अब हमको रखेगा नहीं। अइसन जिन्दगी से का फायदा? हमको सूली पर लटका दो साहेब, अब तो एही में भलाई है।”

जज और वकील ने बहुत प्रयास किए परन्तु परबतिया ने इससे अधिक नहीं बताया। तरह-तरह के प्रलोभन दिए गए उसे...पुलिस ने यातना भी दी...किन्तु उनके हाथ कुछ भी नहीं लगा।

परबतिया पिछड़ी जाति की थी, पर उसके चेहरे पर जाति का प्रभाव न था। बचपन से माँ-बाप की लाडली थी। हो भी क्यों नहीं, नीली-नीली आँखों को मटकाती

जब वह 'बाबू-बाबू' कहकर भिखारी की गोद में आकर बैठती तो उसका दिल बैठने लगता। "अइसन सुनर बेटी के लायक वर कहवा दूँगा...हमरे जात में करिया-मलेच्छ होत हैं। गोर बेटी खातीर गोर लइका...का प्रभु! इ मालामत हमरे को देना था।" बेटी के विषय में सोचते-सोचते उसका हृदय बैठने लगता था। चाहे वह पत्नी के साथ बैठा हो, चाहे अकेले हल चला रहा हो या फसल की कटनी कर रहा हो...परबतिया के विषय में सोच-सोच विकल हो उठता था वह।

उसकी विकलता के कई कारण थे...लड़की का लावण्यमयी होना उसकी खुशकिस्मती थी और परेशानी का कारण भी। समाज में अपनी स्थिति से परिचित था वह। न जाने कई दरिंदों की नजर परबतिया पर पड़ रही होगी। कैसे सुरक्षित रखेगा वह अपनी इस मासूम कली को। रात में सोते और सुबह जगते हाथ जोड़कर प्रार्थना करता " हे भगवान! जइसे हमरा के सुनर बेटी दिए हो, हमार लाज भी रखना।"

समय के साथ परबतिया सयानी हो गई। उम्र के साथ-साथ उसका सौन्दर्य कुन्दन की तरह निखरता गया। गंवई वातावरण के कारण वह पढ़-लिख नहीं सकी, मगर घर के काम-काज में दक्ष थी वह। गाय, भैंस को सानी गोतना...गोबर गोईठा, धान काटना, हल चलाना, जांता-ढेका यहाँ तक कि दूध भी दूह लेती थी वह। घर-गृहस्थी का कोई भी काम उससे अछूता नहीं था। कदाचित इसी कारण पशु-पुरुष की दृष्टि से ओझल थी। उसके शरीर पर साफ कपड़े नहीं रहते थे। प्रायः पसीने से लथपथ रहती थी वह। आकाश में हर समय बादल ही छाए रहे तो सूर्य और चन्द्रमा का सौन्दर्य प्रकट नहीं हो सकता। उसके लिए नभ का निरभ्र होना आवश्यक है। लेकिन कुछ शक्तियाँ ऐसी भी होती हैं, जिनकी दृष्टि जलधर को पारकर पीछे के दिव्यलोक को परख लेती हैं। ठाकुर मोहन सिंह ऐसी ही शक्ति थे।

मोहन सिंह जवार के गाँव के थे। पूरे जवार में उनकी तूती बोल रही थी। हट्टे-कट्टे...छः फीट के जवान! था कोई माई का लाल, जो उनसे मुकाबला कर सके? लाल देह ऐसी कि लगता था, जहाँ कहीं सींक गड़ा दें, वहीं से खून का फव्वारा निकल पड़ेगा। लोग कहते थे, मोहन सिंह के बाबूजी उनके लिए दो-दो भैंस किन दिए थे। दूनों के दूध अकेले पी जाते थे मोहन सिंह। सुबह-शाम दण्ड बैठकी करते। उनको कुश्ती सिखाने के लिए दो नेटआ भी रख दिए गए थे।

दैव संयोग से एक दिन मोहन सिंह भिखारी से मिलने आ रहे थे। डांड में पहलवानीकट लुंगी...छाती पर अधकटी गंजी...गले से ठेहुना तक लटकती हुई गमछी और हाथ में छः फुटा गोजी ठाकुर साहब की यही ड्रेस थी। मदमस्त गज की तरह जिधर से निकलते उधर से लोग हाथ उठाकर 'सलाम' करते। थोड़ी दूर जाकर वह इधर-उधर देखने लगे...जैसे किसी चीज की तलाश हो उन्हें। उनकी बेचैनी बढ़ने लगी। जब बर्दाश्त नहीं हुआ तो वहीं गली में दीवार की ओर मुँह करके बैठ गए।

कान पर जनेऊ रखने का ख्याल भी नहीं आया। काफी समय तक दोनों चउआ ऊपर उठाए और सर झुकाए बैठे रहे। मूत समाप्त होने का नाम नहीं ले रहा था।

किसी ने कहा नींद न जाने टूटी खाट, भूख न जाने झूठा भात और प्रेम न जाने जात-कुजात। ये लोकोक्तियाँ भले ही झूठी हो जाएँ पर मूतवास न जाने 'जगह-कुजगह' गलत नहीं होगा। शहर की किसी सड़क, किसी गली में राहगीरों को मूतते देखा जा सकता है। 'यहाँ पेशाब करना मना है', दीवार पर लिखा है, सम्भवतः इसलिए लोग वहाँ पेशाब करते हैं। हर शहर में 'जन सुविधाएँ' नहीं बनी हैं और जहाँ है, उसका उपयोग पैखाना के लिए किया जाता है। लेकिन देहात के गाँवों में, जब-जब इच्छा हो, मूता जा सकता है। दीवार की ओर मुँह कीजिए और सर्र-सर्र...।

मोहन सिंह जल्दबाजी में देखना भूल गए कि जहाँ बैठ रहे हैं, वहाँ जानवरों का चरन है और कोई लड़की उन्हें सानी गोत रही है। जब उठे तो उसकी आँखें नीची थीं पर होंठों पर एक मुस्कान कह रही थी 'मैंने सब कुछ देख लिया है।' मोहन सिंह एक खिलाड़ी इस भाव को ताड़ गए। एक शर्माई हुई हँसी अधर पर लाते हुए बोले

“तू भिखारी की बेटी है?”

“हाँ मालिक।”

“भिखारी घर में है?”

“हाँ...बुलाऊँ?”

“बुला दे।”

चरन पर बैठ गए मोहन सिंह। इनकी नजर काफी गहरी थी। उन्होंने परबतिया के ओझल सौन्दर्य को परख लिया।

“मालिक-मालिक...आप इहंवा काहे बइठे हैं मालिक।” सलाम करने के बाद भिखारी बोला “घाम हो गया है दालान में चलिए।” भिखारी मोहन सिंह की सेवा में चूकना नहीं चाहता था। वर्षों से उनका खेत जोत रहा था वह। इसी महीने खेतों की बंदोबस्ती होनी थी, यदि चूक गया तो...

“परबतिया! पानी ले आ मालिक के लिए।” वह चिल्लाया।

दालान में खटिया पर जो मैला-कुचैला बिछावन था उसे झाड़कर बिछाया भिखारी ने। मोहन सिंह बैठ गए। वह पंखा हिलाने लगा।

“लीजिए मालिक!” परबतिया पानी लेकर आई।

“अरे मुई! छुछे पानी लाई है। मालिक घामा में आए हैं। थोड़ा दही डालके सरबत ले आ।”

लोटा का जल रख चली गई वह। मोहन बाबू मुँह धोकर कुल्ला करने लगे।

गमछी से मुँह पोंछकर चारपाई पर लेट गए वह। गर्मी का मौसम, धूप तेज थी, पर ठाकुर साहब के शरीर से पसीना किसी और गर्मी के कारण छूट रहा था। लेटते

वक्त उनकी लुंगी इधर-उधर बिखर गई थी ताकि शीतल पवन उनके जिस्म को शीतल कर सके। भिखारी अभी भी पंखे से हवा कर रहा था। पहलवान की लंगोटी साफ दिख रही थी।

“मालिक! आज कइसे दरसन दिए?”

“भिखारी! एह साल खूब आम आया है। बेचा भी खूब, लेकिन पइसा अबही तक नहीं दिए...एही वास्ते आए हैं।”

“लीजिए मालिक सरबत!”

कुछ झेंपते हुए उठे वह। परबतिया ने सरबत का लोटा थमा दिया। इस समय परबतिया की ऊँगली उनकी ऊँगली से स्पर्श हो गई। मोहन सिंह की सारी पहलवानी इसी स्पर्श के कारण डिग गई थी। वह सरबत पीते रहे...मुँह से और कनखियों से भी। परबतिया चली गई।

“मालिक! आप तो देखिए रहे हैं जवान बेटी घर में बैठी है...महीनों से लड़का खोज रहा हूँ, घोर कलयुग आ गया है मालिक। लड़की का बाप कइसे जियेगा। जहंवे जाते हैं...आतना तिलक माँगता है कि का कहें। हम ठहरे मजूर आदमी आतना रूपइया कहंवा से लाएँगे? समझ में नहीं आता का करें? भगवान गरीब को बेटी काहे देता है?” कहते-कहते उसकी आँखें नम हो गईं। फिर वह भरति हुए स्वर में बोला

“हम काल्हिए आए हैं एही से देर हो गया। एक-दू दिन में पइसा पहुँचा देंगे।”

“भिखारी! तू हमरा के राखस समझ रहा है। पइसा के जल्दी नाहीं है।” गर्म तबे पर रोटी सेंकना ही बुद्धिमत्ता है।

“लेकिन दुख इ जानकर हो रहा है कि तू लोग हमको अपना दुसमन समझते हो इ बात हमरा से पहिले काहे नहीं बताया?” भिखारी की नब्ज पहचान गया था ठाकुर।

“कवन बात मालिक?”

“परबतिया की शादी की बात। हम जोग लड़िका देख के ठीक करा देते।”

“आपके नजर में कवनो लड़िका है?”

“हमार एगो चेला है, गाँव के। जब छोटा था, तभी से हमरा अखाड़ा में धूर चढ़ाता था। बढ़िया कुश्ती करता था। दू साल पहले मलेटरी में भरती हो गया। अबही कुँआर है वह और छुटिओ आया है। चलके देख लो। अगर लड़िका पसन आ जाय.. तो हम बिआह करा देंगे।”

“और तिलक?”

“भिखारी! तू लड़िका देख लो। बाकी काम हमारा है। ओकरे मजाल है कि तिलक माँगेगा। हमार चेला है। हमार घर से दुगो घर छोड़के ओकर मकान है। उ हमार बात नहीं उठाएगा। और जादा एने-ओने किया तो ओकरा झाड़ देंगे।”

भिखारी के लिए बाबू मोहन सिंह कलयुगी भगवान बन गए...परबतिया का विवाह सम्पन्न हो गया उनकी कृपा से वह भी एक कमाऊ लड़के से। इससे बड़ा भाग्य क्या हो सकता था भिखारी, परबतिया और नेऊरा के लिए?

भिखारी अति प्रसन्न था, परबतिया भी खुश थी। और नेऊरा के त जइसे 'परिये' मिल गई थी। मोहन सिंह ओकर गुरु थे पर उम्र में ज्यादा बड़े न थे। मुश्किल से पाँच वर्ष का अन्तर होगा। अतः दोनों में हँसी-ठट्ठा भी चलता था।

शादी के दस दिन बीत गए। मोहन सिंह ने जिस उद्देश्य से परबतिया का विवाह नेऊरा से कराया था उसकी पूर्ति नहीं हो पाई थी। वे चाहते थे कि नेऊरा की छुट्टी समाप्त होने से पूर्व परबतिया से अच्छी तरह जान-पहचान हो जाए। इसी लक्ष्य को ध्यान में रख उन्होंने नेऊरा से कहा “कारे नेऊरा! विआह करके हमरा के भुला गए?”

“नाहीं उस्ताद! अइसन कइसे हो सकत है।”

“नाहीं हो सकत है का, होइए गया। हम तोर बिआह खातीर अतना किए लेकिन तू एगो पार्टियो नहीं दिया?”

“आप जब कहें हम तैयार हैं।”

“शुभ काम में देरी का आजे रात हो जाय, माल-उल है न?”

नेऊरा जाकर मुर्गा खरीद लाया। परबतिया ने बड़े चाव से भोजन बनाया और रात में ठाकुर साहब और नेऊरा उसी के कमरे में बैठ गए।

ठाकुर साहब को पता था कि नेऊरा जब पीता है, खूब पीता है और कभी-कभी आउट भी हो जाता है और जब आउट होता है तो बहकता नहीं, चुपचाप सो जाता है। आज उन्होंने इसी उद्देश्य से उसे पिलाना आरम्भ किया।

परबतिया वहीं पर बैठी नमकीन और जल का प्रबन्ध करती रही। जब उसने देखा कि नेऊरा की आँखें लाल होने लगीं तब रोकना चाहा। परन्तु पीने वाले को कौन रोक सकता है। नेऊरा पीता रहा, ठाकुर साहब ललकारते रहे। परबतिया देख रही थी कि वह नेऊरा को पिला रहे हैं परन्तु स्वयं सिर्फ साथ दे रहे हैं दिखाने के लिए, उसे शक होने लगा।

रात गहराने लगी। वह समझ नहीं पा रही थी कि क्या करे? वे लोग भोजन करने बैठे। पर नेऊरा को होश नहीं था, खाते-खाते चारपाई पर लुढ़क गया। मोहन सिंह जगाकर जाँच कर लिए, वह उठने के काबिल नहीं था।

“परबतिया! तू भी खा ले।” वे बोले।

“आप खाकर उठिये तो खा लूँगी मालिक।”

“हमसे सरमा रही है तू!” वह उठकर कमरे का दरवाजा बन्द कर दिए। परबतिया की छाती धक्-धक् करने लगी। किसी को जानती तो नहीं! किसका नाम लेकर

चिल्लाए कौन आएगा उसे बचाने? जब आपन मरद अइसे पड़ा है, किसका भरोसा करे वह...मन ही मन भगवान को गोहराने लगी।

“इ का कर रहे हैं मालिक।”

“परबतिया! इ साला को देख रही है न, कैसे चिआर के सूत गया। जब इहाँ से जाएगा तो साल भर के बाद छुट्टी आएगा। तब तक अकेले कइसे रहेगी तू। हमहीं तोर देखभाल करेंगे एह से तू डर मत। तोर बिआह एकरा से जरूर हुआ है लेकिन असली मरद हमहीं रहेंगे...आ हमरे पास बैठ।”

परबतिया की स्थिति पिंजड़े में बन्द तोते की हो गई जिसके पास बिल्लार पहुँचकर उसकी गर्दन मरोड़ना चाहता है। जब तक वह पिंजड़े के बाहर है सम्भवतः तोता पर पटकता रहे। यदि किसी तरह वह पिंजड़े के अन्दर घुस उसका दरवाजा अन्दर से बन्द कर दे तो? परबतिया की स्थिति उससे कम दयनीय नहीं थी। यदि वह चिल्लाती है तो भी इज्जत जाती है, नहीं चिल्लाती है तो भी। वह कुछ फैसला लेना ही चाहती थी कि उस्ताद ने अन्तिम वार कर दिया “परबतिया! एतना समझ ले। आज तू बच सकती है, लेकिन नेऊरा के जाने के बाद कौन बचाएगा तुझे...और कब तक। एह गाँव में कवना ससुर की हिम्मत है कि खोंख दे और तोर बाप जिनगी भर हमार खेत जोत के पेट भरता रहा। जदि खेत छोड़ा लिया तो ओकर का हाल होगा...समझ ले फिर कवनों काम करना। हमार बात मानोगी तो फायदे में रहोगी। जिनगी भर सुख मिलेगा और दोसर कोई तोरा पर आँखों उठा के नाहीं देखेगा।”

परबतिया तोते की तरह तड़पती रही और बिल्लार उसे नोचता रहा। यह क्रम जो चल पड़ा तो चल पड़ा। नेऊरा की छुट्टी समाप्त हो गई। वह चला गया और पीछे छोड़ गया एक बिल्लार भयानक बिल्लार।

समय के साथ परबतिया ने समझौता कर लिया। इसमें अधिक सहयोग उसकी उम्र का था। उस उम्र में जब भौतिक वस्तुएँ अच्छी लगती हैं मोहन सिंह का बलिष्ठ शरीर उसे बहुत सुख दे रहा था, जो नेऊरा को देना था। मोहन सिंह का अधिकांश वक्त उसी के साथ व्यतीत होता। गाँववालों ने उन्हें तरह-तरह की उपाधियों से विभूषित कर दिया था।

साल बीत गए। धीरे-धीरे गाँव भर में बात फैल गई। हाँ, कोई अनजान था तो परबतिया और मोहन बाबू। ठाकुर साहब को विश्वास था कि लोग उसे नेऊरा का गुरु समझते हैं, इस नाते कोई उनके चरित्र पर ऊँगली नहीं उठाएगा। परबतिया इस विषय में ज्यादा माथा-पेची नहीं करती, जरूरत ही क्या थी। वह तो बनी ही थी, ठाकुरों की सेवा के लिए और थोड़ा बहुत सुख उसे मिल ही जाता था।

मगर...उसी की जाति के कुछ नवयुवक थे। उन्हें उसका सुख भा नहीं रहा था। इसमें वे अपनी जाति-समाज यहाँ तक कि स्वयं का अपमान महसूस कर रहे थे। “हर

चीज की एक सीमा होती है। जब इनकी जमींदारी होगी, तब होगी। अपनी इज्जत से क्यों किसी को खेलने दें? इज्जत बड़ी-छोटी नहीं होती। इज्जत किसी की जागीर भी नहीं होती। इज्जत सिर्फ इज्जत होती है और उससे खेलने का हक किसी को नहीं, चाहे वह गाँव के ठाकुर मोहन सिंह की क्यों न हों।”

वे निम्न जाति के थे, पर थे नवयुवक। उनमें स्वतन्त्र भारत का लहू दौड़ रहा था। कुछ दिनों तक वे इस जघन्य कुकृत्य को देखते रहे और मन-ही-मन परिणाम सोचते रहे। आग की छोटी सी चिंगारी ‘घूर’ में लग चुकी थी। उसे आवश्यकता थी, धधकाने की। पर अभी पवन तेज नहीं था।

कुछ दिनों के पश्चात् नेऊरा छुट्टी लेकर गाँव आया। लड़कों ने उसे सारी बातें बताईं, पर वह असहाय था...क्योंकि वह स्वयं भी उतना ही दोषी था, जितना मोहन सिंह। वह उनके सम्बन्ध से अनभिज्ञ नहीं था। मगर जब युवकों ने उसकी मर्दानगी पर थू-थू की तो उसका सोया पौरुष जागा। एक दिन उसने परबतिया से पूछा - “परबतिया! तू उस्ताद से प्यार करती है?”

“हमार मरद तू है कि उस्ताद?”

“तो फिर तू उसके साथ रात-दिन क्यों रहती है।”

“इ सवाल तू पूछता है अरे जवन रात तू पीकर उस्ताद के हाथ हमरा के सौंप दिए, उ रात भूला गया का...दारू पीके जोरू को लीलाम कर दिया तू और आज पूछते हो कि हम उस्ताद से पिआर करत है? तू मरद था तब काहें नहीं ओही रात ओकरा के जबह कर दिया? हम जगाते-जगाते थक गए और तू फोंफ काटता रहा। कितने उ राखस तोरा सामने हमको गीध की तरह नोचता रहा...और तू बेखबर पड़ा रहा। अरे मउगड़ा! तू सिपाही कैसे बन गया? जबन मरद अपनी मेहरारू क राखा नहीं कर सकत है उ दुशमन से का लड़ेगा? तुम्हारे जैसे की बीवी बनने से अच्छा होता रांड बन जाती...तब कोई कहता तो नहीं...!” वह रोने लगी।

“परबतिया!” वह चुप कराते हुए बोला “अब जो हो गया सो हो गया लेकिन अब हम कुछ और सोच रहे हैं बोल तू साथ देगी या नहीं?”

“मरदों वाली बात करोगे तो जरूर साथ दूँगी।”

अन्धकार छा गया। आज ठाकुर साहब का विशेष न्यौता था। मुर्गा और अंग्रेजी शराब...एक बार पुनः वहीं बातें दोहराई जाने लगीं। परबतिया उन्हें विशेष प्रेम जता रही थी आज। नेऊरा के सामने भी वह मोहन सिंह की गोद में बैठ कर उन्हें पिला रही थी...उन्मत्त हो कभी चूमने भी लगती थी। अंक में बैठे-बैठे उसने अनुभव किया कुछ चुभ रहा है। मोहन बाबू मोहित हो गए कुछ अधिक ही।

बारह बज गए...मोहन सिंह को मृतवास लगी, जोर से आँगन की मोरी पर खड़े-खड़े मूतने लगे वे...उसी समय परबतिया चिल्लाई “चोर-चोर डाकू रे डाकू।”

बाहर खड़े सभी युवक इसी संकेत की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे घर में घुस ठाकुर मोहन सिंह के ऊपर भाला-गंडासा और लाठी से प्रहार करने लगे। ठाकुर साहब कुछ समय तक खड़े रहे, झेलने का प्रयत्न करते रहे पर कब तक अन्ततः गिर पड़े। उनके ऊपर प्रहार होता रहा जब तक उनका सिर लुढ़क नहीं गया। उसी समय एक लड़के ने जोर से आवाज दी “राम नाम सत् है।”

पीछे से सबने उसे दुहराया...उस अँधेरे में न जाने कहाँ से प्रतिध्वनि लौट रही थी “राम नाम सत् है।”

कृष्ण गोपाल

छमिया

बचपन में गाँव की पाठशाला में जैसे तो अनेक सहपाठी और मित्र थे, लेकिन इनमें सबसे अन्तरंग और घनिष्ठ दिलीप ही था। वह गाँव के जमींदार ठाकुर रिपुदमन सिंह का इकलौता और प्यारा बेटा था। विद्यालय में छोटे ठाकुर यानि मेरे मित्र दिलीप का अच्छा-खासा दबदबा था। रोज सुबह वह अपनी घोड़ी पर बैठकर पाठशाला आता था। उसके साथ एक-दो नौकर भी होते थे।

दिलीप के पिता गाँव में सबसे धनी व्यक्ति थे। उनकी हवेली की शान-शौकत के चर्चे दूर-दराज के गाँवों तक होते थे। सुख-सुविधा के सभी साधन हवेली में उपलब्ध थे। ऊँची-ऊँची किलेनुमा दीवारें, नौकर-चाकर, घोड़े और हाथी। हवेली की शान निराली थी।

गाँव में प्रायः चर्चा होती रहती थी कि जनपद के अंग्रेज कलक्टर साहब से उनकी बड़ी घनिष्ठता थी। सम्भवतः इसी कारण कस्बे का थानेदार प्रायः हवेली में हाजिरी देने आया करता था।

लेकिन दिलीप में अपने पिता के बड़प्पन का अहंकार नहीं था। वह मिलनसार और हँसमुख लड़का था। वह मुझे प्रायः अपनी हवेली में ले जाता था। मैं उसका मित्र जो ठहरा। शायद इसका एक कारण और भी था। मैं पढ़ाई-लिखाई में अच्छा था। अतः दिलीप को अपना गृहकार्य पूरा करने में मेरी सहायता प्रायः बनी रहती थी।

हवेली में कभी-कभी दिलीप के पिता ठाकुर रिपुदमन सिंह जी से भी भेंट हो जाती थी। उनका बाह्य व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था। गोरा रंग, ऊँचा कद, हृष्ट-पुष्ट शरीर। काली और घनी मूँछों से उनका चेहरा बड़ा रोबीला लगता था। उन्हें अपने सूर्यवंशी होने पर बड़ा गर्व था। वे स्वयं को आज भी प्रजापालक और धर्म का रक्षक मानते थे। यह बात दीगर है कि वे जनपद के अंग्रेज कलक्टर को झुककर सलामी देते थे। हवेली के सबसे बड़े कमरे में, जिसे 'दरबार हाल' कहा जाता था, 'किंग जार्ज पंचम' की एक बहुत बड़ी फोटो प्रमुखता से टंगी थी और उस पर माला भी पड़ी रहती थी।

कस्बे में होने वाले सभी धार्मिक आयोजनों के वे प्रमुख संरक्षक थे। दशहरा, रामनवमी, जन्माष्टमी, होली और दीपावली आदि सभी त्यौहार उन्हीं के नेतृत्व में मनाए जाते थे।

हवेली में नौकर-चाकरों और बेगारों की बड़ी फौज थी। विभिन्न कामों के लिए अलग-अलग नौकर। पानी भरने के लिए बाँके कहार, रसोईघर में पं. काशीनाथ मिश्रा और उनके अनेक सहायक, दाढ़ी और बालों के लिए रामू नाई, घुड़साल की देख-रेख के लिए करीम खाँ और न जाने कितने और।

हवेली के बाहरी भाग की सफाई का काम छमिया के जिम्मे था। छमिया अछूत थी और हवेली में उसका प्रवेश वर्जित था। जब वह दिलीप और मेरे रास्ते में आ जाती तो बेचारी एक ओर सिकुड़कर खड़ी हो जाती। उसे भय रहता था कि कहीं उसकी परछाई छोटे ठाकुर पर न पड़ जाए। उसके लिए हमें स्पर्श करने का तो प्रश्न ही नहीं था।

छमिया बीस-बाईस बरस की सुन्दर युवती थी। गोरा रंग, छरहरा शरीर, हिरणी जैसी काली और गहरी आँखें। मुझे जैसी कम आयु के बालक को भी वह आकर्षक लगती थी।

एक बार दिलीप कई दिनों तक विद्यालय नहीं आया। उसके न आने से मेरा मन भी विद्यालय में अच्छी तरह नहीं लग रहा था। विद्यालय की छुट्टी के बाद एक दिन मैं उसका हाल-चाल मालूम करने हवेली की ओर चल पड़ा।

हवेली के सभी लोग मुझे अच्छी तरह जानते थे। बेरोकटोक मैं दिलीप के कमरे तक पहुँच गया। लेकिन वह अपने कमरे में नहीं था। मैंने सोचा वह किसी दूसरे कमरे में होगा। उसे ढूँढ़ते मैं हवेली के उस भाग में पहुँच गया जहाँ उसके पिता जी का विशाल शयनकक्ष था। अन्दर से किसी के खिलखिलाकर हँसने की धीमी आवाज आ रही थी।

मैंने अनुमान लगाया कि दिलीप यहीं अपने पिता जी के साथ होगा। मैंने दरवाजा खोला, लेकिन जैसे ही मैंने अपना पैर कक्ष के गलीचे पर रखा मैं हतप्रभ रह गया। छमिया ठाकुर रिपुदमन सिंह की गोद में बैठी थी। मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। मैं मुड़कर कक्ष से बाहर निकला और उल्टे पाँव घर की तरफ दौड़ पड़ा।

पारसनाथ

छितनुआ

रात की कालिमा बेपर्दा नहीं हुई थी। क्यों होती बेपर्दा? सूरज को तो अभी आना ही नहीं था। निडर, बेधड़क एक जलता हुआ आग का गोला। रात्रि तले होनेवाले कलुषित कर्मों का जायजा उसे थोड़े ही लेना है। डर किस बात का है? वह डरेगा भी तो क्यों? सिर्फ सुबह न होती। इतना ही नहीं हर सुबह उसे जाकर माँ-बाप को जाकर पैसे देने होते हैं। छितनुआ उद्विग्न-सा उठ खड़ा हुआ, एक चौकन्नी नजर चारों तरफ घुमाते हुए उसने भीड़ और गहमागहमी से अलग, खेमना पानवाले से बीड़ी माँग कर सुलगा ली और बीड़ी का कश लेने लगा। गोल-गोल धुआँ ऊपर की ओर छोड़ा, जो प्लेटफार्म की छत और मरकरी ट्यूबलाईट से टकराकर लौट गया और आहिस्ता-आहिस्ता उसी भीड़ भरे प्लेटफार्म पर पसर गया। गहमागहमी, होहल्ला, माइक्रोफोन से आती एनाउन्सर की आवाज, सबने मिलजुलकर एक अजूबा दृश्य खड़ा कर दिया।

मैं मन ही मन कुढ़ता हूँ, सोचता हूँ 'रौंदते रहोगे इस रात को अपने कदमों तले।' एक से एक सुंदर छैलछबीली दुल्हनी की तरह फुदक रही है। उनके हावभाव, चलने के ढंग ऐसे थे कि अपने पैरों तले मसल कर रख देंगी। क्या मजाल कि उनके झुण्ड के बीच से कोई निकले और बेदाग बच जाए?

हाबड़ा स्टेशन से आसनसोल, बर्दमान तक आती-जाती लोकल ट्रेनों में खचाखच भीड़ हो जाती है। कामकाजी महिलाएँ, लोकल ट्रेन के अलावा भी पटना, दिल्ली, पंजाब, अमृतसर और जम्मूतवी जाने वाली ट्रेनों में जगह ले लेती हैं। कुछ समय के लिए लांग जरनी वालों को भी तकलीफें उठानी पड़ती हैं। कभी-कभी तो इन कामकाजी महिलाओं के सामने रिजर्वेशन के बावजूद खड़े होकर सफर करने की नौबत आ जाती है और यात्री चुपचाप सह लेते हैं।

छितनुआ खेमना पान वाले के साथ चुहलबाजी करते हुए प्लेटफार्म पर फिर मेरे बगल में आ गया, "आमछू...। चिनिया बदाम छू। चिनिया बदाम छू...। साला सिर्फ रुपया कमाता है...। हिश! स्सा!" छितनुआ ने खेमना को एक धक्का दिया था। वह

पान का खोंमचा संभालते हुए अपने आपको गिरने से बचा गया था। वह छितनुआ से उम्र में तीन-चार साल बड़ा है।

“...स्साला...। चमरवा बेटा! स्साला बदमाश हो गेल ही रे। ...धी चोदा... बाला...। सुझहउ...न रे। जब देखो तब जमानी के छाव देखामही रे!” खेमना तनिक गुस्से से बोला था।

“स्साला! बोलन में...! आमछू...! आमछू...! स्साला हीं...हीं...हीं...कुरुमचो... अरे! तोहर मइया बप्पा के ठिकाना हऊ?” प्रतिउत्तर में छितनुआ भी आँखें तरेरकर बोला था।

“स्साला! आजकल हरिजनवे के चलती हऊ। क्यों बाबूजी? है न ऐसी बात।” खेमना उस भीड़ में मेरी तरफ मुखातिब होकर बोला था, जैसे मुझे ही बोल रहा है। मैंने जवाब में सिर्फ मुस्करा दिया था। फिर सोचने पर मजबूर हुआ हूँ। इसकी तरह कितनी जिन्दगियाँ फुटपाथ पर जन्मती, जवान होती और मर जाती हैं। बेनामी माँ-बाप की गोद भरते हुए, सयाने होने पर ये फिसल कर अलग हो जाते हैं। इनके बीच कोई बन्धन नहीं। फुटपाथी जिन्दगी, प्रीमिक्सअप। कोई पूछनेवाला नहीं। कोई कहने-सुनने वाला नहीं! बन्धनमुक्त। मार्डन लोगों के साथ भी तो वही बात है। वे भी तो प्रीमिक्सअप आजकल ही पसन्द करते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि उनका सब कुछ बन्द कमरे में होता है, इनका खुले आकाश के नीचे होता है। वे अपनी हवस व्हिस्की, ब्राण्डी के नशे में धुत होकर नरम गद्दे पर पूरी करते हैं और ये फुटपाथी लोग चित्त लेटे खुले आसमान के नीचे कच्ची दारू के भभके के साथ अपनी हवस पूरी करते हैं।

दानापुर एक्सप्रेस हावड़ा स्टेशन पर आकर लगी थी। लोग अपने-अपने कम्पार्टमेंट की ओर भाग-दौड़ करने लगे थे। एनाउन्सर ने सतर्क किया था, “यात्रीगण ध्यान दें, दानापुर एक्सप्रेस गाड़ी जो आसनसोल, बर्दमान, झरिया होते हुए दानापुर को जाएगी, प्लेटफार्म नं. दस पर खड़ी है। जिन यात्रियों को आसनसोल, बर्दमान, झरिया, मोकामा, पटना की तरफ सफर करना है वे यात्री प्लेटफॉर्म नं. दस पर खड़ी गाड़ी में अपना स्थान ग्रहण करें।” बार-बार यही आवाज आ रही थी और भीड़ का हुजूम एक अजूबा शक्ल लेता आ रहा था। देह से देह छिल रही थी।

हावड़ा स्टेशन से गाड़ी खुली थी। सात पैंतालिस में खुलनेवाली यह डाउन ट्रेन थी। गाड़ी खुली नहीं थी कि अपने कंधों पर बक्सा लटकाए छितनुआ मेरे वाले प्लेटफार्म में आ गया था। गाड़ी समानान्तर दिशा में तेज रफ तार से भागी जा रही थी। गाड़ी तक छोड़ने मेरा छोटा साला श्याम आया था। इस बार उसने मुझे यार-दोस्तों के यहाँ ठहरने का मौका नहीं दिया।

मुझे अच्छी तरह याद है। व्हिस्की पीते-पीते कवि जी के घर तक साहनी अपनी मोटर साइकिल से ले गया था। वहाँ भी महफिल खूब जमी थी। एक बोतल रम में

अकेले गटक गया था। कवि जी के श्वसुर जी डिफेंस में ऑफिसर हैं। आज भी महफिल उनकी तरफ से थी। देर रात तक पीता रहा था। उस रात की बातें जब भी याद हो आती हैं, शर्मिन्दगी से सिर झुक जाता है। नशे में धुत्त होने की वजह से मैंने बिस्तर गीला कर दिया था। सुबह-सुबह कवि जी के श्वसुर ने बिस्तर धूप में रख दिया था। वे मुझे देखकर मुस्कराए थे। कवि जी के छोटे भाई ने नहाने-धोने का इन्तजाम कर दिया था।

नहाने-धोने के बाद थोड़ा-थोड़ा मूड ठीक हुआ था। नमकीन लेने के बाद एक पेग रम दी गई थी ताकि पिछले दिन की खुमारी जाती रहे। साहनी पीने वालों में अच्छा मित्र बन गया था। अकेलेपन की मनहूसियत को तोड़ता हुआ मैं खिड़की के पार वाले अँधेरे में खो गया था। तेज हवा का झोंका बदन में एक सिरहन पैदा कर रहा था। मेरा ध्यान तब टूटा, जब टी. टी. ने टिकट तलब की। मैंने अन्यमनस्क भाव से अपनी कमीज की जेब से टिकट निकालकर दिखा दिया था। छितनुआ सामने किनारे बैठे मुसाफिर के जूतों में पॉलिश कर रहा था। बोरियत दूर करने के लिए मैंने एक सिगरेट सुलगा ली थी।

ठक्...ठक् खट-खट की आवाज के साथ रह-रहकर सीटी बजाती ट्रेन चल रही थी अपने गंतव्य की ओर...

कभी-कभी मेरा सोचना भी अपने आप में अहमियत रखता है कि किस तरह पिछले साल कलकत्ता जाकर रविदास जी की मूर्ति के लिए लोगों से चिरौरी की और इस साल उसी मूर्ति की मनाही से मेरा दिल कचोट उठा था। हरिराम और श्रीराम की बेहदगी ने मुझे ऐसा करने पर मजबूर कर दिया था। अफसरों के साथ मेरा उठना-बैठना उन लोगों को नागवार गुजरा था। हरिराम और श्रीराम दोनों ने ट्रेनिंग पा रहे विद्यार्थियों को धोखा दिया था, मुझे धोखा दिया था, सरकार को धोखा दिया था। इन्स्टीच्यूट बंद हो गया था। लाखों-लाख रुपए दोनों बेईमानों ने गटक लिए थे। उन्होंने मुझे अंगूठा दिखा दिया था। सूर्यप्रकाश की तिकड़मबाजी चल गई थी और मैंने स्वाभिमान के लिए वीरानगी में अपना प्रभुत्व जमा लिया था। मुझे अपनी जगह छोड़नी पड़ी थी। इससे बहुतों को खुशी और बहुतों को गम हुआ था। हरिराम और श्रीराम अपनी चोर निगाहों से देखते रह गए थे। उन लोगों की मंशा पूरी हो गई थी। हब्शी और जंगली की तरह उनका काला-कलूटा चेहरा खिल गया था। उसने एक जोर का ठहाका लगाया था। आकाश मानो गूँज गया था और मैं तमतमाया मेनगेट से निकलकर भीड़ में समा गया था। मुझे ऐसा लगा जैसे मैं अतीत के सपनों में खो गया हूँ। गाड़ी की रफ्तार कम हो गई थी। एक झटके के साथ गाड़ी स्टेशन पर रुकी थी। हॉकरों की बोली

“चाय गर्म! झालमूट्टी! गर्म सिंघाड़ा! लिट्टी पानी! केला! गर्म पूड़ी है! पान-बीड़ी! सिगरेट!”

मैं अपनी पहली स्थिति में लौट गया था। बगल में बैठा पैसेंजर ऊँघकर मेरे ऊपर गिर जाया करता था। रात्रि के दस बजे थे। वेंडर ने ही बताया था कि गाड़ी बर्दमान में रूकी है। बर्दमान जंक्शन! लोग उतर-चढ़ रहे थे। कम्पार्टमेंट के लोगों में हरकत हुई थी। वह जवान औरत कब की जा चुकी थी। मैं बगल वाले को कहकर प्लेटफार्म पर आ गया था। पूड़ी-भाजी खाकर और नल से पानी पीकर मैं इत्मिनान हुआ था। चाय वाले ने मिट्टी के कोरबा में चाय बढ़ा दी थी। चाय के बाद एक पैकेट फिल्टर सिगरेट खरीद कर मैं वापस अपने कम्पार्टमेंट में आ गया था। बत्ती की मद्धिम रोशनी में कुछ देर तक फिल्मी मैग्जीन के पन्ने उलटता-पलटता रहा। चश्मे के भीतर से भी सिर्फ बड़े-बड़े अक्षरों को ही पढ़ पाता था। नींद आने लगी थी। सोचा अपने बर्थ पर ऊपर चला जाऊँ किन्तु नीचे के लोग बैठे ही थे। इसलिए कुछ देर और इन्तजार करना पड़ा।

खेमना पानवाला और छितनुआ घूम-घाम कर मेरे ही कम्पार्टमेंट में आ गए थे। दोनों शान्त थे। न पहले की तरह चुहलबाजी और न ही एक दूसरे के साथ गाली-गलौच। इत्मिनान से दोनों खड़े आपस में हँस-बतिया रहे थे।

गाड़ी खुली और मैं ऊपर वाले बर्थ पर चला गया। सभी अपने-अपने बिस्तर ठीक करने लगे थे। छितनुआ और खेमना नीचे के फर्श पर अंगोछा बिछाकर बैठ गए थे। ऐसा लगा दो जुड़वाँ भाई आपस में सटे हुए बैठे झपकी ले रहे हैं। चाह कर भी वे अपने को अलग नहीं कर पाए थे। एक दूसरे के प्रति न तिरस्कार, न घृणा और न जलन। कितनी आत्मीयता दीख रही थी अब इन दोनों के बीच। यह देख मेरी आँखें नम हो आई थीं। कब नींद आ गई पता नहीं चला।

सवेरा हो गया था। गाड़ी जसीडीह स्टेशन पर रूकी थी। बाथरूम जाने के लिए लोग कतारों में खड़े थे। मैं पहले ही दिशा-फरागत हो आया था, इसीलिए मुँह-हाथ धोकर चाय ली थी। प्लेटफार्म पर भीड़ काफी थी। बगल के प्लेटफार्म के किनारे डाउन ट्रेन लगी थी। भीड़ होना स्वाभाविक था। खेमना, छितनुआ कभी बतरस कभी हथरस करते प्लेटफार्म की भीड़ के किसी व्यक्ति को धक्का देते, तो कभी माफी माँगते बड़े जा रहे थे। उनका अल्हड़पन कितना बड़बोला, कितना बदमिजाज लगा था मुझे, लेकिन उनका हँसोड़ होना मुझे अच्छा लगा था। गाड़ी सीटी देकर आहिस्ता-आहिस्ता खिसकने लगी थी। खेमना दूसरे और छितनुआ मेरे डिब्बे में फिर आ गया था।

मैं सुबह का अखबार देखने लगा था। आज भी चर्चा थी कश्मीर की। बलात्कार, दलितों की सामूहिक हत्याएँ। यही तो रोज-रोज पढ़ने को मिलता था अखबारों के पन्नों में। मैं अखबार उलटता-पलटता रहा था। अपनी नजर से देख भर लिया था। आगे फिर सोचता हूँ “खेमना फुटपाथ पर ही जन्मा होगा, तो छितनुआ किसी झोंपड़ी में! गरीबी के सलीब पर टंगे होंगे माँ-बाप! इसीलिए तो छटपटाहट है। सुबह आते-आते

घर पहुँचने की चिन्ता रहती है छितनुआ को। खेमना, निफिकरा, निठल्ला तन्हा-तन्हा है। हो सकता है उसने अपने माँ-बाप को छोड़ दिया हो या उसके माँ-बाप ने ही उसे छोड़ दिया हो, दोनों के जीवन के पलों, क्षणों में कोई खास अन्तर तो लगता नहीं है।”

मेरा ध्यान जब टूटा जब छितनुआ ने कहा, “क्यों बाबूजी? चप्पल में पालिश कर दूँ? एकदम नया की तरह चमका दूँगा...क्रीम पॉलिश...!”

मैं थोड़ा मुस्कराया और हाँ कर दिया था। छितनुआ तेजी से ब्रश चला रहा था और गुनगुना भी रहा था, “बाबू! बूट पालिश।”

मैं फिर सोचने लगा हूँ, “लाखों-करोड़ों होंगे ऐसे बाल-मजदूर जिनकी जिन्दगी खेमना और छितनुआ से भी बदतर होगी। होटलों में प्लेट धोते, गन्दे कपड़ों में निःसहाय से भीख माँगते, सड़कों पर पत्थर तोड़ते, कालीन बुनते, मुसाफिरों का माल-असबाब ढोते। कभी स्टेशनों पर, कभी बस स्टेंडों पर आए दिन देखने को मिलते ही हैं। उनकी भी तो जिन्दगियाँ बहुत सारे छितनुओं, खेमनाओं की तरह ही हैं। कौन किसे देखता है? कौन किसे पूछता है?” मेरे जहन में ऐसे सवालों के अनगिनत गुच्छे एक साथ पनप गए और मैं तिलमिला कर रह गया। छितनुआ ने वाकई मेरे चप्पलों को नया रूप दे दिया था। ऐसा लगा, उस चमक में छितनुआ का खिला चेहरा, उसके आत्मतोष के भाव एक साथ उभरे थे।

असंख्य छितनुओं के रूप...कहीं कल-कारखानों में मेहनत-मशक्कत करते, कहीं होटलों में प्लेटें धोते, कहीं ईंट-पत्थरों को ढोते...मैं यकायक अनेक छितनुओं से घिर गया था। अतीत और वर्तमान से अलग छिटक कर बलात् भविष्य के एकाकीपन में धँसता चला गया मैं। छितनुआ ने ही मौन तोड़ा था। वह मंद-मंद मुस्करा रहा था। ध्यान टूटते ही मैंने उसकी तरफ एक रुपया बढ़ा दिया था। चलते-चलते उसने पूछा था, “क्यों बाबूजी आप पटना जाएँगे?”

“क्यों तुम्हें कैसे पता चला कि मुझे पटना जाना है?” मैंने प्रश्न का जवाब प्रश्न में ही दिया था।

“हाँ बाबूजी! हम भी वहीं के हैं।”

वह चुप हो गया था। मेरा संक्षिप्त उत्तर था, “मैं भी वहीं का हूँ।”

फिर उसने मेरा नाम और मोहल्ले का नाम पूछा। बताने पर वह काफी आशान्वित हुआ था। वह ललक कर बोला था

“तब तो पड़ोसी हैं बाबूजी!” बातों का सिलसिला जारी रखते हुए उसने कहा

“आपके मकान के आगे वाले घर में मैं और खेमना रहते हैं। वह गली के बगल में मुँह बोली मौसी के यहाँ रहता है। उसका इस दुनिया में कोई नहीं...कोई नहीं बाबूजी। मेरे माता-पिता हैं, जो बूढ़े हो चुके हैं। मेरे सिवा उनका कोई नहीं।” वह भावुक हो उठा था। उसकी आँखें नम हो गई थीं।

दिन के ग्यारह बजे थे। गाड़ी पटना जंक्शन पर रुकी थी। मुसाफिर उतरने लगे थे। कुलियों के झुंड एक-एक कर कम्पार्टमेंट में घुसे थे। उनकी नजरें मुसाफिरों के असबाब पर थीं। वे रट लगा रहे थे

“बाबू! कुली! ...बाबू!”

भीड़ आगे की ओर बढ़ी जा रही थी। मैं भी गाड़ी से उतरा था। छितनुआ और खेमना भी सीढ़ियाँ पारकर बाहर आ गए थे। छितनुआ ने फिर छेड़खानी की थी

“...अरे...! चमरवा...रे! स्साला! अपने बीड़ी धुंकहे आउर हमारा ललचामहे...! ही ही ही ही! स्साला! कुरूमचो!”

दलित मन के भीतर झाँकते हुए मैं रिक्शे पर चढ़ गया। रिक्शे पर चढ़े-चढ़े ही मैंने हनुमान मंदिर के सामने बलात् सिर झुका दिया। गगनचुंबी गुंबज निश्चल खड़ा है। हनुमान जी पर आँखें टिकी हैं। यह देख मुझे लगा मेरे जेहन में हजारों, लाखों, करोड़ों छितनुआ भन्ना उठे हैं ब्राह्मणवादी व्यवस्था से जले-कटे जिसे बिना बाप का बेटा, चमरवा, चमरवा कहकर पुकारता है। अपनी तेज रफ्तार में रिक्शा भागा जा रहा है अपने गंतव्य की ओर!

श्रवण कुमार

धब्बा

डिब्बों में लोग इस तरह टुँसे पड़े थे कि लगता था हम गाड़ी पर चढ़ नहीं पाएँगे।

आखिर एक डिब्बे में थोड़ी सी जगह दिखी, तो हम दूसरों को रौंदते से आगे बढ़ने लगे। लेकिन हम ज्यादा बढ़ भी न पाए, क्योंकि दूसरे केबिन के पास हमें एक ने आगाह किया संभल के टट्टी है! वाकई, किसी के पाँव तले कुचले जाने से वह जगह बेहद गंदी दिख रही थी। फिर भी बैठने वाले नाक को कपड़े से ढाँपे, मुँह दूसरी तरफ घुमाए, वहीं पास की सीटों पर बैठे थे।

हमारी मजबूरी थी। हम केबिन में बर्थों के बीच की जगह में खड़े हो गए।

थोड़ी देर खड़े रहे तो एक बुढ़िया ने खुद ही कहा “यहाँ बैठ जाओ।” और वह थोड़ा-सा सरक गई। उसके सामने वाली बर्थ पर एक और बुढ़िया बैठी थी। वह भी थोड़ा-सा सरक गई जिससे हम दोनों को आमने-सामने बैठने की जगह मिल गई।

बैठ गए तो गौर किया कि मेरे साथी की बगल में बैठी बुढ़िया कुछ अजीब सी दिख रही है। कहाँ तो मेरे सूट-नेकटाई-धारी साथी का भरभराया शरीर और कहाँ उस बुढ़िया की सिकुड़ी-सी, कीचट हुई, गट्ठरी सी काया! और तो और उसके चेहरे की खाल इस कदर खिंची हुई थी कि आसानी से यह कहना भी मुश्किल था कि वह किसी उम्रयाफता का चेहरा है या किसी बच्ची का। मेरी बगल में बैठी बुढ़िया भी किसी मायने में दूसरी बुढ़िया से ज्यादा तन्दुरूस्त न थी, पर उसकी खाल उस तरह खिंची हुई नहीं थी।

मेरी वाली बर्थ पर, मुझ से थोड़ा हटकर, एक जवान औरत भी बैठी थी जिसके ऐन सामने एक जवान आदमी बैठा था। वे किसी न किसी बात को लेकर आपस में ठट्ठा करने लगते।

मेरे साथी ने सहज ही उस औरत से उसके बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर ली और फिर वह उसी सहज ढंग से अपनी बगल में बैठी बुढ़िया से भी बतियाने लगा।

“कहाँ जा रही हो?”

“हाथरस!”

“वहाँ क्या घर है?”

“नहीं, काम के लिए।”

“कैसा काम?”

“क्लेसर पर?”

‘क्लेसर’ से उसकी मुराद ‘केन क्रशर’ से थी। यह शब्द मैंने उसी दिन अपने साथी के गाँव में ही सीखा था। वहाँ ऐसे कई ‘क्लेसर’ थे। मैं साथी के साथ उसके गाँव से ही लौट रहा था।

“क्या तुम्हारे अपने यहाँ क्लेसर पर काम नहीं? लोग तो काम के लिए उलटे वहाँ जाते हैं!”

बुढ़िया ने बड़ी लाचारी से सिर हिलाया। उसका इशारा ‘प्रारब्ध’ की ओर था।

“क्या दिहाड़ी देते हैं?”

“पता नहीं। लड़कों ने तय किया है। शायद सौ रुपए पर दो रुपए। चार-छह रुपए दिहाड़ी के बन जाएँगे।”

“तुम गांडूडे लगाओगी?”

“हाँ।”

‘गांडूडे लगाने’ से उसका अभिप्राय मशीन में गन्ने डालना था।

“यह क्या गांडूडे लगा पाएगी?” मैंने हैरत दिखाई।

“अरे इसमें हैरान होने की क्या बात है? गाँव में देखा नहीं यह काम तो छोटे-छोटे बच्चे भी कर लेते हैं।”

मेरे साथी ने ठीक कहा था। मैंने गाँव में कई छोटे-छोटे, सात-आठ वर्ष की उम्र के बच्चों को गन्ने छोलते, ‘क्लेसर’ में गांडूडे लगाते और भट्टी में खोई पत्ती झोंकते देखा था। मुझे यकीन नहीं हो रहा था कि इस युग में भी इतनी कम उम्र के बच्चों को रात-रात भर इस तरह के काम करने पड़ते हैं। मेरे साथी ने भी उस कम उम्र में रात-रात भर इस तरह के काम किए थे। वह सुबह बस्ता उठाकर दो कोस दूर स्कूल पढ़ने जाता था। यह सिलसिला तब तक चलता रहा जब तक कि उसने मिडिल पास नहीं कर ली। बाप गरीब हरिजन था। माँ बहुत छुटपन में ही मर गई थी। बस, किसी तरह धीरे-धीरे आगे बढ़ता रहा। मेरे साथी ने मुझे यह भी बताया था कि इन ‘क्लेसरों’ पर अधिकतर हरिजन, यानी चमार ही काम करते हैं। मेरे साथी को ‘चमार’ शब्द से खास चिढ़ थी। “क्यों लोग चमार को इतनी हिराकत से देखते हैं?” उसने मुझे पिछले दिनों गाँव की ओर बढ़ते हुए पूछा था “किसी को गाली देने के लिए भी उन्हें इससे बढ़िया शब्द नहीं सूझता!”

साथी के प्रश्न ने मुझे चक्कर में डाल दिया था। समूची समाज व्यवस्था को चुनौती था यह प्रश्न। अपने मन को टटोलने की भी बात थी। हमारे समाज में, दरअसल यही सब होता रहा है। हुनरमन्द आदमी के प्रति हमारे यहाँ हमेशा एक तरह की उपेक्षा बरती गई है। राज, बड़ई, ठठेरा, लोहार इन सबको समाज ने निचला दर्जा दिया। और तो और, ये हुनरमन्द लोग एक दूसरे को कैंड़ी नजरों से देखने लगे। सुनार ठठेरे से अपने को बड़ा मानने लगा। ठठेरा लोहार से अपने को एक बालिशत ऊँचा समझने लगा और फिर चमार? वह भी कूड़ा कमाने वालों से एक हाथ की दूरी बनाए रखने लगा। यानी सब इस बात पर गर्व पाने की फिराक में पड़ गए कि वे किसी से दो अंगुल बड़े हैं। यह कैसी विडंबना है हमारे समाज की? सबके शरीर पर जैसे ठप्पे लगे हैं और सब अपने-अपने ठप्पे को दूसरे ठप्पे से सुन्दर मान रहे हैं।

मैं अपने साथी को कोई उत्तर नहीं दे पाया था, लेकिन कुछ याद कर मन ही मन कुढ़ने लगा था। मुझे अपने कस्बे के उस कुबड़े ब्राह्मण की एक बात अब भी कचोटती है। शक्ल ऐसी जैसे किसी ने दो पाटियों के बीच भींच दिया हो। पहनावा ऐसा जैसे किसी ढाबे में तमाम उम्र बरतन मलता रहा हो। हमारे घर से थोड़ी दूर उसकी तम्बाकू की एक छोटी-सी दुकान थी। वहाँ अक्सर वह खुद तम्बाकू कूटता दिखाई देता। उसकी बीवी हमारे यहाँ 'हंदा' लेने आती थी। हम उसे लिहाज से 'मौसी' कहते थे।

एक दिन मौसी 'हंदा' लेने नहीं आई तो माँ ने मुझे ही दो चपातियाँ देकर उसके यहाँ भेज दिया। इतिफाक से उस समय वह ब्राह्मण, यानी मौसा, भी घर में मौजूद था। मुझे मौसी की ओर चपातियाँ बढ़ाते देख वह एकाएक दहाड़ता-सा बोला

“अरे, यह कब से? पैसा हो गया तो इससे इनकी जात भी बदल गई? हैं तो छीबे ही न!”

छीबे, यानी कपड़ों पर बेल-बूटों के ठप्पे लगाने वाले। कब? कहाँ? शायद मेरे परदादा यह काम करते थे। लेकिन मेरे दादा इस क्षेत्र के एक जाने-माने डॉक्टर थे और मेरे पिता एक जाने-माने पत्रकार। लेकिन कपड़ों पर ठप्पे लगाना या कपड़े सीना क्या नीच जाति का काम है? जाने क्यों मेरे मन में इस बात को लेकर एक प्रकार का भय-सा बैठा रहता है। क्या पता यह...राज...! लेकिन फिर सोचता हूँ इस बात से डरूँ क्यों? मैंने इस तथ्य का कभी कोई गलत फायदा तो उठाया नहीं!

गाड़ी पैसेंजर की वजह से हर स्टेशन पर रुक रही थी। बीच में दो-एक फ्लैग स्टेशन भी आए थे, जहाँ हरी झण्डी पाने के कारण गाड़ी ने अपनी रफ्तार बरकरार रखी थी। इस बीच मुझसे थोड़ा हटकर बैठी वह जवान औरत ऊँघने लगी थी और उसके सामने बैठा वह जवान आदमी कभी आँखें खोलता था, कभी बन्द करता था।

मेरे साथी को एकाएक जाने क्या सूझी कि उसने अपनी बगल में बैठी बुढ़िया से, थोड़ा झुककर, पूछा, “चमार हो?”

बुढ़िया की आँख पहले तो एक सैकेंड के लिए थिरकी, लेकिन फिर सहज ही उसने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

साथी की जैसे हिम्मत बँधी। उसने तत्परता दिखाते हुए कहा, “मैं भी चमार हूँ।”

अपनी आँखें बंद करने और खोलने वाला वह जवान, साथी की स्वीकृति से एकाएक सतर्क हो गया और उसे घूरने लगा। उन दोनों बर्थों पर बैठे बाकी लोग भी उसकी तरफ गौर से देखने लगे।

साथी ने बुढ़िया को अपने गाँव का परिचय दिया और फिर उससे गाँवड़ी बोली में बतियाने लगा। बातों-बातों में उसने बुढ़िया को यह भी बताया कि वह अब दिल्ली में रहता है और अब अफसरी ओहदे पर है।

मैं साथी के साहस पर हैरान था। कितने ऐसे लोग हैं जो अच्छी पोजीशन पर पहुँचकर ऐलानिया कह सकें, कि वे चमार या कहार परिवारों से हैं? स्वयं मैं यह कभी ऐलानिया स्वीकार नहीं कर सका कि मेरे पूर्वज छीबे थे। और तो और, छीबों के सामने भी मुझे ऐसा स्वीकार करने की कभी हिम्मत नहीं हुई और मैंने उनके सामने यही जाहिर किया कि मैं बहुत ऊँचे वर्ग से हूँ।

गाँव में मेरे साथी ने मेरा अपने एक भतीजे से परिचय करवाते हुए कहा था कि यह बी. ए. पास है और एम. ए. की तैयारी कर रहा है। भतीजे की वेशभूषा कुछ ऐसी थी कि वह पढ़ा-लिखा बिल्कुल नहीं दिखता था, बल्कि अंग्रेजी वह बहुत कम समझता था। मेरे यह पूछने पर कि क्या कॉलेज में उसे किसी तरह के भेदभाव का सामना करना पड़ता है, उसने बिना अधिक सोचे बताया था कि उसने अनुसूचित जाति से सम्बन्धित होने का कभी कोई लाभ नहीं उठाया और न ही उठाना चाहता है। इसी वजह से, कोशिश करने के बावजूद अब तक वह किसी प्रकार की नौकरी नहीं पा सका है।

“लेकिन जब तक बेकार हो, तब तक अपने गाँव में ही कोई काम क्यों नहीं कर लेते?” मैंने उसे सुझाव दिया था।

“कैसा काम?” उसने विस्मय से पूछा था।

“क्लेसर पर ही।”

गाँव में घूमते समय एक ‘क्लेसर’ मालिक ने मुझे बताया था कि उसके यहाँ लोग बत्तीस रुपए दिहाड़ी तक बना लेते हैं, यद्यपि मालिक का यह दावा उसके यहाँ काम करने वालों ने वहीं गलत साबित कर दिया था। फिर भी यह तो था कि वे बीस रुपए दिहाड़ी तक बना लेते हैं। मुझे लगा कि आज के हालात में गाँव में बैठे-बिठाए

बीस रुपए रोज कमा लेना कोई कम नहीं है।

“काम में तो कोई बुराई नहीं है,” मेरे साथी के भतीजे ने बड़ी हलीमी से कहा था “लेकिन आप देख रहे हैं कि इन तथाकथित बड़ी जाति वालों का व्यवहार अब भी हमारे प्रति बदला नहीं है।”

“मसलन?”

“मसलन यह कि चारों तरफ खेत ही खेत हैं, लेकिन उनमें हमारा कोई हिस्सा नहीं। कहाँ जाएँ हमारे ढोर डोंगर चरने?”

“यानी यह कि तुम लोगों में से किसी के पास अपनी कोई जमीन नहीं?”

एक अजनबी के गाँव में आने की खबर पाकर लोग उत्सुकतावश वहाँ जुटने लगे थे और मेरे बारे में सही जानकारी न पा सकने के कारण, वे कई तरह की अटकलें लगा रहे थे। लेकिन मैंने अपने साथी के भतीजे के साथ अपनी बात जारी रखी थी। मुझे याद था कि हमारे कस्बे में घोसी हमारी गाय चराने ले जाता था और जिस दिन गाय चरने नहीं जाती थी, उस दिन ढीली पड़ जाती थी।

“भैंसों चर न पाएँ तो उन्हें क्या खिलाते हो?”

“बस, ऐसे ही खूँटे से बँधी रहती हैं। हम लोग स्वयं ही खेतों से घास काट लाते हैं और कभी-कभी जब खेत वाले उसके लिए मनाही करते हैं, तब लड़ाई की नौबत आ जाती है।”

मुझे याद आया ऐसी लड़ाई की अखबारों में इधर कई खबरें छपी हैं और कहीं-कहीं तो हरिजनों को अपनी जान से भी हाथ धोने पड़े हैं।

वहाँ जो लोग जुटे पड़े थे उनमें अब केवल हरिजन ही नहीं थे। ब्राह्मण, जोगी, बाल्मीकि सब तरह के थे, और सब मेरे बारे में घोड़े दौड़ा रहे थे। एक को तो मैंने धीमे से यह भी कहते सुना था “होगा यह भी झींगरे की तरह का कोई नवीन शर्मा।” ‘झींगरे’ मेरे साथी का गाँव का नाम था, ‘नवीन शर्मा’ तो आप समझ ही गए होंगे।

‘नवीन शर्मा’ की उपाधि मेरे साथी को डंक की तरह पीड़ा पहुँचा गई थी “नवीन, यह हमारी तरह के ‘नवीन शर्मा’ नहीं हैं, आपकी तरह के पुरातन शर्मा हैं।

मेरे साथी ने उन्हीं के शब्दों में मेरा परिचय दिया था “रेडियो पर इनके कई झामे आते हैं।”

“तो ये डिरामा लिखने वाले हैं?” एक ने सवाल किया था।

“क्या ये रेडियो पर बोलते भी हैं?”

मेरे परिचय का प्रभाव कोई बुरा नहीं पड़ा था, लेकिन मेरे भीतर ही भीतर कुछ कुतरन-सी शुरू हो गई थी। अगर इन्हें यह पता चल जाए कि मेरे कुछ सगे सम्बन्धी अब भी अपना वही पुश्तैनी पेशा यानी कपड़े पर रंग चढ़ाना या उस पर ठप्पे लगाना

अपनाए हुए हैं, तो इन सब पर क्या असर होगा?

अंधेरा काफी गहरा होता जा रहा था। गाँव में अंधेरा वैसे भी काफी गहरा होता है। फिर यह तो है भी दिसम्बर का महीना। हमारे चारों ओर जुटे हुए लोग अब धीरे-धीरे लोप होते जा रहे थे।

रात को हम सब एक जगह सोये थे यानी मेरा साथी, मैं, उसके भाई तथा रिश्तेदार, तथा उसका वही बी. ए. पास भतीजा। रात को सोने से पहले मुझे वे किस्से भी बताए गए थे। जब जमींदार लोग अपने कम्मी-कमीनों को घसीटकर काम पर ले जाते थे और हुक्म अदूली करने पर घर-बार से बेदखल कर देते थे। मेरे साथी के रिश्तेदारों ने मुझे यह भी बताया था कि कुछ हरिजनों को अब भी दो जून रोटी नसीब नहीं होती और वे गन्ने के रस से उतरने वाली 'मैली' को पकाकर उससे अपनी भूख शान्त कर लेते हैं। वैसे आमतौर पर यह 'मैली' सूअरों को खिलाने के काम आती है।

गाड़ी अपनी उसी रफ्तार से चली जा रही थी। जो लोग जहाँ बैठे थे, वहीं बैठे थे, जो जहाँ खड़े थे, वहीं खड़े थे। खड़े लोगों में से किसी एक को जाने क्या सूझी कि वह एकाएक बोल उठा, "शैड्यूल्ड कास्ट्स को बहुत सिर चढ़ा लिया गया है। जहाँ देखो उनके लिए जगहें सुरक्षित हैं। अब तो मामला वास्तव में उल्टा होने लगा है। जहाँ हम हड़पते रहे, वहाँ ये हाथ पे हाथ मार रहे हैं।"

"तो इसमें बुराई क्या है? हम भी तो सदियों से तड़प रहे थे। अब हमारी हालत सुधरने लगी तो आप लोगों को परेशानी हो उठी।" मेरे साथी ने कहा।

"क्या ऐसा नहीं हो सकता कि एक बिंदु तक तो ये जगहें सुरक्षित रखी जाएँ, लेकिन फिर बराबर का मुकाबला हो?" मैंने बीच-बचाव करते हुए कहा।

"हाँ, यह भी किसी हद तक ठीक है।" वह आदमी बोला

"पर यहाँ तो मामला और भी खराब है। ब्राह्मण के घर पैदा क्या हुए कि मुसीबत हो गई। पिता मामूली स्कूल मास्टर थे। किसी तरह मैट्रिक करवा पाए। मैं मुश्किल से सत्रह वर्ष का था, जब से क्लर्की कर रहा हूँ। इस बात को पन्द्रह वर्ष होने को आए। मेरे साथ जो शैड्यूल्ड कास्ट लगा था, वह अब सुपरिंटेंडेंट है और वह हर बात पर हमारी बेइज्जती करता है!"

लगा जैसे साथी मन ही मन बहुत खुश है।

"माना आपके साथ ज्यादाती हो रही है, महोदय," उसने टेक-टेक कर अपनी बात उठाई "लेकिन आपके ये तथाकथित सवर्ण लोग हम पर जो जुल्म ढाते रहे, उन्हें आप भूल गए? स्वयं बाबा अम्बेडकर, जो इतने बड़े विद्वान थे और जिन्होंने भारत को संविधान दिया, इस जुल्म से बच न सके! आप जानते हैं एक तथाकथित सवर्ण ने उनके जूठे बरतन छूने से इंकार कर दिया था?"

बहस शायद ज्यादा खिंच जाती, लेकिन खिड़की के पास बैठी जवान औरत ने

एकाएक आँखें खोलकर जम्हाई ली और सब लोगों की तरफ ऐसे देखने लगी जैसे कोई बहुत खराब सपना देखकर उठी हो। उसके सामने बैठे जवान आदमी ने अपनी टाँगें इस तरह फैला रखी थीं, जिससे वे औरत की टाँगों को छूती रहीं।

मेरा साथी अब तक काफी जोश में आ चुका था। उसकी आवाज कानों पर बड़ा तीखा प्रहार कर रही थी। वह कहे जा रहा था “शेड्यूल्ड कास्ट का आप मतलब समझते हैं? इसका मतलब चूड़े-चमार से नहीं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े उन लोगों से है, जिन्हें ऊपर उठाने के लिए सरकार ने एक लिस्ट में शामिल कर लिया है। क्या लिस्ट में शामिल हो जाना अपने आप में एक गुनाह हो गया? मैं तो कहूँगा कि उन सब तथाकथित सवर्णों को, जो आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं, इसी सूची में उतार लिया जाए।”

एक बार तो मुझे लगा कि यह सुझाव बहुत बढ़िया है, लेकिन फिर एकाएक मेरे मुँह से निकला, “लेकिन ये तो नाइंसाफी को और तूल देना होगा। अगर अनुसूचित जाति से ताल्लुक रखना एक स्टिगमा है, तो इस स्टिगमे को, इस कलंक को, दूर करने की बजाय फैलाया क्यों जाए? मैं तो फिर यही कहूँगा कि जैसे-जैसे अनुसूचित जातियों के लोग एक मिनिमम स्टैंडर्ड तक पहुँच जाएँ, उन्हें सवर्ण मान लिया जाए।”

लगता था बहस का कोई अन्त नहीं होगा। उधर हम अपनी मंजिले मकसूद तक पहुँच गए थे। गाड़ी से उतर रहे थे, तो साथी अपने को कहने से रोक न सका

“मैं तुम सवर्णों की सब चालबाजी समझता हूँ। यह धन्धा तुमने सिर्फ हमारे लिए ही सुरक्षित रख छोड़ा है...।”

विपिन बिहारी

पहचान

लाजो रो रही थी।

लोकनाथ गुरगुरा रहा था बिल्कुल भेड़िये की तरह आँखें लाल-लाल किए हुए। मन हो रहा था लाजो को झपट ले और फोड़ दे उसकी नरेटी। उसकी दोनों हथेलियाँ कुछ ऐसी ही जुम्बिश कर रही थीं। लेकिन वह ऐसा कुछ कर नहीं पा रहा था, जिससे लाजो का कुछ नुकसान होता। उसने जुम्बिश करती अपनी तलहथियों को समेट लिया था। लेकिन मन की बेचैनी उसे खरोँच मारे जा रही थी।

नन्दकेसरी गरियाए जा रही थी लाजो को, छाती ठेठा-ठेठाकर। इसके पहले उसने लाजो के बाल नोंच दिए थे, गालों पर कई तमाचे जड़ दिए थे। लाजो गिर गई, तो उसने उसकी कमर पर दुलत्ती भी मार दी थी। लाजो के जब नन्दकेसरी बाल नोंच रही थी, तो लाजो रो-चिल्ला नहीं रही थी बल्कि अपने बाल नन्दकेसरी से छुड़ाने की कोशिश कर रही थी। नन्दकेसरी जब लाजो के गाल पर तमाचे जड़ रही थी तो लाजो उसका हाथ पकड़-पकड़ ले रही थी। इसी उठा-पटक में गिर पड़ी थी लाजो 'धड़ाम' से। नन्दकेसरी को जैसे दाव-घाट लग गया था अपनी मजबूती दिखाने का। उसने अपनी दुलत्ती चला दी थी उसकी कमर पर बेछोह होकर। जैसे हड्डी टूट गई थी लाजो की या कमर के जोड़ में कुछ हो गया था अथवा पेट का कोई हिस्सा चोटा गया था। एक जानलेवा दर्द उपटा था उसकी कमर में और वह बुक्का फाड़ रोने लगी।

“कलमुँही, ठीक-ठीक बताव, केकर पाप तोरे पेट में पोसा रहल हय? छिनार-पतुरिया न त आज रात न गुजरेगी! घंठिया के न मार दिया त फेन कहना, इत्ता जुवानी चढ़ गई थी जे बरदास न हुई! बोल न त...।”

लोकनाथ अभी भी सिर झुकाए बैठा था। उसने लाजो को कुछ इस तरह देखा जैसे लाजो अब 'नाम' बोलने वाली हो। फिर वह उस 'पापी' की दौड़कर गर्दन चहेटेगा और आज फैसला कर लेगा। मर-मर कर भी कि क्या उसकी इज्जत, इज्जत नहीं होती। आज उसकी बेटी को इस हाल में छोड़ा कल फिर कोई...शैतान, राक्षस, इज्जतखोर!

लाजो की रूलाई बन्द हो गई थी, लेकिन उसकी हिचकी और आँसू बन्द नहीं हुए थे। उसने उसी हाल में अपना मुँह चुभलाया जैसे रहस्य खोलनेवाली हो। नन्दकेसरी और लोकनाथ ने अपनी साँसें कुछ ऐसा ही जानकर रोक दी थीं।

लाजो का गला जैसे बैठ गया था। उसका जबड़ा खुला। नन्दकेसरी और लोकनाथ साफ देख रहे थे। कुछ बोली वह, लेकिन आवाज बाहर नहीं निकली। लाजो काफी व्यग्र-सी दिखी थी अपनी आवाज नहीं निकलने पर। हाथ से अपनी गर्दन ससारेने लगी, जैसे कंठ में कुछ अटक गया हो। कुछ बोलने में असमर्थ हो वह इतना कातर हो गई कि उस पर नन्दकेसरी और लोकनाथ का मोह बरबस उमड़ पड़ा। “तब क्या गूँगी हो गई लाजो? क्या हो गया उसे? सब विपत्त लाजो पर ही आएगी? एक तो छः महीने का गर्भ अपनी कोख में ढोये चल रही है और ये गूँगापन।”

नन्दकेसरी और लोकनाथ कुछ इस तरह शान्त हुए, जैसे कुछ देर पहले उनके भीतर जो हड़बड़ी और उत्तेजना फैली थी, वे फैली ही नहीं थी। नन्दकेसरी लाजो की तरफ दौड़ी। उसने उसे छाती से लिपटा लिया। लाजो उसकी छाती से लगते ही एक फोहबे की तरह फटकर रोने लगी थी। लोकनाथ लाचार-बेबस, लँगड़-लूल की तरह बेटी-महतारी को देखने लगा था, लेकिन उससे ज्यादा देर वहाँ पर थमा नहीं गया। उठ कर निकल पड़ा घर से, जैसे इन तमाम झंझटों से सन्यास लेने जा रहा हो।

नन्दकेसरी लाजो को थपकी देने लगी थी। थोड़े से स्नेह में उनके भीतर का मलाल थोक में निकलने लगा था। नन्दकेसरी भी भावावेश से आहत हो गई थी और उसके भी आँसू बलबला कर निकलने लगे थे और भिगोने लगे थे लाजो का सिर।

दोनों बेटी-महतारी इसी अवस्था में घण्टों नहीं तो बहुत देर तक रोते-रुलाते रहीं। दोनों शान्त हुई तो नन्दकेसरी फिर ‘नाम’ पूछने लगी थीं। लाजो फिर बताने को हुई, तो उसकी आवाज नहीं निकली। नन्दकेसरी चिन्तित हो गई थी

“कोय भूत-प्रेत न धर लिया इ छौंड़ी को।” कई कोशिशों के बाद भी लाजो सफल नहीं हुई, तो नन्दकेसरी मौन हो गई थी। ये सोचते हुए कि वह लाजो को कोसेगी नहीं, लेकिन उसकी मुसीबत से कैसे छुटकारा पाए, वह यह सोचने लगी थी

“छः महीने का गर्भ किसी भी ‘कारीगर’ से औसान न होगा। हाथ भी डाल दे तो भी मुशिकल! तब क्या होगा? यदि यही हालत बनी रही तो...?”

नन्दकेसरी भी ‘कारीगर’ थी बच्चा निछड़ाने में, लेकिन कच्चे गर्भ में आज तक हाथ नहीं लगाया था। वह भावी मुसीबत से बचने के लिए योजनारत होने लगी थी.. सब कुछ देखना...गाँव, अड़ोस-पड़ोस। माना कि वे दलित-मजूर हैं, कमाते-खाते हैं, लेकिन उनकी भी एक परम्परा है, एक संस्कृति है। उनकी संस्कृति और परम्परा ये नहीं है कि कोई कुँआरी महतारी बने। ऐसा होता है तो कई तरह की झंझटें होती हैं।

गोलिया-भाई से पत्तल-पानी बंद हो जाता है। शादी-ब्याह में दिक्दारी होती है और भी कई तरह की झंझटें होती हैं, जो सख्त नहीं होतीं। इन सारे पचड़ों से बचने के लिए एक वृहद् योजना तो बनानी ही होगी उसे। कल अड़ोस-पड़ोस कहेगा तो क्या जवाब देगी वह? शादी-ब्याह रुकेगा तो क्या कह कर समझाएगी?

नन्दकेसरी समझ रही थी लाजो पर एक विपत पड़ी है, लेकिन उसे इतना विश्वास था कि अपनी चालाकी से वह इस विपत से लाजो को ऊबार लेगी। यही होगा कि सब्र करना पड़ेगा। थोड़ी-सी भी नासमझी और हड़बड़ाहट लाजो की जान पर बन जाएगी, फिर भावावेश में लाजो ही कुछ ऐसा कर बैठे, जो नहीं करना चाहिए...तो?

लेकिन नन्दकेसरी विस्मित थी कि जब लाजो 'नाम' बताना चाह रही है, तो उसके गले में आवाज क्यों अटक जा रही है? किसी ने उसे धमकाया तो नहीं है? जरूर कुछ ऐसा है, जो लाजो को बताने में 'डर' लग रहा है। वह हल्की पड़ने लगी थी। आज न कल तो लाजो नाम बताएगी ही। डॉट-डपट, मारपीट करके वह सम्भव नहीं होगा।

दिन गुजर गया। साँझ हो गई थी। लाजो रोती-बिलखती तो नहीं थी, लेकिन कुछ इस तरह बैठी थी, जैसे राँड़-मसोमात हो गई हो। बाल उलझे हुए, कपड़े अस्त-व्यस्त, उदासी की मोटी परत। नन्दकेसरी से झिकाझोरी में उसकी कुर्ती फट गई थी, जिसे ढाँपने की भी कोशिश नहीं की थी उसने। नन्दकेसरी ने कई बार टोका था "चल हाथ-मुँह धो ले। कुछ खा ले। अइसे बइठे से कुछो थोड़े ही होवगा? जो होवे के था उत हो गया। अब इ करना हय कि इ जंजाल से कइसे ऊबरोगे।" लाजो का हाथ पकड़ा था उठाने के लिए नन्दकेसरी ने, लेकिन लाजो ऐसे लग रही थी जैसे उसकी देह में कोई सत्बल ही न हो। कुछ उठी और फिर 'गुद' से बैठ गई। नन्दकेसरी ने जबरदस्ती नहीं की।

लोकनाथ कुछ बोला नहीं था। उसकी स्थिति ठीक साँप-छुछूँदर जैसी लग रही थी। न निगलते बन रहा था न उगलते। लाजो को देख कर पता नहीं क्यों उसे उसके प्रति ना गुस्सा चढ़ रहा था, ना ही ममता जग रही थी। वह लाजो को लाचार-सा देख रहा था। शुरू का गुस्सा अब पानी हो गया था।

रात होने को हुई तो लाजो उठ खड़ी हुई थी। दिशा-मैदान गई। गोड़ हाथ धोये और खाना भी खाया। सोते समय नन्दकेसरी उसके साथ सो गई थी।

नन्दकेसरी सोई नहीं। लाजो ऊँघ रही थी। सो ही जाती अब तक, लेकिन ऐसा लग रहा था जैसे एक 'डर' उसकी नींद पर दबिश कर रहा हो। नन्दकेसरी भी नहीं चाह रही थी कि वह सोये। सो वह उसे ऐसे थपकिया रही थी, जैसे किसी मुसीबत से बचकर बड़ी मुश्किल से आई हो। लाजो थपकियाँ बर्दाश्त नहीं कर सकी और वह नन्दकेसरी की छाती में समा कर हिचकने लगी।

“सच-सच बताव, तोर पेट में काउन पल रहा हय?”

लाजो ने नन्दकेसरी की छाती से अपना चेहरा निकाल लिया था। बेटी-महतारी का चेहरा आमने-सामने हो गया था। लाजो नन्दकेसरी को बड़ी गहराई से देख रही थी। अब उसकी हिचकी खत्म हो गई थी। उसकी आँखों में ऐसे भाव उमड़ पड़े थे जिन्हें समझना काफी मुश्किल था। लाजो पर क्या-क्या परिवर्तन घटा था अँधेरे की वजह से नन्दकेसरी नहीं देख पा रही थी, लेकिन इतना पता था कि लाजो ने उसकी छाती से अपना चेहरा खींच लिया था।

“जान के का करेगी?” लाजो की आवाज भारी थी।

“मुँह नोंच लूँगी उ मुँहझौसे का, अभी पहचानबे नहीं करता हय कि हम का हय, बोल त सही।”

“कुछ न करेगी! आउर मुँह नोंच के का मिलेगा? हमारा पेट झलिया जाएगा का कि जे होना हय न होगा?”

नन्दकेसरी निरुत्तर हो गई थी अचानक, लेकिन वह कमजोर न हो जाए यही सोचकर दिनदिना कर उठ बैठी थी “बोल न पहिले, काउन जुअनजरौना हय। ओकर माउग-बेटी न थी का जे।”

“जवहरा आउर दसरथवा...।”

नन्दकेसरी पर वज्र गिर गया था और वह सन्न हो गई थी। न मरी थी न जख्मी हुई थी।

लाजो नींदाने लगी थी। नन्दकेसरी पर क्या बीती थी, उससे जैसे उसे कोई सरोकार ही नहीं, लेकिन उस पर क्या हुआ होगा इसका अनुमान उसे था। फिर यह सोचकर इत्मीनान हो गई थी कि “जितना भूंकना हो भूंक लो, लेकिन जो तुम कह रही हो उसका एक बाल भी टेढ़ा नहीं कर पाओगी। जितना करना है मुझे ही मार ठेठा लो। अपना गुस्सा उतार लो बस। ज्यादा मत सोच। मुझसे गलत हुआ या सही मैं न कहूँगी, लेकिन यह सही है कि मैं कोखगर हूँ और किसी मर्द का रज बीज अनुचित ढंग से मेरी कोख में पल रहा है। बच्चा निछड़ेगा तो जो दर्द होगा, मैं उतना ही चीखूँ-चिल्लाऊँगी जितना उचित औरतें चिल्लाती हैं।”

नन्दकेसरी ‘सन्न’ के बाद कुछ नहीं बोली थी। लाजो ने उसे हुरेठा “सूत जो” और तब जागी वह और हरकत में आ गई। वह लाजो से उल्टी होकर सोने लगी थी

“इ कइसे हो सकता हय कि बाप-बेटा एके पर ही...बूढ़ा रहता, जुआन रहता, पर एके ही रहता। बाप चाहे बेटा!”

कुछ समझ में नहीं आ रहा था नन्दकेसरी को, तो वह उनींद में माथा ठेठाने लगी।

लाजो सो-सो जा रही थी, लेकिन ऐसा लग रहा था वह सोना नहीं चाहती थी अभी।

लोकनाथ और नन्दकेसरी इतने गोरे नहीं थे कि लाजो भी गोरी होती, लेकिन वह थी। नाक-नकशा भी दोनों से भिन्न लग रहे थे लाजो के। कहीं ऐसा तो नहीं कि नन्दकेसरी की कोख हो और पौधा किसी जवाहर जैसे लोग का रहा हो? लेकिन नन्दकेसरी का कहना था कि उसके पास कोई पराया मर्द नहीं आया। किसी भी मर्द से उसका संसर्ग हुआ था, तो वह था सिर्फ लोकनाथ। लेकिन इतना कहते हुए भी अड़ोस-पड़ोस वाले उसे शक से ही देख रहे थे। जनमत कुछ ऐसा बना कि लोकनाथ भी सशक्त हो गया था।

“कइसे न होगा हमनी सबके गोर-नार, सुन्नर बाल बुतरू? होता हय त इ का माने सब मालिके के रज वीज से ही होता हय। त मालिको के घर भी त केतना कार-कार हय त उ का हमनी के मरदाना के रजबीज से हुआ हय?” नन्दकेसरी अड़ गई।

नन्दकेसरी को जिन्होंने भी सुना वे पस्त हो गए थे। लोकनाथ भी। किसी ने जवाब नहीं दिया था उसकी बात का।

चलने-फिरने, दौड़ने-धुपने लगी लाजो तो अपनी महतारी के पीछे लग गई थी। लोकनाथ जवाहर बाबू का हरवाह था और नन्दकेसरी कोड़ी निकौनी करती थी। जवाहर बाबू बड़हन काश्तकार थे। सो काम की कमी कभी नहीं रही थी। साँझ में नन्दकेसरी मजूरी ले जाती थी। लाजो उसके पीछे-पीछे लग जाती थी। ‘उ लड़किया तोरे हय लोकनाथ?’ जवाहर बाबू मूँछे ऐँठते हुए पूछे थे।

“हाँ, मालिक।”

“बड़ सुन्नर हय।” जवाहर बाबू गहरे हो गए थे।

लोकनाथ कुछ नहीं बोला था।

“शादी-बियाह में भारी दिक्दारी पड़ेगी।”

“अब समै ही बतावेगा मालिक।”

जवाहर बाबू चुप पड़ गए थे थोड़ी देर के लिए, लेकिन जैसे भक् से कुछ याद आया हो “लगता हय तोर जनमल नय हय।”

“इ का कहते यह मालिक?”

“इत्ता गोर-नार, जरूर काउनो बाबू-बबुआन के रजबीज हय।”

लोकनाथ ठिसुआया नहीं। नन्दकेसरी की बात उसे याद हो आई थी। वह सामने रहती तो जरूर कुछ जवाब दे पाती...क्या कर लेते बाबू साहेब, जान नहीं मारते इतना तय था।

जवाहर बाबू एकटक देखे जा रहे थे लाजो को। लाजो नन्दकेसरी का अंचरा पकड़े हुए छुपी जा रही थी?

“काउन हय रे?” अचानक जवाहर बाबू का मुँह खुला था “हेने आव त, तू केकर बेटी हय?”

लाजो सहम गई थी।

“आव न तनी हेने। तोरा नाम का यह?” पुचकारने लगे थे जवाहर बाबू।
लाजो नन्दकेसरी के अंचरा से लटक गई थी।

“जा-जा मालिक बुला रहिन हंय।” नन्दकेसरी ने लाजो को प्रोत्साहित किया था।

“का नाम हय?” गोद में लेकर पूछे थे जवाहर बाबू लाजो से।

लाजो ने अपना हाथ मुँह में कर लिया था सकुचाकर, फिर जवाहर बाबू की गोद से उतरने की जिद करने लगी थी।

“ले...ले, हमरा से डरती हय, आयगी त नफा होगा ले एगो रुपिया।”

जवाहर बाबू अपनी बंडी की जेब से एक रुपए का सिक्का निकाल कर उसे थमाने लगे थे। वह नहीं थाम रही थी।

“अच्छा, दू गो लो।”

दूसरा सिक्का भी नहीं लिया लाजो ने।

“बड़ी तेज हय रे।” तीसरा सिक्का निकालने लगे थे।

तीसरा सिक्का भी नहीं ले रही थी लाजो और वह गोद से उतरने की कोशिश करने लगी थी, तो जवाहर बाबू ने उसके हाथ में तीन सिक्के जबरदस्ती पकड़ा दिए थे। लाजो उनसे छूटते ही इतनी जोर से भागी अपनी महतारी के पास कि बीच में ‘धड़ाम’ से गिर पड़ी थी।

जवाहर बाबू हँसने लगे थे।

लाजो के हाथ से सिक्के छिटक गए थे। लाजो अपनी महतारी के पास पहुँची तो वह मजूरी तौला चुकी थी।

घर आने पर नन्दकेसरी ने चौंकाया था लोकनाथ को “सुन रहे हो?”

“क्या?”

“बाबू साहेब ने लाजो को गोदी में लिहिन और तीन गो रुपिया भी दिहिन।”

“दिहिन होंगे, त इ में काउन बात हुई जे...” लोकनाथ ने लापरवाही-सी दिखाई थी, “तीन गो रुपिये से का हो जायगा आउर बाबू साहेब के लिए तीन गो रुपिया हय का?”

नन्दकेसरी के साथ आती थी लाजो साँझ के समय। जवाहर बाबू नहीं थे। दशरथ कूद रहा था अकेले। दशरथ लाजो से पाँच-छः बरस बड़ा था। लाजो को बुलाया था उसने, तो वह उसके साथ कूदने-फाँदने लगी थी। कूदते-फाँदते लाजो गिर गई थी। दशरथ ने उसे भर अंकवारी पकड़कर उठाया था। उसके कपड़े झाड़े थे। लाजो रोई नहीं थी। दशरथ को देख हँसे जा रही थी।

“रोजिना आना।”

“माय आवेगी त न।”

“चुपे से आ जाना।”

“अकेले उता दूर से?”

“का होगा?”

दशरथ और लाजो हिल-मिल गए थे। काम पर नन्दकेसरी होती थी, तो लाजो भी साथ जाने लगी थी। दशरथ और उसे खेलने का मौका मिल जाता था। नन्दकेसरी बेध्यान हो जाती थी कहाँ गई।

जवाहर बाबू के सामने जब लाजो पड़ती थी तो वे उसे पुचकार लेते थे। उससे तुतलाकर बतियाने लगते थे। हँसते थे। लाजो भी अब उनसे हिल-मिल गई थी। उनके कंधे पर बैठने की कोशिश करती थी। उनकी मूँछें भी कई दफा उमेठ दी थीं। उनकी गोद में बैठने की कोशिश करती थी वह। उसकी इस हरकत पर ठठा कर हँसते थे जवाहर बाबू।

लाजो जवाहर बाबू से खुलकर पैसे माँग लेती थी और उसे एक रुपए का सिक्का जरूर मिल जाता था।

लोकनाथ दलित है...चमार है...लाजो की इतनी पूछ बबुआन के घर में ही है, तो कम गौरव की बात नहीं थी। लोकनाथ से अब तक जो छुआया तक नहीं था, उसकी बेटी उसके कंधे पर सवार हो जाती थी।

नन्दकेसरी में एक हुनर है बच्चा निछड़ाने का। दशरथ को उसने ही निछड़या था। सब कुछ बहरा गया था, लेकिन मुड़िये (सर) अटक गई थी। जवाहर बाबू की घरवाली अब तब हो रही थी। नन्दकेसरी को भी समझ नहीं आ रहा था, डर लग रहा था कि कहीं बच्चा मर न जाए। सो भगवान का नाम लेकर उसने बच्चे को हाथ से खींच लिया था। जवाहर बाबू मानें या न मानें एहसान, लेकिन उनकी घरवाली इज्जत करती थी उसकी। उसने मजूरी कभी कम नहीं जोखी...सही बटखरा से ही तौलती थी। कुछ खास पकवान बने घर में, तो उसके लिए अवश्य रख दिया जाता था। छूत-अछूत का भेदभाव नहीं था, लेकिन नन्दकेसरी ओसारे से कभी भीतर नहीं गई और मालकिनी ने मजूरी तौलकर दूर से ही उसके कपड़े पर डाला। दोनों मीठी-मीठी बातें करती थीं तो वह क्या लोकनाथ भी भोरा जाता था कि मालिक-मालकिनी उन्हें बहुत मानते हैं।

लाजो से बाप-बेटा दोनों उलझे रहते थे, जैसे उनके ही करीबी रिश्तेदार हो या उनके घर ही उसकी पैदाइश हुई हो...खुश-खुश। बच्चे तो भगवान का रूप होते हैं। लाजो को अभी से जवाहर बाबू के घर पाला-पोसा जाए तो पता भी न चले कि वह लोकनाथ जो जाति से चमार है की बेटी है।

लाजो जवान नहीं हुई थी, लेकिन उसकी देहयष्टि बढ़ गई थी। निखर गया था उसका रंग, चेहरा। नन्दकेसरी के समक्ष बच्ची ही थी वह।

“काहे न लगा देती हय इहाँ लाजो को। कुछ लुर-खुर करते-धरते रहेगी, घरवा का करती होगी, कूदवे-फाँदवे करती होगी दिन भर।” मालकिनी बोल रही थीं नन्दकेसरी से।

“अभी खेले-खाय के दिन हय।”

“इहाँ भी काउन पहाड़ ढाहेला हय। अरे, कुछ कर देगी त कुछ मिलिए जायगा।”

“अच्छा...।”

नन्दकेसरी चली गई थी खेत। लाजो रह गई थी जवाहर बाबू के घर। दशरथ आ गया था। लाजो सब छोड़ कर उसके साथ हो ली थी। फिर जवाहर बाबू आ गए थे तो बुलाए लाजो को “अरे इहाँ आवो।”

लाजो की सिहरी फट सी गई थी, सो दौड़ी गई थी बिलकुल उनके बाल-बच्चों की तरह।

“कुछ खाया?”

“हाँ।”

“का?”

“एगो रोटी, मालकिनी दिए।”

“आउर खायगी?”

“ना।”

दशरथ जवाहर बाबू को देखकर गायब हो गया था। जवाहर बाबू ने आज पहली बार लाजो की छाती पर हाथ फेर कर देखा था। क्या मिला था उन्हें, लेकिन उन्हें ये पता हो गया था कि बहुत जल्दी ही लाजो की छाती फुजने वाली है। खुश हुए थे कल्पनाओं में, लाजो को खूब फुसलाया और जोश में आकर उन्होंने उसके गाल चूम लिए थे।

लाजो से रोज उलझने लगे थे जवाहर बाबू। उसके लिए अलग से समय निकालते थे वे। लाजो की छाती पर रोज हाथ फेरते थे और प्रसन्न होते थे। यदा-कदा छाती से उतर कर उनके हाथ लाजो की जाँघ तक जुम्बिश करते थे। लाजो नासमझ, मासूम.. कुछ समझ नहीं पा रही थी।

दशरथ समझदार नहीं हुआ था, सो लाजो को कुछ भी नहीं समझ पा रहा था। लड़का या लड़की या जात-पाँत, लेकिन ऐसा लग रहा था बहुत जल्द ही लाजो के प्रति समझदार हो जाएगा।

इस दौरान जवाहर बाबू ने लाजो के साथ कुछ ऐसा कर बैठने की कोशिश की थी जिसकी कल्पना तक सम्भव नहीं थी। वे लाजो के चेहरे का हाव-भाव देख रहे थे। कोई अतिरिक्त और आपत्तिजनक तकलीफ तो नहीं हो रही है। जब तक जवाहर बाबू ने लाजो के चेहरे पर अतिरिक्त तकलीफें नहीं देखीं थीं, तब तक वे कोशिश करते रहे

थे। जैसे ही लाजो के चेहरे पर अतिरिक्त का बोध हुआ कि अपनी कोशिश छोड़ देते थे। वे लाजो को खूब पुचकारने लगे थे, लाड़ करने लगे, उसे पाँच रुपए का नोट दिया था उन्होंने।

समझ गई थी लाजो कि वह जवान हो गई है या होने वाली है। जवाहर बाबू अपनी कोशिश कई बार सफल कर चुके थे। उन्होंने कुछ ऐसा किया था कि लाजो को अतिरिक्त तकलीफ नहीं हुई थी बल्कि वह गुदगुदा रही थी। कौमार्य का रक्तस्राव नहीं हुआ था। लाजो समझने लगी थी कि उसके साथ क्या किया जा रहा है और क्या हुआ है और उसे क्या करना चाहिए? जवाहर बाबू से उसकी जिद बढ़ गई थी और वे लाजो की हर जिद पूरी करने लगे थे।

मूँछें लगभग सफेद हो गई थीं जवाहर बाबू की। लोकनाथ से दस-पाँच बरस के बड़े होंगे वे, पर शरीर भारी था। लाजो उनसे छिप जाती थी। अपनी जिद पूरी होने पर लाजो काफी खुश हो लेती थी।

अब दशरथ भी लाजो की छाती का स्पर्श करने लगा था।

“गुदगुदाता हय।” लाजो हँसती थी। दशरथ भी हँसता था। और फिर दशरथ भी वही करने लगा था, जो उसके बाप जवाहर बाबू कर रहे थे उसके साथ। जवाहर बाबू से छूटती थी, तो दशरथ थाम लेता था। लाजो ऊब नहीं रही थी, अच्छा भी नहीं लग रहा था। बाप-बेटा दबंग थे। सबसे बड़ी बात थी कि उसका बाप उसके यहाँ मजूर था। विरोध करती, तो उसके साथ जबरदस्ती ही होती। तकलीफें बढ़ जातीं और कोई बचाने भी नहीं आता।

गाँव में रखैलें रखने की परम्परा नहीं थी। सोच कर ही रह रहे थे जवाहर बाबू और दशरथ कि लाजो उनकी रखैल बन जाए।

जवाहर बाबू नहीं जानते थे कि लाजो से दशरथ भी बड़ा हुआ है और दशरथ भी नहीं जानता था अपने बाप के बारे में। लाजो भी गूंगी ही बनी रही थी। उसके कहने से भी नहीं मानेंगे वे। वह बाबू साहबों की जरजोत है। कोई भी उसके साथ संसर्ग कर सकता है। रिश्ते उनके लिए होते हैं जो वैध हैं।

लाजो नन्दकेसरी के साथ खेत पर जाने लगी थी। उसे अलग से मजूरी दी जाती थी। जवाहर बाबू की चाल थी कि बेटी-महतारी को काम बाँट कर काफी अलग कर दिया जाता था और एकांत में लाजो की निगरानी कभी जवाहर बाबू तो कभी दशरथ करता था।

दशरथ ने देख लिया था एक दिन जवाहर बाबू को लाजो के साथ निंग धड़ंग। विश्वास नहीं हुआ उसे कि उसका बाप अभी ‘पाठा’ है और इतनी कम उम्र की लड़की के साथ...

लाजो उनसे छूटकर जा रही थी कि दशरथ ने पकड़ लिया।

“पक्का छिनार हो।”

“छिनार हम हंय कि तू...?” लाजो लोछिया गई थी।

“मेरे बाप के साथे भी आउर हमरे साथ भी...”

“हम केकरो साथे नय हुई हंय, बाप से पूछना काउन केकरा साथे हुआ आउर तू भी पूछना अपन आत्मा से हम गरीब-गुरबा, छोट जतियन रही। महतारी साथे आवत रही। तोर बाप हमरे गोदी उठा के हमरी जाँघ सुहारता रहा और फेन का न किया, तू भी का न किया। छिनार हम कि तू?”

“कहाँ जाती है?”

“बोल...”

“हमरे बाप के छोड़ दे और सिरफ हमर बन जाव फेन जे कहो सो...”

“हमरे से विवाह कर ले, तोर बन जाऊँगी, तोर बाप हाथो न लगायगा, लेकिन तोरा त बियाह हो गयल हय, राखिनी बनाके रखेगा कहाँ! आउर लाजो राखिनी केकरो की न बनेगी?”

“जे कहेगी सब हो जाएगा, बाप को छोड़ दे।”

“कइसे?”

“मत जाय ओकरे पास।”

“तोरे पास कहियो हम आई? जबरिया तीर लिया। का न किया जबरिया। आज तके हमरा साथ जबरिया ही हुआ। तू भी जबरजस, आउर तोर बाप भी। लेकिन इत्ता कहूँगी कि तोर बाप भी औरतखोर हय और तू भी...रिश्ता नाता से कोय लेना-देना नय है दोनों गो के!”।”

लोकनाथ ने देख लिया था जवाहर बाबू को लाजो के साथ जबरदस्ती करते हुए। उस दिन जबरदस्ती की थी जवाहर बाबू ने। लाजो तैयार नहीं हो रही थी। पता नहीं क्यों? शायद अपने बाप को देख लिया था उसने।

“आज नय बाबू साहेब, जी ठीक नय हय।” लाजो स्वयं को अपनी तरफ खींच रही थी।

“क्या हो गया?” लाजो को जवाहर बाबू अपनी तरफ खींच रहे थे।

“ओटी दरद कर रहल हय।”

“चल कुछो न होगा।”

“आज नय बाबू साहेब...” लाजो जिद कर बैठी थी, तो जवाहर बमक पड़े थे और खींचकर तमाचा लगा दिया था और फिर जो हुआ सो...

देखा न गया था लोकनाथ से। गुस्सा भी नहीं आ रहा था, रुलाई भी नहीं आ रही थी। क्या करता हाथ-पाँव नहीं हैं उसके। हरिजन-चमार की बेटी न हो। जब बेटी हो तो उसका बाप किसी बाबू साहेब के घर मजूर न हो और मजूर भी हो तो बेटी

गोरनार न हो, सुंदर न हो, नहीं तो ये बबुआन सत्तर बूढ़ा भी उसे भोगना चाहता है और बीस बरस का लौंडा-झौंडा भी। घर आते-आते लोकनाथ ने सब कुछ सोचना बंद कर दिया था और फिर इत्मीनान से सो गया था। इस गाँव में सभी दुसाध, चमार मालिक से जुड़े हुए हैं और सभी की जवान बेटी-बहुएँ यौन शोषित हैं, कोई कम कोई बेशी। जो जितना देखनगर है वह उतना शोषित है। आज तक किसी ने विरोध नहीं किया, तो लोकनाथ कहाँ से कर पाएगा?

जवाहर बाबू ने भी देख लिया था लाजो को दशरथ के साथ। लाजो से वे कुछ भी नहीं बोले थे।

“बाबू साहेब...”

“का हय?”

“तीन माह के गरभ ठहर गया हय...”

“त का कहते हो?”

“का कहना, एकरा बाद का होवेगा जे जनिये रहे हंय।” लाजो थोड़ा इत्मीनान लग रही थी और जैसे होश आया था जवाहर बाबू को। सो हड़बड़ा गए थे।

“हमरा न होगा?”

“त केकरा होगा?”

“दशरथवा का होगा।”

“आपै का कइसे न होगा?”

“दसरथवा का कइसे न होगा?”

“अच्छा त ओकरे से पूछिये लेती हूँ...” लाजो का चेहरा सामान्य हो गया था।

लाजो गई दशरथ पास, तो वह भी मुकर गया था ये कहकर कि उसके बाप का ही होगा। लाजो ने जवाहर बाबू से थोड़ा मुँहाथोथी भी की थी, लेकिन दशरथ से कुछ नहीं किया था उसने। बस वह इतना कह गई थी, “हमर गरभ में तू भी हय और तोर बाप भी। आज सब नहकार जा रहा हय। कोय उपाय पत्तर मत कराओ, हमरा जे होवे के रहेगा, होवे करेगा, लेकिन तू भी लंगट होवेगा आउर तोर बाप भी।”

“धमका रही है?”

“हमरा हूब है धमकावे के?”

“बीच में हमरा नाम नय आना चाहिए।”

“त का कर लेगा?”

“जे न हुआ हय अब त उ हो जायगा।”

जवाहर बाबू भी वही बोले थे, जो दशरथ बोल रहा था।

नन्दकेसरी रात भर सोचती रही थी। लाजो इत्मीनान से सो गई थी। छः महीने का गर्भ खराब करना आसान नहीं था। इसमें लाजो की जान भी जा सकती थी।

अंतिम उपाय यही था कि लाजो कुआँ-तालाब डूब मरे। महीने दो-महीने का गर्भ रहता तो झट ब्याह दिया जाता लूल-लांगड़ से भी लाजो को और थोप दिया जाता उसके मर्द के मत्थे दो महीने का गर्भ। लोक-लज्जा भी बची रहती। लेकिन दुनिया हहारो हो गई थी। हालांकि लाजो पहली नहीं थी, जिसने कुँआरी गर्भधारण किया था, लेकिन इतना हुआ कि समय पर चेत हो गया। सब छुप गया। लाजो गाँव में पहली महतारी बनेगी। एक जीवित इंसान को कैसे छिपाएगी जब वह धरती पर आएगा और रहना शुरू करेगा। नन्दकेसरी क्या करेगी? गला टीप देगी, गाँव के सिवाने पर कहीं फेंक आएगी या कौच्चा-कुत्ता चिवा जाएगा और क्या? दो-चार दिन हल्ला मचेगा, फिर सब शान्त। कोई उपाय नहीं। पर नन्दकेसरी कुछ दूसरा सोच रही थी। ये सब कुछ नहीं होगा। लाजो बच्चा जनेगी। वह उसकी सेवा करेगी। बच्चे को अपने घर में पाले-पोसेगी। इस पर लाजो चुप हो गई थी।

साँझ से ही लाजो को पीड़ा हो रही थी। वह इस तरह चीख-चिल्ला रही थी गोया अन्तिम साँस निकलने वाली हो। नन्दकेसरी भरसक कोशिश कर रही थी कि बच्चा 'निछड़' जाए जल्दी, लेकिन 'पहलौंठ' था सो तकलीफ होगी ही। नन्दकेसरी लाख 'हरनठ' हो जाए।

लाजो को लगा था कलेजा चरक गया। उसने ऐसा कभी नहीं सोचा था कि बच्चा होते समय इतना दर्द होता है। दर्द सह रही थी दाँत किटकिटाकर। चेहरा लाल-भभूका हो गया था। पसीना छूटने लगा था, तीन दफा तो बेहोश हो गई थी। बेहोश होते देख नन्दकेसरी को ये भय सताने लगा था कि कहीं लाजो ही न खत्म हो जाए? कुछ हो गया तो जुल्म हो जाएगा। दुनिया हँसा के मारेगी, तो ये कहाँ ठीक होगा? मरना ही होता तो जब इसके पेट में जवाहर और दशरथ पनपने लगे थे, तभी मर जाना चाहिए था। सभी जान गए थे। अब तो जो होना था हो चुका था। अब मरना भी नहीं चाहिए।

रात भर लाजो 'हाय मइया, हाय बप्पा, जान बचाव' चिल्लाती रही थी। सबेरे 'किरिंग' (किरन) फूटते ही बच्चा 'निछड़ा'। लाजो को ऐसा लगा था कि मौत को छूकर आ रही है। वह निश्चल पड़ी रही थी।

नन्दकेसरी गोद में बच्चा उठाकर लापता हो गई थी। लाजो थोड़ा सुगबुगाई, अगल-बगल टटोला। पीड़ा के जिन क्षणों से वह गुजरी थी, उसे ये होश नहीं रहा था कि उसके गर्भ में अवैध पेड़ उगा हुआ है। इतना ही जान-सोच रही थी कि उसकी कोख हरी हो रही है। अगल-बगल देखा कुछ नहीं था, तो करवटें बदल कर देखा। कोई कहीं नहीं था। वह अकेली पड़ी थी। पूरा शरीर नंगा था। उसके ऊपर एक चादर ढाँक दी गई थी। उठ कर वह कपड़े भी नहीं पहन सकती थी। कुछ समझ नहीं पा रही थी वह। कहीं से कुछ 'सुन गुन' भी नहीं सुनाई पड़ रही थी। 'मइया कहाँ चली गई?'

नन्दकेसरी की गोद में बच्चा था 'बेटा'। वह दौड़ी चली जा रही थी बबुआनों के टोले की तरफ।

“का लिए जा रही हय?”

“जवाहर आउर दशरथवा को!”

नन्दकेसरी की बात समझ नहीं आ रही थी किसी को।

जवाहर बाबू और दशरथ अपने बैठका पर ही मिल गए।

“का हय?”

“बेटा होयल हय।”

“केकरा?”

“जवाहर और दशरथ बाबू का।”

“का बकती हय?”

“बकती नय हूँ मालिक, देखल जाय कि इ लइकवा में केकर परछाई हय।”

जवाहर बाबू के दरवाजे पर कई बबुआन जुट गए थे।

“पगला गई हो का?”

“हाँ पगला गई हूँ त न एगो बेटा दे रही हूँ। अपना बेटा स्वीकार करूँ।”

“गाँव में रहेला हय कि न?”

“जान से मारेंगे का त मार दें, लेकिन इ बेटा त स्वीकारे ही पड़ेगा बाबू साहेब आउर स्वीकार के एकरा नाली-नाला में फेंक दें चाहे पोसें पालें। उ घड़ी बाप-बेटा को लाजो की देह चाटे में बड़ा मज आ मिलता रहा! आउर अब इ हराम के स्वीकारे में गांड फट रहल हय! आउर इ भी पहचान कर लें कि जवाहर बाबू एकर बाप हय कि दशरथ बाबू?”

सन्नाटा फैल गया था बाप-बेटे पर और यही मौका था नन्दकेसरी के लिए। बच्चा जवाहर बाबू और दशरथ के पाँव के नीचे डाल कर वापस लौट गई थी वह।

लाजो पूछ रही थी अपनी महतारी से, का हुआ, “कहाँ गइल थी?”

“बेटा होयल था ओकरे बाप के 'गोड़' (पाँव) में डाल आई। हमनी ही काहे लोक-लज्जा झेलेंगे, तू भी झेल, हराम की पहचान कर।” नन्दकेसरी हँसने लगी?

लाजो मुस्कराई थी, लेकिन पीड़ा से उसका चेहरा इतना थुरा-पिसा गया था कि उसकी मुस्कराहट साफ झलक ही न सकी थी।

राणा प्रताप

अन्ततः

एक दिन अध्ययन कार्य समाप्त होने पर गुरु वर्ष से छात्रों ने पूछा “गुरुदेव! पाटलिपुत्र की महिमा तो बहुत सुनी है, किन्तु वर्तमान में यह जात-पाँत और अशिक्षा का क्षेत्र कैसे बना, बताइए?”

यह सुन गुरु वर्ष के माथे पर चिन्ता की रेखाएँ खिंच आई, उन्होंने जैसे कयास लगाते हुए कहा “सुनो, इस सम्बन्ध में एक कथा सुनाता हूँ। पाटलिपुत्र के दक्षिण में एक गाँव है। गाँव का नाम है मसौड़ी। अशिक्षा और कुपोषण का शिकार एक छोटा-सा गाँव। इसी गाँव में गनेसी नाम का एक चमार रहता था। उसकी एक अदद पत्नी थी और एक बेटी भी। बेटी का नाम उसने फूलवा रखा था। थी भी तो वह फूल के समान सुन्दर और कोमल। बेटे कई हुए मगर सभी भगवान को प्यारे हो गए।

“फिर भी गनेसी की जिन्दगी मज े में बीत रही थी। न ऊधो का लेना, न माधो का देना। अपना धन्धा था, अपनी कारीगरी। वह जूते का अच्छा कारीगर था। आखिर सात पुश्र्तों से यही काम करता आ रहा था। अच्छा कारीगर बनता कैसे नहीं।

“गाँव में उसकी पूछ थी। मालिक-मलकार भी कभी-कभार उससे जूते बनवा लिया करते थे। गनेसी खुश था कि चलो, दो जून की रोटी और भगवत भजन के लिए समय, दोनों साथ-साथ मिल जाते हैं। रैदास के भजनों को वह अक्सर गुनगुनाया करता ‘प्रभु तुम चन्दन हम पानी।’

“इसी भक्त स्वभाव के चलते लोग उसे रैदास कहने लगे थे। उसने कंठी भी ले रखी थी। मांस-मछली नहीं खाता था वह। नियमित रूप से बाबा के आश्रम में जाता था। बाबा भी उसे विशेष भक्तों में मानते थे।

“किन्तु विधि का विधान कौन टाल सकता है? जीवन के शान्त कूलों में भी लहरें उठती हैं और तूफान आता है।”

“कैसा तूफान, गुरुदेव?”

“किसी के शान्त जीवन में जो हलचल पैदा कर दे, उसे तूफान ही कहेंगे न?”

गुरुजी अपनी रौ में बहने लगे थे। छात्रों ने टोकना उचित नहीं समझा। उन लोगों ने सिर्फ हुंकारी भरी।

फुलवा जवान हो रही थी। उसके अंग-अंग से सुवास फूटने लगे थे। ऐसा सुवास कि इंसान तो क्या देवताओं को भी पागल कर दे। गनेसी इस बात से बेखबर था। हाँ, उसकी पत्नी बेखबर न थी, बेटी की बाढ़ का उसे पता था। उसने एक दिन एकान्त पाकर पति से कहा “फुलवा जवान हो गले है? ओकरा बिआह के समय हो गेल है?”

गनेसी का मन शंकित हो उठा “कोई अइसन-बइसन बात हो गेल है का?”

“शंकरवा के रंग-ढंग ठीक ना लगे है?”

“हूँ!” उसने एक लम्बी हुंकारी भरी।

“त अइसन बात है? तब तो कुछ न कुछ सोचहीं के पड़ी।” उसने कुछ सोच कर कहा।

गनेसी के रैदासी मन में फुलवा की चिन्ता आ घुसी, वह निरन्तर उद्विग्न रहने लगा। आखिर फुलवा जैसी सुन्दर, सुशील लड़की का बिआह किससे करे? किसके पास जाए रिश्ता लेकर? कोई पढ़ा लिखा-लड़का मिल जाता तो बात ही और थी। पर इस गाँव में! मृतक पशु का मांस खाने वाले अधम, पापी लोग।

बाबा ने गनेसी के माथे की चिन्ता की रेखाओं को पढ़ लिया। एक दिन उन्होंने पूछा “बच्चा, आजकल किस चिन्ता में डूबा रहता है? भगवत भजन में मन नहीं लगता। क्या बात है?”

“बाबा, फुलवा की चिन्ता खाए जा रही है।”

“क्या हुआ फुलवा को?”

“जवान हो गई है।”

बाबा हँसे!

“इसमें चिन्ता की क्या बात है? लड़की है तो जवान होगी ही।”

“एक गरीब चमार के घर लड़की जवान होने का मतलब समझते हैं न बाबा।”

“अरे, बच्चा! भगवान पर भरोसा रखो। सब ठीक हो जाएगा।”

ठीक क्या होना था खाक! एक दिन हाँफती-हाँफती फुलवा घर लौटी। ब्लाउज उसका फटा हुआ था। छाती पर खरोंच के निशान साफ उभर आए थे। सुखिया ने उसे देखते ही पूछा “का गे फुलवा? ई हाल तोरा कौन करकौ गे?”

भागकर आने के कारण उसकी साँस तेज चल रही थी। उसने सिसकते हुए बताया “शंकरवा और ओकर साथी।”

सुखिया ने सुनते ही छाती पीट ली “ई नीच जाति में काहे ल पैदा कइला भगवान!”

“का हुआ, फुलवा के माई?”

“ल, पहिले आपन बेटी के रूप निहार। तब पूछिह कि का हुआ?”

“ई का फुलवा?”

“दहिजरा सब के देहि में आग लगे। रौंडना मइया उठा ले सभे के।”

“ई आपन करम के दोख है, फुलवा के माई। आपन करम के दोख। तीन-तीन गो बेटा के जमराज उठा ले गेल और ई सुरसत्ती जइसन बेटी चमार के घर...”

“तोरा ई सबके का फिकिर। तू औउरि भजन गाव धनहर दूध जे बछरू जुठारी।”

“न फुलवा की माई। अब गाँव में कोई इज्जत नाही।”

“ई सात पुशत के भूमि...हे भगवान।”

“भगवान के सरन में गेला से त ई दिन देखे के पड़ल। अब, हम कहीं जाके मेहनत मजूरी करब। बाकी हियाँ नाही।”

पति की ऐसी बात सुनकर सुखिया के दिल को तसल्ली हुई। उसने छूटते ही कहा “त देर करे से का फायदा?”

“दिल टुटला के बाद देर काहे के ...”

दूसरे दिन पौ फटने से पहले ही गनेसी अपनी जमा-पूंजी टेंट में बाँध पाटलिपुत्र नगर की ओर प्रस्थान कर गया। नगर में पहिचाने जाने के खतरे के कारण उसने नगर से हटकर दीघा में किराए की एक छोटी-सी कोठरी ले ली और काम की तलाश में इधर-उधर भटकने लगा।

इसी बीच उसकी भेंट अजायब लाल से हुई। अजायब बाटा कंपनी का मजदूर नेता था, जब उसे मालूम हुआ कि गनेसी अनुभवी कारीगर है, तो उसने मैनेजमेंट से बात करने की पेशकश की। गनेसी को जैसे तिनके का सहारा मिला। अजायब ने अपने मैनेजर से बात की और बात बन गई। गनेसी को बहुत भटकना नहीं पड़ा और नौकरी पक्की हो गई।

एक आसन्न विपत्ति सर पर मंडरा रही थी, सो फिलहाल टल गई। सुखिया ने सवा रूपए का परसाद भगवान को चढ़ाया और सुखी जीवन की कामना की।

गनेसी की जिन्दगी पुनः एक ढर्रे पर चल निकली। गाँव की जिन्दगी से यह जिन्दगी थोड़ी भिन्न थी। वहाँ भक्ति का रंग ज्यादा गाढ़ा था। यहाँ भक्ति के ऊपर मजदूर चेतना का रंग चढ़ने लगा। बावजूद इसके गाँव का संस्कार अपनी जगह कायम था। गनेसी ने एक दिन अजायब के सामने फुलवा के बिआह की चिन्ता प्रकट की। अजायब फुलवा से परिचित हो चुका था। उसने छूटते ही कहा “फुलवा तो सोलह की भी नहीं हुई है।”

“लेकिन बिआह के लायक हो गई है न, नेताजी।”

“विवाह की उम्र अठारह के बाद होती है। अभी तो उसे सिखाने-पढ़ाने पर जोर देना चाहिए।”

गनेसी को यह बात रुचि नहीं। सुखिया को भी यह सलाह अच्छी नहीं लगी। उसे तो फुलवा का डर घुन की तरह खाए जा रहा था। किन्तु जब अजायब ने शादी के लिए मदद पहुँचाने का वादा किया तो दोनों पति-पत्नी को संतोष हुआ। फिर फुलवा के लिए एक निःशुल्क मास्टर की व्यवस्था कर दी, तो दोनों ही खुश हुए!

पड़ोस में ही एक शिक्षक रहता था। उसका नाम था मोहन मिसिर। माध्यमिक स्कूल में शिक्षक था वह। उम्र यही पैंतीस-चालीस के बीच रही होगी। नए ख्याल का आदमी था। इसलिए अजायब ने मोहन मिसिर से फुलवा को पढ़ाने के लिए आग्रह किया, तो वह टाल न सका, क्योंकि वह अजायब का भी मित्र था।

फुलवा नियमित रूप से मोहन मिसिर से जाकर पढ़ने लगी। किन्तु वहाँ पढ़ना कम था, सेवा का सरोकार ज्यादा, पहले तो मास्टर साहब को थोड़ी परेशानी हुई। लेकिन जब फुलवा ने अक्षरों को पहचान लिया, तब कठिनाई थोड़ी कम हुई। फुलवा निरक्षर थी, लेकिन दिमाग बहुत तेज था। थोड़े ही समय में उसने बहुत सारी चीजें सीख लीं।

उसकी तेजी देखकर मास्टर साहब को भी प्रसन्नता हुई। उसने भी रुचि लेकर पढ़ाना शुरू किया। धीरे-धीरे फुलवा मास्टर साहब के जीवन में भी प्रवेश करने लगी। जूठे बर्तन माँजना और घर की सफाई का काम अब उसी के जिम्मे था किन्तु एक दिन मास्टर साहब ने उससे चाय बनाने के लिए कहा तो चिहूँक पड़ी।

एक चमार की लड़की का चौके में प्रवेश! वह भी ब्राह्मण देवता के चौके में! न बाबा, ना! उसने प्रत्यक्ष रूप में कहा “हमरा स्टोव जलावे ना आवे है?”

“चलो, हम सिखा देते हैं।”

“हम तो हरिजन हैं हे मास्टर साहब।”

“तो क्या हुआ?”

“आपका धर्म नष्ट हो जाएगा।”

“मैंने अब तक शिक्षा को ही धर्म मान रखा है। यह दूसरा धर्म कहाँ से आ गया।”

“इस धर्म के बारे में त आप ही जानिए।”

“चलो, चलो, आज तुम्हें चाय बनाना सिखा ही देते हैं।” और मास्साब उसका हाथ पकड़े रसोईघर में घुस गए।

धीरे-धीरे फुलवा की सेवा चाय बनाने से लेकर भोजन बनाने तक पहुँच गई। चौका-बर्तन, झाड़ू-पोंछा का काम तो पहले से ही उसके जिम्मे था। इसके एवज में फुलवा को किताब, कॉपी और पेंसिल मुफ्त मिल जाया करती थीं।

फुलवा को मास्साब अच्छे लगने लगे थे। क्योंकि उनके दिल में कोई खोट न थी। सच्चे दिल से फुलवा को मानते थे। मास्साब को भी फुलवा अच्छी लगती थी। इसलिए नहीं कि वह जवान और सुन्दर थी, बल्कि फुलवा उनके जीवन का अंग बन

चुकी थी, मास्साब विधुर थे, पर उन्होंने अपने आचरण से ऐसा कुछ भी नहीं होने नहीं दिया, जिसे लेकर समाज उंगली उठाता, भला-बुरा कहता।

एक बार जब वर्षा का मौसम था, मास्साब पूरी तरह से भीगकर लौटे थे। उन्हें बुखार चढ़ आया था। जब फुलवा आई मास्साब का शरीर पूरी तरह बुखार से तप रहा था। उसने तत्काल लौटकर बापू को बताया। गनेसी तुरंत डॉक्टर को ले आया। पिता और पुत्री ने मास्साब की सेवा में रात-दिन एक कर दिया। मास्साब अच्छे हुए। उनके मन में एकाएक क्या आया कि पत्नी के रखे हुए गहनों में से हार निकालकर फुलवा को सौंप दिया, “लो, यह तुम्हारे लिए है।”

फुलवा मास्साब के सामने इतनी खुल चुकी थी कि उसने हार को तुरन्त अपने हाथों में लिया। किंतु तत्क्षण ही उसके मन में शंका उभरी। माँ क्या कहेगी? क्या समझेगी वह! उसने मन ही मन कुछ सोचा। उसने फौरन हार को लौटाते हुए कहा “मास्साब एकरा लायक हम नहीं।”

“क्यों?”

“लोग का कही...फिर माँ।”

“अरे, हम गैर थोड़े हैं, तुम्हीं बोलो, इतने दिन से तुम मेरी सेवा कर रही हो, क्या दिया मैंने तुम्हें आज तक।”

“मेरे लिए तो आपका ज्ञान-दान ही काफी है।”

“अच्छा, तो अब बोलना भी सीख गई हो?”

“आपने ही तो...”

मास्साब उठे और हार लेकर फुलवा के गले में डाल दिया।

फुलवा के गले में सोने का हार देखते ही सुखिया का दिल छौ-पाँच करने लगा। उसने पति को एक बार पुनः फुलवा के विवाह के लिए आगाह जरूर कर दिया।

“तुम तो सहर में आके फुलवा के विवाह के बाते भूल गए।”

“भूला कहाँ? उसी के लिए तो गाँव से शहर आया और अब...।”

“अब का?”

“सुना है, हड़ताल होगी। नेताजी बतला रहे थे कि इस बार मैनेजमेंट कुछ सुन नहीं रहा है।”

“त हड़ताल में पैसो न मिली।”

“पैसा! ना जाने का होई।”

अचानक बातचीत का रुख दूसरी तरफ मुड़ गया। सुखिया ने ज्यादा और कुछ नहीं कहा। गनेसी को भी इससे ज्यादा सुनने की फुर्सत न थी। वह तो अजायब के साथ छाया की तरह लगा रहता था। चूँकि हड़ताल होने ही वाली थी, इसलिए व्यस्तता और भी बढ़ गई थी।

लाख बातचीत के बावजूद मैनेजमेंट एस से मस नहीं हुआ। हड़ताल घोषित समय पर हुई। सारे मजदूर गेट पर आ गए। रोज गेट मीटिंग होने लगी। कोई ने कोई नेता बाहर से आता और मजदूरों को सम्बोधित करता। नारे लगते 'इन्कलाब जिंदाबाद', 'जो हमसे टकराएगा, चूर-चूर हो जाएगा।'

मजदूरों के जोश में कमी नहीं थी। क्रांतिकारी नारे रोज बुलन्द हो रहे थे, लेकिन महीना बीतते न बीतते मजदूरों के हौसले पस्त होने लगे। कुछ लोग तो सरेंडर करने पर उतर आए। लेकिन मजदूर नेता थे कि सम्मानजनक समझौता करना चाहते थे। सिर झुकाना नहीं।

हड़ताल के दूसरे महीने में प्रवेश करते ही मजदूरों की हालत नाजुक हो गई। बनिये का उधार चढ़ने लगा। दाल-सब्जी के भी टोटे पड़ने लगे, जैसा कि अक्सर होता है, मजदूरों के बीच तोड़-फोड़ की जाती है। उनके बीच फूट डाली जाती है। उनकी शक्ति को कमजोर कर उन्हें सरेंडर करने पर विवश किया जाता है। इस हड़ताल में भी यही सब हथकंडा अपनाया गया। कुछ लोग टूटे भी और मैनेजमेंट से जा मिले, फिर हड़ताल तुड़वाने की जी-जान से कोशिश करने लगे। ऐसी स्थिति में मैनेजमेंट की भी बन आई। मारपीट की भी घटना घटी। अजायब को माथे पर चोट लगी। दो-चार अन्य मजदूरों को भी चोटें आईं। बावजूद इसके मैनेजमेंट के इशारे पर पुलिस मजदूरों को ही पकड़ कर ले गई। लेकिन दूसरे दिन हड़ताल की सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ा। बल्कि इससे मजदूरों का जोश और भड़क उठा। 'मैनेजमेंट मुर्दाबाद' के नारे जोर-जोर से लगने लगे।

अजायब फुलवा के घर आया और बताया कि पुलिस गनेसी को पकड़कर ले गई है। सुखिया इस खबर को सुनते ही रोने-धोने लगी। अजायब ने उसे ढाढ़स बँधाया। पुनः फुलवा को समझा-बुझा कर लौट गया। किंतु फाकेशी की हालत के बारे न उसने कुछ पूछा, न किसी ने बताया।

मास्साब को हड़ताल के बारे में पता था। उन्हें जब गनेसी की गिरफ्तारी के बारे में पता चला तो वे तिलमिला उठे! पता नहीं क्यों? वे गुस्से में थाना पहुँचे और व्यक्तिगत मुचलके पर गनेसी को छोड़ा जाए। दारोगा परिचित था, इसलिए ज्यादा हुज्जत नहीं करनी पड़ी।

गनेसी घर आया। सुखिया उसे देखते ही तमक उठी "काहे जी, इस बुढ़ीती में मार-पीट करने की सूझी थी?"

"मार-पीट! किसने कहा है?"

"और कौन? नेता जी आए थे?"

"हम लोगों को तो झूठे फँसाया गया था, मार-पीट करने तो गुण्डे आए थे।"

"फिर पुलिस काहे पकड़ ले गई?"

“ई सब तुम्हारे भेजा में नहीं अंटगा। चुप ही रहो तो अच्छा है।”

“हाय दर्ईया! ई बुढ़ारी में मारपीट करि हैं और हम...।”

“छोड़ो ई टंट बखेरा। कुछ खाने को हो तो दो। बड़ी भूख लग रही है।”

“हम त कै दिन फुलवा से कह रहली है कि तोरा पासे सोनवा वाला जे हार हो, ओकरा गिरवी रख के दाल-चाउर लेव आव ही, लेकिन ऊ मानते न है!”

“सोनवा वाला हार?” गनेसी चौंका!

सुखिया तो अपने सहज रौ में बात कह गई थी। उसे याद ही नहीं रहा था कि हार की बात उसने गनेसी से छिपा रखी है। अचानक उसके दिमाग में टन से बजा। हाय! वह क्या कर बैठी! तत्क्षण ही वह संभली “मास्साब बीमारी में सेवा के लिए दिए थे।”

“तो अब तक ई बात हमरा से छुपाए काहे रखा।...ऊहे कहें कि मास्साब के दिल में हमरे लिए एतना ममता कहाँ से पैदा हो गया कि हम्मरा छुड़ावे खातिर थाना पहुँच गए।”

“तुम त बात का बतंगर बनाने लगे हो। मास्साब अइसन नहीं हैं।”

“अइसन नहीं हैं, तब कइसन हैं?”

सुखिया को काटो तो खून नहीं। पति के इस तरह के जवाब सुनकर सन्न रह गई। उससे किसी तरह का जवाब देते नहीं बना। उसने चुप रहने में ही भला समझा।

“फुलवा कहाँ है?”

“मास्साब के यहाँ गई है।”

“काहे?”

“घर में कुछ नहीं था, फुलवा को मास्साब के इहाँ आटा के लिए भेजा है।” अग्नि में जैसी ही घी पड़ने से धधक उठती है, वैसे ही पत्नी की इस बात को सुनकर गनेसी क्रोधित हो उठा। उसने आव देखा न ताव। चुपचाप उठा। सीधे मास्साब के घर पहुँचा। उस समय फुलवा मास्साब के लिए चाय बना रही थी। मास्साब चौकी पर अधलेटे कोई पत्रिका उलट-पुलट रहे थे।

गनेसी ने बाहर से ही आवाज दी “फुलवा! गे फुलवा!”

फुलवा तुरन्त बाहर निकली “का हौ बाबू।”

“चल, घर चल,” गनेसी ने उसका हाथ पकड़ा और घसीटते हुए घर ले आया, रास्ते भर फुलवा रोती-सिसकती और पूछती रही “का बात है बाबू!” लेकिन गनेसी के मुँह से एक भी बकार न फूटा।

मुहल्ले में जिन लोगों ने भी इस दृश्य को देखा, उनके दिलों में एक गुदगुदी-सी पैदा हुई। फुसफुसाहट चारों ओर बिखर गई, “अच्छा प्रेम-प्रसंग है भाई!” मर्दों ने कहा।

औरतों ने टिप्पणी की “छी-छी! चमार की बेटी और ब्राह्मण देवता। इसे ही कहते हैं घोर कलयुग।”

गनेसी ने फुलवा को लाकर कमरे में पटक़ा और उल्टे पाँव कमरे से बाहर निकल गया। वह सीधे अजायब के पास पहुँचा। अजायब उस समय मजदूरों को सम्बोधित कर रहा था। वह बतला रहा था मैनेजमेंट कैसे लाठी और गोली पर उतर आया है। हमारे साथियों को जेल भिजवाने की कोशिश में लगा है। लेकिन हम भी सरेंडर करने वाले नहीं हैं, हमें मालूम है कि हड़ताल लम्बी खिंच जाने की वजह से आप लोगों को भी काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है, हम लोग सरकार से भी हस्तक्षेप करने के लिए कह रहे हैं। ताकि समझौता शीघ्र हो जाए। इसी सम्बन्ध में जानकारी देने के लिए हमारी पार्टी के विधायक हमारे बीच आए हैं, अब माइक में उन्हीं को सौंप रहा हूँ। एक बार आप लोग जोर से नारा लगाइए ‘इंकलाब, जिन्दाबाद! जो हमसे टकराएगा, चूर-चूर हो जाएगा।’

विधायक को माइक सौंपकर अजायब मंच से नीचे उतर आया। विधायक ने मजदूरों को सम्बोधित करना शुरू किया। इधर गनेसी तत्काल अजायब के पास पहुँचा। उसे एकांत में ले गया। पहले तो अजायब चौंका! गनेसी यहाँ कैसे? लेकिन जब गनेसी ने पूरी बात बताई तो उसे समझ में आया। किन्तु गनेसी की बातों को सुनकर अजायब जरा भी उत्तेजित नहीं हुआ। बल्कि गनेसी को समझाते हुए उसने कहा

“अभी यह सब करने का वक्त नहीं है। लड़ाई निर्णायक दौर पर पहुँची हुई है और तुम फुलवा का रोना लेके बैठ गए हो। तुम्हें फुलवा के साथ ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए था।”

अजायब की बातों से गनेसी का गुस्सा थोड़ा शान्त हुआ। किन्तु उसका मन ज्यों का त्यों अशान्त बना रहा, उसने नरम पड़ते हुए कहा

“लेकिन आपको मास्साब से बात करने के लिए चलना ही होगा।”

“ठीक है। समय निकालकर जरूर आऊँगा। तुम इस वक्त घर जाओ। मन को शान्त करो। और देखो, फुलवा से भी लड़ना-झगड़ना मत। अभी यह सब करने का टाईम नहीं है।”

गनेसी लौट आया। सीधे कमरे में जाकर खाट पर धम्म से पड़ रहा।

उसकी भूख-प्यास न जाने कहाँ गायब हो गई थी। दिमाग में सिर्फ एक ही बात बार-बार कौंध रही थी। फुलवा, मास्साब! मास्साब, फुलवा!

सुखिया डरती हुई निकट आई। बोली “खाना निकालते हैं।”

गनेसी अविचल भाव से लेटा रहा। सुखिया के मन में कई विचार उठ रहे थे, गिर रहे थे। पहले उसने पानी से भरा लोटा उसकी खाट के पास लाकर रख दिया। कुछ कहा नहीं।

गनेसी उठा। बाहर निकल हाथ-पाँव धोया। पुनः खाट पर आकर बैठ गया। इस बीच सुखिया रोटी और तरकारी की थाली उसके आगे रख गई थी। यंत्रचालित-सा गनेसी ने थाली को खींचा और खाने लगा। सच ही कहा गया है, मनुष्य अन्न के आगे कभी-कभी कितना छोटा पड़ जाता है। गनेसी की भी हालत ऐसी ही थी।

भोजन समाप्त कर वह पुनः खाट पर आकर लेट गया। सुखिया निकट आई। उसने अपने स्वर को जितना कोमल हो सकता था, कोमल बनाते हुए पूछा

“नेताजी भेंटाए थे?”

“हाँ?”

“क्या बोले?”

“समय मिलते ही आँगें।” इतना कहते हुए उसने चादर तान ली और बातचीत का सिलसिला बंद कर दिया।

उधर मास्साब दिन भर सोचते रहे, मन को समझाते रहे और बेचैन होते रहे। सबेरे की घटना उनके दिमाग से निकल ही नहीं रही थी, लोगों ने क्या सोचा होगा? फुलवा के दिल पर क्या गुजर रही होगी? वे सोचते, मन भारी हो जाता, दिल बुझने लगता। कई बार सोचा, फुलवा से एक बार मिल आवें, लेकिन न जाने क्यों पाँव एक भी कदम आगे नहीं बढ़ पाया। इसी उधेड़-बुन में दिन बीत गया और साँझ घिर आई।

साँझ को अजायब पहुँचे। परन्तु गनेसी के यहाँ जाने की बजाय मास्साब के पास पहुँचे। मास्साब ने अजायब को देखते ही पूछा

“संघर्ष का क्या हाल है?”

“हाल तो बहुत अच्छा नहीं है, किन्तु हमारे विधायक ने मुख्यमंत्री से बात की है। सम्भव है, उनके हस्तक्षेप से बात कुछ बन जाए।”

“भगवान करे, मामला जल्द से निपट जाए।”

“हम लोग तो कोशिश में लगे हैं।”

“कोशिश का फल अच्छा ही निकलेगा।”

“देखिए...।”

“आप यह पत्रिका देखिए, जब तक हम चाय बना लेते हैं।”

“बैठिये भी। दिन भर तो चाय पीते ही रहते हैं।”

“नहीं, यह कैसे हो सकता है, आप हर रोज थोड़े आते हैं।” इतना कहते हुए मास्साब रसोईघर में घुस गए।

थोड़ी देर बाद मास्साब चाय लिए बाहर निकले “लीजिए, चाय पीजिए।”

अजायब ने चाय का सिप लेते हुए कहा “मास्टर साहब! आज मैं आपके पास खास उद्देश्य से आया हूँ।”

“बताइए, क्या उद्देश्य है?”

मास्साब का अवचेतन मन अजायब के आने का मतलब समझ तो गया था, लेकिन इस तरह के सीधे सवाल के लिए तैयार न था। इसलिए जवाब देने में थोड़ी देर हुई।

“खूब अच्छी तरह से सोच लीजिए, तभी बताइए।”

“देखिए नेता जी! आपसे कुछ छिपा नहीं। आप ही के आग्रह पर मैंने उसे पढ़ाना शुरू किया था। वह पढ़-लिख रही थी। घर का कुछ काम-धन्धा भी कर देती थी, बस्स।”

“लेकिन वो सोने वाला हार।”

मास्साब चौंके! मस्तिष्क की नसें अब तड़कीं। ऐसा तो उसने सपने में भी नहीं सोचा था।

“उसे तो बस यूँ ही दे दिया था।”

“इतना कीमती हार! बस यूँ ही। इसका क्या मतलब हुआ?”

“मतलब जो भी निकालिए। किंतु बात कुछ भी नहीं।”

“लेकिन अब बात बहुत आगे बढ़ गई है, इज्जत का सवाल है।”

“आज दिन भर मैं इन्हीं बातों में उलझा रहा। सोचता रहा हूँ, विचारता रहा हूँ, अपने व्यवहार के एक-एक पहलुओं पर नजर डालता रहा हूँ। लेकिन अपने को कहीं से भी, किसी भी कोण से अपराधी नहीं देख पा रहा हूँ। फिर भी अगर अपराधी हूँ तो सजा के लिए तैयार हूँ।”

“मैं तो कहूँगा, आपको भी एक स्त्री की जरूरत है, फुलवा से शादी कर लें।”

मास्साब तनिक ठमके, फिर सोचकर कहा “विचार करूँगा।”

अजायब सीधे वहाँ से उठकर सीधे गनेसी के पास आए। गनेसी उस वक्त घर पर नहीं था। सुखिया ने बताया “फुलवा के बाबू हरिजन संघ में गेल थू हे।”

“हरिजन संघ।”

“बोले कि सलाह-मशविरा के खातिर ऊहाँ जा रहे हैं।”

“जब उन्हीं लोगों से सलाह-मशविरा करना था तो मुझको क्यों बुलाया।”

“आपको आने में देर हुई इसलिए।”

“इसलिए मजदूर संघ से नाता तोड़कर हरिजन संघ में घुस जाएँगे।”

“जे हमरा का पता। तनिक देर रुक न जाइए। तुरन्ते चले आवेंगे।”

“नहीं हम चलते हैं। अब कल भेंट होगी।” चलते-चलते उन्होंने फुलवा को सम्बोधित करते हुए कहा “देखो, फुलवा बेटी! तुम घबराना नहीं। हम तुम्हारे साथ हैं। मास्टर कोई बुरा आदमी नहीं है। हम उससे बात करके आ रहे हैं।”

अजायब चाचा की बात सुन फुलवा के दिल को थोड़ी तसल्ली हुई, नहीं तो

दिन भर से दिल धक्-धक् कर रहा था। एक हलचल सी मची थी दिल में। चाचा की बात सुनकर थोड़ा सुकून मिला। अन्यथा पिता के रूख को देख उसका दिल ही बैठा जा रहा था। न जाने क्या होगा? मास्साब के साथ कैसा व्यवहार किया जाएगा? लेकिन अजायब चाचा की बातों से ढाँढ़स बँधी। वह थोड़ा आश्वस्त हुई।

इसी बीच गनेसी आ पहुँचा। आते ही उसने पूछा “नेता जी आए थे?”

जवाब सुखिया ने दिया “हाँ, आए थे। बाकी गुस्सा के गए हैं।”

“काहे?”

“कह रहे थे, हरिजन संघ से ही अगर नाता जोड़ना था तो मजदूर संघ से नाता क्यों जोड़ा था?”

“तो हम्म का खुशी से गए थे? आपत-विपत में लोग अपनों के पास नहीं जाएँगे तो कहाँ जाएँगे?”

पत्नी ने आगे पूछा “ऊँहा का बात हुई?”

“उन लोगों का कहना है कि मास्साब को शादी करनी होगी।”

“कहाँ ब्राह्मण और चमार की बेटी! शादी कैसे होगी?”

“उन लोगों ने कहा है, कि हम उन पर दबाव डालेंगे।”

“हम तो कहते हैं कि फुलवा का बिआह कहीं और कर दो। झूठ-मूठ का बखेड़ा करने का फायदा?”

“बखेड़ा हम कर रहे हैं?”

“लेकिन बात शान्ति से भी हो सकती है न?”

“तो हम कहाँ झगड़ा कर रहे हैं?”

“कल नेताजी बुलाय हैं, न जाने उन्होंने मास्साब से का बात की है।”

“ठीक है। उनसे भी मिल लेंगे। लेकिन बात वही होगी जो हरिजन संघ फैसला करेगा। आखिर जात का मामला है।”

इस तरह बातचीत करके गनेसी सो गया। लेकिन तड़के ही उठा और हाथ-मुँह धोकर फ़ैक्ट्री की ओर निकल गया। अजायब से गेट पर ही भेंट हो गई। अजायब ने कहा “चलो चाय पीते हैं। वहीं बात होगी।”

दोनों चाय की दुकान की ओर बढ़ चले। रास्ते में अजायब ने पूछा “तुम इतना परेशान क्यों हो? फुलवा का मामला सिर्फ तुम्हारा नहीं, हमारा भी है।”

“बेटी के मामले को लेकर भला कौन बाप परेशान नहीं होगा?”

“लेकिन फुलवा के मामले में तो मैं ही ज्यादा दोषी हूँ। मैंने ही उसे मास्साब के पास भिजवाया था।”

“हम का जानते थे कि शिक्षा के आड़ में यही सब होगा।”

“कुछ भी नहीं हुआ है गनेसी। तुम खुद उसे तिल का ताड़ बना रहे हो। अब,

पुराना जमाना नहीं रहा कि हरिजन-ब्राह्मण का विवाह नहीं हो सकता। शहर में तो यह सब खूब हो रहा है। भले गाँव की मानसिकता अभी नहीं बदली है।”

अजायब ने शादी की बात को इतने सहज ढंग से रखा कि गनेसी को विश्वास ही नहीं हो रहा था कि ऐसा भी हो सकता है।

“क्या मास्साब तैयार हैं?”

“मैंने कहा न? उनसे बातचीत की है। वे तैयार हैं। जाओ जाकर शादी की तैयारी करो।”

“हड़ताल के बीच में?”

“मैंने तो पहले ही कहा था कि इन सब बातों के लिए समय नहीं है। बाद में शान्ति से इस काम को निपटा लेंगे। लेकिन तुम्हें ही जल्दी पड़ी।”

“ठीक है। मैं अभी जाता हूँ।”

अजायब से मिलकर गनेसी का माथा ठंडा पड़ चुका था। किंतु एक नामालूम-सी शंका फिर भी घर किए रही। इसमें मास्साब की कोई चालाकी नहीं? यह सोचकर वह पुनः हरिजन संघ के नेता के पास पहुँचा।

हरिजन संघ के नेताओं ने जब बाजी अपने हाथ में देखी तो मन थोड़ा और आगे बढ़ा। संघ वालों ने गनेसी को समझाया “मास्साब अगर फुलवा से शादी करने के लिए तैयार हैं, तो पहले उन्हें जाति परिवर्तन करना होगा।”

“जाति परिवर्तन।” गनेसी ने पूछा।

“हाँ, जाति परिवर्तन। उन्हें हमारी जाति में शामिल होना होगा।”

“क्या मास्साब इसके लिए तैयार होंगे।”

“हमारी फुलवा तो ब्राह्मणी नहीं बन सकती। फिर तो उन्हें ही चमार बनना पड़ेगा।”

“मगर मास्साब से बात करेगा कौन?”

“हम लोग करेंगे।”

“जब सभी लोगों की राय यही है, तो हमें क्या एतराज होगा?” गनेसी ने जैसे बुझे ही मन से कहा। क्योंकि इस बात से उसके दिल में कोई खुशी उत्पन्न नहीं हो रही थी।

दूसरे ही दिन सुबह-सुबह हरिजन संघ के सभी नेता मास्साब के घर जा पहुँचे। मास्साब ने आगे बढ़कर स्वागत किया और उन्हें बरामदे में बिठाया। चाय के लिए पूछा और खुद चाय बनाने अन्दर चले गए।

चाय लेकर जब मास्साब उनके बीच आए उन लोगों ने सीधे बात रखी “आप फुलवा से शादी करने के लिए तैयार हैं। यह अच्छी बात है। लेकिन इसमें एक अड़चन है?”

“फुलवा विवाह करके ब्राह्मणी तो नहीं बन सकती। इसलिए आपको चमार बनना पड़ेगा।”

“चमार बनना पड़ेगा।”

“हाँ, चमार बनना पड़ेगा।”

“शास्त्रों में तो लिखा है कि स्त्री शादी के बाद पति की जाति की स्वमेव हो जाती है।”

“यह सब कहने की बात है। व्यवहार में तो ऐसा नहीं होता।”

“व्यवहार तो हम लोग ही बनाते हैं न?”

“हम लोग नहीं? आप लोग।”

“धर्म और कानून क्या इस जाति परिवर्तन को मान्यता देगा?”

“आप किस धर्म और कानून की बात करते हैं? क्या धर्म और कानून ने हमें आज तक इन्सान माना है?”

“अगर ऐसी बात है तो मैं तैयार हूँ जाति परिवर्तन के लिए।”

“ठीक है। हम लोग बाद में सूचित करेंगे कि जाति परिवर्तन कैसे होगा।”

मास्साब ने हाँ तो कर दी किन्तु भीतर का संस्कार फुटकार मार कर उठ गया। क्या यह सम्भव है। क्या ऐसा हो सकता है! उनके आधुनिक विचार ने तत्काल उत्तर दिया, क्यों नहीं हो सकता? इस भौतिक संसार में क्या कुछ नहीं हो सकता?

फिर लोकापवाद के डर ने उन्हें धर दबोचा। मन छौ-पाँच करने लगा। तभी अन्दर से दूसरी ध्वनि निकली “क्या भगवान ने शबरी के जूठे बेर नहीं खाए थे। लोग कहाँ नाराज हुए उनसे? फिर भी लोग उनकी पूजा करते हैं।”

“तो क्या लोग तुम्हारी भी पूजा करेंगे? छी:। साक्षात् ब्राह्मण धर्म का नाश! पृथ्वी कैसे बर्दाश्त करेगी इतने बड़े महापाप को?” यह दूसरी ध्वनि थी।

“यह महापाप कैसे है? प्रेम में तो भगवान बसते हैं न! प्रेमी के लिए नंगे पाँव दौड़े चले आते हैं भगवान! अधम से अधम पापियों को भी गले लगाते हैं।”

ध्वनि-प्रतिध्वनि का यह खेल देर तक चलता रहा। किन्तु मास्साब के ‘कॉन्शस’ ने हार नहीं मानी। उन्होंने मन ही मन कबीर दास की पंक्तियाँ गुनगुनाई

‘प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय,

राजा-प्रजा जेहि रूचे, सीस दई लेय जाय।’

इससे दिल को बड़ा सुकून मिला और मन पूरी तरह शान्त हो गया।

अन्ततः जाति परिवर्तन की भोंडी क्रिया प्रारम्भ हुई। बाँसों का एक मचान बनाया गया था। मचान के नीचे ब्राह्मण देवता को बिठा दिया गया। मचान को चमारों ने स्नान कराना प्रारम्भ किया। उसका गंदला जल ब्राह्मण के शरीर पर गिर रहा था। इस क्रिया से वह अधम, नीच जाति का चमार बन रहा था।

गनेसी को यह सब देखकर पीड़ा हो रही थी। उसकी आत्मा ऐंठ रही थी। वह अचानक चीख उठा “बंद करो यह नाटक! तुम्हारी इस जलील हरकत से समाज नहीं बदलने वाला। छोड़ो, मेरी बेटी की चिन्ता! जिन्दगी भर कुँआरी रहेगी। मगर मनुष्यता का तो इस प्रकार हनन मत करो।”

“बापू!” फुलवा अपने बापू से जा लिपटी थी। भीड़ शान्त खड़ी थी। अवाक, स्तब्ध और विमूढ़! कोई कैमरामैन उपस्थित न था। अन्यथा करुणा और विद्रूपता, दोनों दृश्यों को अपने कैमरे में हमेशा-हमेशा के लिए कैद कर लेता।

गुरुचरण सिंह

काली सड़क

मैं उसके उदास और नीरस, सूखे चेहरे को देखता रहा। नीम के पेड़ के नीचे वह अपनी खटिया पर बैठा किसी गहरी सोच में खोया हुआ था। एक कौवा न जाने कब से काँव-काँव कर रहा था पर वह अनजान था। लगभग पचास-साठ कदम पर एक कुआँ था, जहाँ कुछ औरतें बतियाने और पानी भरने में व्यस्त थीं। कुएँ की टूटी जगह पर बैठी एक अधेड़ औरत शायद अपनी बहू की निन्दा कर रही थी।

उसकी नजर मुझ पर पड़ी। वह कुछ नहीं बोला। मैंने ही राम-राम कहा। उसने खटिया पर बैठ जाने का इशारा किया। मैंने बैठते हुए पूछा

“क्या बात है बाबा। इतने उदास क्यों।”

उसने मुझे पहचानने की कोशिश की। मुझे लगा उसकी आँखों के आगे गहरी धुंध है। सभी पहचाने चेहरे अनजाने हो गए हैं। शायद उसे किसी पर विश्वास नहीं रहा।

“तुम भी तो अंग्रेजी कपड़ों में हो।” वह बोला।

मैंने अपनी पैंट-कमीज को देखा। गर्मी के कारण मैंने टाई उतार दी थी। न समझते हुए मैंने कहा “फिर क्या हुआ!”

“मैंने तब भी कहा था,” लगा वह कहीं गहरे अतीत की कन्दराओं में खो गया है। पेड़ पर कौवा फिर बोला। मैंने ढेला फेंक कर भगा दिया। कौवे की कर्कश आवाज मुझ से झेली नहीं जाती। पैंट की जेब को टटोल कर देखा माऊथ आर्गन पड़ा था। इम्पोर्टिड। दिल्ली से खरीदा था। पहले कितना बेसुरा बजा था। पर धीरे-धीरे मैंने सीख लिया था। बाबा को सुनाऊँ, मैंने सोचा। पर बाबा को देख मन नहीं हुआ। मैंने कहा “आप कुछ कह रहे थे।”

“मैंने तब भी कहा था यह तारकोल की लम्बी सड़क हमसे सब कुछ छिन लेगी हमारे लोक-विरसे, हमारी संस्कृति-सभ्यता पर किसी ने नहीं सुना। यह सड़क जहाँ-जहाँ गई है, वहाँ आदमी नहीं बचा। बेटा, इस गाँव में कभी आदमी बसते थे... आज सब शैतान रहते हैं।”

पीढ़ियों का अन्तराल मैंने मन में सोचा। बाबा की बात पर मुस्कराने के अलावा और किया भी क्या जा सकता था। जब तक वे गाँव के प्रमुख (सरपंच) थे, उन्होंने डट कर सड़क का विरोध किया था। उनके इस रवैये से सभी गाँव वाले परेशान हो गए थे। ऐसा मैंने सुना था। गाँव वाले सड़क के साथ आर्थिक विकास और खुशहाली को जोड़ रहे थे।

“तुम समझते क्यों नहीं...सड़क बनने से हमारी दरिद्रता दूर हो जाएगी।”

बाबा की दलील थी “जानता हूँ, पर हम कितने दरिद्र हो जाएँगे उस पर भी तो सोचो! हमसे हमारे मूल्य, संस्कृति, हमारे गीत-त्योहार सब छिन जाएँगे।”

लोग हँस दिए थे “वह कैसे?”

बाबा ने समझाया था पर लोग नहीं समझे।

कुएँ के दूसरी तरफ तारकोल की लम्बी सड़क थी साँप-सी, बलखाती। खेतों के बीच से गुजरती, दूर तक फैली क्षितिज में डूबती। कुछ युवतियाँ पानी भरने के लिए आ गई थीं। उनके हाथ की चूड़ियों की खनक तथा उनका वार्तालाप, जिसमें अंग्रेजी तथा संस्कृत के शब्द घुलमिल गए थे, खटिया तक पहुँच रहे थे। एक बस के घरघराने की आवाज उन दोनों मधुर ध्वनियों को तोड़ती उभर रही थी। जैसे ही वह बस कुएँ के पास से गुजरी कुछ यात्रियों के मुँह से निकली सीटी की आवाज मेरे दिल को चीर गई।

बाबा ने मेरी ओर देखा। शायद वे मुझे कुछ कहना चाहते थे।

“तुम रामदीन के बेटे हो न!”

“हाँ!” मुझे अच्छा लगा, बाबा ने मुझे पहचान लिया है।

“जाओ, घर जाओ। यह सड़क तुम्हारे घर तक भी पहुँच गई है।”

बाबा कितनी उलझी हुई बातें करने लगे हैं। पर मन में शंका पैदा करने के लिए उनका यह एक वाक्य ही बहुत था। मैं उठने लगा तो वे बोले “तुम्हारा घर पहला नहीं है। यह सड़क इससे पहले भी कइयों को निगल चुकी है।”

शंका गहरी हो गई। मैं उतावला हो गया। पूछा “पर बताओ तो, क्या हुआ है?”

“कुछ नहीं बेटा,” एक गहरी साँस छोड़ते हुए वे बोले “काली सड़क जो करेगी, वह काला ही तो होगा।”

एक पल भी रूकना भारी हो रहा था।

“तुम तो कई सालों से शहर में हो! बेटा! जब शहर गाँव में आता है, तो उसे रोका नहीं जा सकता। फिर हमी लोगों ने तो चाहा था कि शहर गाँव में आए।”

मैं घर की ओर भागा। पर पत्र में तो कुछ नहीं लिखा था। सिर्फ एक वाक्य यदि कुछ दिनों के लिए गाँव आ सका तो अच्छा रहेगा। और मैं चला आया था। मुझे पैसों

की जरूरत थी। सोचा गाँव भी हो जाएँगे और पैसे भी ले जाएँगे। बस अगले साल ग्रेजुएट हो जाऊँगा। फिर कहीं नौकरी, शहर में मकान और वहीं किसी लड़की से विवाह। बाबा मेरी आँखों के सामने फिर घूम गए। हम धीरे-धीरे गाँव से कटते जा रहे हैं। गाँव बेगाना होता जा रहा है।

घर पहुँचा तो बाबा की तरह सभी उदास मुँह लटकाए बैठे हुए थे। पास-पड़ोस का कोई भी नहीं था वहाँ। मुझे याद आया जब मैं छोटा था पेट में दर्द हुआ था। मेरे रोने की आवाज सुन पास-पड़ोस के सभी लोग इकट्ठा हो गए थे। वे चिन्तातुर थे और वे कुछ भी करने को तैयार। पर आज शायद लोगों के पास समय नहीं है।

“बापू क्या हुआ? माँ क्या हुआ?” पर किसी के पास जवाब नहीं था। मैं भी माँ के पास, अनेक प्रकार की शंकाओं से घिरा हुआ बैठ गया। छोटा भाई माँ के पास ही बैठा था। मैंने घर के अन्दर देखा...सिर्फ अँधेरा था। बहिन कहाँ है? स्थिति धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगी।

“सीता कहाँ है?” मैंने माँ से पूछा।

उत्तर बापू ने दिया “हमने इस काली सड़क को हटाने की बहुत कोशिश की, पर अब तो बन गई है, हट नहीं सकती। बाबा ने ठीक कहा था। खुशहाली भी कहाँ आई। इससे तो पहले ही ठीक थे। गुजर-बसर तो होता था। अब तो वह भी नहीं होता।”

“पर सीता कहाँ है?” मैंने फिर पूछा।

“क्यों बाबा ने नहीं बताया तुम्हें।”

मैं चुप रहा। माँ ने पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा “थका होगा। मुँह-हाथ धो ले। मैं तेरे लिए खाने को कुछ बना देती हूँ।”

‘माँ क्या सब कुछ सहन कर सकती है’ मैंने सोचा।

फिर माँ से ही पूछा “पर सीता कहाँ है?”

“बाबा ही बताएँगे वह कहाँ है। हमने तो सिर्फ हरा देखा है सड़क बनने से आने वाली हरियाली...शहरी लोगों की बातों की हरियाली, नेताओं के भाषणों की हरियाली। इस हरियाली में कितनी चमक होती है। कैसे मोह लेती है यह...।”

वह उठकर चली गई। वहाँ बैठना व्यर्थ था। मैं फिर भागकर बाबा की खटिया पर आ गया “बताओ बाबा मेरी बहन को क्या हुआ? वह कहाँ है? कैसी है?”

बाबा की आँखों में आँसू छलक आए।

“बेटा, तुझे तो अपनी बहन की चिन्ता है। मुझे तो पूरे गाँव की चिन्ता है। इसी चिन्ता ने मुझे अधमरा कर दिया है।”

वे फिर विचारों में खो गए। मैं समझ गया, धीरे-धीरे वे सारा रहस्य खोल देंगे। बस मुझे धैर्य से बाबा के पास बैठना है और उनकी बातों को सुनना है।

“तू उस समय छोटा था जब यह सड़क बनी थी। उद्घाटन के लिए प्रांत के मंत्री आए थे। कितनी भीड़ थी। आसपास के सभी गाँवों से लोग आ गए थे। मंत्री ने हमें सिर्फ हरियाली दिखाई थी सड़क बनने से कितने लाभ होंगे कितनी लम्बी सूची थी। लोग मेरी तरफ देख-देखकर मुस्करा रहे थे। पर मैं समझ रहा था, इस समय यहाँ सभी मंत्री के लोग हैं। और उसी दिन सड़क बनने का फल इस गाँव को मिल गया था, गाँव के पतन की कहानी प्रारम्भ हो गई थी।” वे बोले।

“वह कैसे।” मैंने विस्मय से पूछा।

“मंत्री ने यहीं मैदान में तम्बू गाड़ लिया था। उनका इस गाँव में एक दिन रुकने का कार्यक्रम था। जो मैं समझा था लोग उसे समझने को तैयार नहीं थे। उस समय लोग मंत्री के दिखाए सब्ज-बाग में घूम रहे थे। सरपंच के घर से खाने-पीने का सामान लेकर फुलवा मंत्री के यहाँ आ गई थी। जानते हो न फुलवा को। याद करो। सब कुछ साफ हो जाएगा। बेटा, सड़क ने हमारा स्वागत किया था। फुलवा इसी कुएँ में कूद गई थी। क्या करते एक ही कुआँ है। आज हम फुलवा के अपवित्र शरीर का पानी पीते हैं?”

“उस मंत्री का क्या कुछ नहीं हुआ?”

“भीड़ हमने भी इकट्ठा की थी। न्याय की दुहाई भी दी थी, पर उसके पास सिपाही थे, ताकत थी। हम गरीब थे...असहाय थे। कौन सुनता है?”

“कोर्ट-कचहरी किसी ने साथ नहीं दिया?” मैंने पूछा।

बाबा, मेरी बात पर शायद मुस्कराना चाहते थे, पर मुस्कराहट उनके होंठों पर उभर नहीं पाई। मेरी बात से उदासी और गहरी हो गई। वे बोले “बेटा, गरीबी हर बात के आड़े क्यों आ जाती है।”

मैंने कहा “बात गरीबी की है या अशिक्षा की, यह तो बहस का विषय हो सकता है या हो जाएगा। कृपया बताएँ मेरी बहन कहाँ है?”

“सरपंच आया था मेरे पास, बोला बाबा बताओ क्या करें?”

मैंने कहा “करने को तो बहुत कुछ किया जा सकता है, पर कौन करेगा? कोर्ट-कचहरी के लिए पैसा चाहिए। बार-बार शहर जाना होगा। वकील पैसा लेगा और फिर सालों धक्के खाने के बाद क्या होगा कहा नहीं जा सकता?”

“तो क्या हम चुपचाप अन्याय को सहते रहें।” मेरा सवाल था।

“नहीं, मैं ऐसा नहीं कहूँगा।”

“चुप रहेंगे तो दबते रहेंगे।”

“बिल्कुल।” बाबा ने धीरे से सिर हिलाया।

मैं उनके पायतान पर मौन बैठा था। गाँव वाले बाबा की कितनी इज्जत करते हैं। हर बात में उनकी सलाह लेते हैं।

“बेटा तुम तो पढ़े-लिखे हो। शहर में रहते हो। वहाँ के तौर-तरीके जानते हो। वहाँ तो सड़कों का जाल है। ऐसे हादसे तो वहाँ रोज होते होंगे। क्या होता है वहाँ? कितनों को न्याय मिल पाता है। गरीब वहाँ भी पिसते हैं, वहाँ भी पिसते हैं।” बाबा बोले थे। फिर बाबा ने तक्रिए के नीचे से अखबार निकाला और मेरी ओर फेंक दिया “देखो, हमारे गाँव में भी अखबार आता है। रेडियो बोलता है। इस एक दिन के अखबार में छः लड़कियों की वही हालत हुई है, जो तुम्हारी बहन की हुई। क्या होगा उनका?”

मैं सिर से पाँव तक सिहर उठा। गुस्से से होंठ काँपने लगे।

“बाबा बताओ किसने किया यह सब? मैं उसकी बोटी-बोटी कर दूँगा। बाबा बताओ मुझे।”

बाबा मौन रहे। कुछ क्षण बाद वे बोले थे

“कई साल पहले, मंत्री के आने पर मैंने हजारों लोगों को एक साथ देखा था। वहाँ भी भीड़ देखी थी, इधर से उधर भागते हुए लोगों की। गाँव की भीड़ में चेहरे परिचित थे, शहर की भीड़ में सभी अपरिचित। यहाँ हम मंत्री को सुनते हुए आपस में बातें कर रहे थे, सुख-दुख बाँट रहे थे। वहाँ बुलाने पर भी कोई नहीं बोलता। हमें लगा हम लोगों के बीच खो गए हैं। बहुत पहले मैंने कहा था सड़क बनते ही हम खो जाएँगे। शहर जाते समय मैंने गाँव के कुछ लोगों को साथ चलने के लिए कहा था, पर सभी के पास, दुनिया भर के काम थे। मुझे वे दिन याद आए जब सड़क नहीं थी सभी एक दूसरे पर जान वारने के लिए तैयार रहते थे। बेटा, सड़क पूरे जमाने को बदल देती है। दो दिन शहर में धक्के खाते रहे, किसी ने हमसे बात नहीं की। न लोगों ने, न पुलिस ने, न मंत्री ने। बेटा, हम गरीब हैं, दलित हैं, छोटी जाति के हैं। आजादी की आधी सदी देखने के बाद भी हम दलित हैं। और लगता है हमारे लिए कोई कानून या न्याय न पहले था न अब है।”

इतनी गहरी निराशा मैंने बाबा के चेहरे पर पहले कभी नहीं देखी थी। वे तो आस्थावान थे। आज उन्हें क्या हो गया? बाबा ने तक्रिए को ठीक किया। वे लेट गए। आँखें मूँद लीं। वे सोना चाहते थे या सोचना, मैं समझ न सका। मैं मौन उनके पास भारी बोझ लिए बैठा था। बाबा की आँखों से आँसू छलक आए थे।

“मैं बदला लूँगा...नहीं छोड़ूँगा उसे” मन में यह ठान कर जब मैं उठने लगा तो बाबा ने हाथ थाम लिया। बोले “बेटा, तुम पढ़े-लिखे हो, जो भी करना जोश में नहीं, होश में करना। दिमाग से काम लेना।”

“पर कुछ तो बताओ क्या हुआ, कैसे हुआ, किसने किया। मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा।”

“बेटा, तुम अकेले नहीं हो...ऐसे कई घर हैं गाँव में। पर वे कुछ नहीं कर

सकते। पता है राम भरोसे ने क्या कहा था हम गरीबों के साथ तो ऐसा होता ही आया है। जमींदारी थी तो जमींदार हमारी बहू-बेटियों की इज्जत के साथ खेलते थे। जमींदारी गई तो मंत्री, एम. पी. आ गए। हमारी दशा में कोई सुधार नहीं हुआ। खून के घूंट पीने के सिवाय हम और कर भी क्या सकते हैं। अब थानेदार ही आ जाए तो क्या कर लेंगे। मना करने पर चोरी या डकैती का जुर्म लगाकर अन्दर कर देगा। हमारी कोई बात नहीं सुनेगा।”

“कैसे नहीं सुनेगा हमें आवाज तो उठानी होगी।”

“गाँव में ही जब आदमी एक-दूसरे के लिए अपरिचित हो गया है तो फिर शहरों की तो बात ही क्या?”

क्या हम इकट्ठा नहीं हो सकते, आवाज नहीं उठा सकते। एकता में तो बल होता है। हम चाहें तो मंत्रियों की गद्दी को हिला सकते हैं। पर शायद बाबा ठीक कहते हैं... ‘कहाँ है एकता’ पर, मैं चुप नहीं बैठूँगा। मुझे पूरी बात पता चलने दो। मैं अकेले ही सरकार उलट दूँगा?

बाबा अकेले ही सारे गाँव के दुख को लिए जी रहे हैं। मेरा दुख अपना है, जो मुझे पागल बना रहा है। फिर बाबा का क्या हाल होता होगा। मैं सोचता हूँ, वे चाहें तो गाँव को इकट्ठा कर सकते हैं। पर शायद उनकी भी कोई नहीं सुनेगा। सभी कायरों का जीवन जीना चाहते हैं। चुपचाप सहते-झेलते हुए।

सीता के साथ जो घटा, वह नया नहीं था। अखबारों में इस प्रकार की घटनाएँ रोज छपती हैं। कभी कुछ नहीं हुआ। खबर पढ़कर पेपर एक तरफ रख दिया जाता है। ऐसी खबरें अब कहीं कचोटती नहीं। हम सभी पथरा गए हैं, हृदयहीन हो गए हैं। बाबा ने ही पूरी बात बताई थी। बेटा यह सब गरीबी के कारण हो रहा है। छोटी जाति वालों के पास भी अगर पैसा है तो वह आदमी अपनी जाति को पैसे की आड़ में छिपा लेता है। वह भी सम्मानित हो जाता है। इसलिए दलित वही है जो गरीब है और जो गरीब है वह निस्सहाय है, चुपचाप अन्याय और अत्याचारों को सहने के लिए विवश है। कुछ समय पहले भोलेनाथ की लड़की को शहर से एक दम्पति आकर ले गए थे। घर का काम-काज करने के लिए अच्छी पगार पर। दो महीने बाद चक्कर लगाने वह गाँव आई थी। अच्छे कपड़े पहने हुए। चेहरे पर रौनक थी। दो दिन बाद वह चली गई थी। गाँव की दो और लड़कियों को साथ लेकर। बस, वहीं से यह सिलसिला शुरू हुआ। वह तो सीता की मौत से पता चला कि शहर में उनसे क्या कुकर्म करवाए जाते थे। बाकी लड़कियाँ पैसे की चमक में रहीं या मजबूरी ने उन्हें समझौता कर लेने पर विवश किया। सीता नहीं सह पाई।

गुस्से से मेरे होठ काँपने लगे थे। बाबा से मैंने कहा “उन लोगों का मुझे पता दो मैं किसी को नहीं छोड़ूँगा।”

“मैंने बताया न हम शहर गए थे। शहरी कितने चालाक होते हैं सभी बातें उन्हीं के पक्ष में हैं। वकील और पुलिस ने कहा कुछ नहीं हो सकता। उसकी मौत के दो दिन पहले की तारीख में उसके लापता होने की पुलिस में रिपोर्ट दर्ज है। उन्होंने सभी काम पक्के कर रखे हैं।”

कुएँ की जगत पर अब भी औरतें खड़ी बतिया रही थीं। एक-दूसरे पर पानी उछाल रही थीं। जैसे गाँव में कुछ हुआ ही न हो। काली सड़क पर घरघराती एक बस आकर कुएँ की जगत के पास रुक जाती है। उसमें से अधेड़ उम्र का एक शहरी जोड़ा उतरता है और गाँव में दाखिल हो जाता है। मैं तथा बाबा चुपचाप उस जोड़े को गाँव की गलियों में जाते देखते हैं।

कुसुम वियोगी

और वह पढ़ गई

आज बैंक का अवकाश था। मैं रोज की तरह अपने ड्राइंग-रूम में बैठा अखबार पढ़ने में व्यस्त था। अचानक मेरी छोटी बिटिया हाँफती हुई दौड़कर आई और बोली, “डैडी जमादारिन अपनी लड़की को झाड़ू से पीट रही है।”

तभी मेरी एकाग्रता भंग हुई और मैं उसकी बात सुनने लगा। वह बार-बार मेरा हाथ पकड़ कर कहती, “डैडी उठो, उठ कर बाहर देखो तो सही।” शायद उसकी मारपीट मेरी बेटी को कहीं गहरे तक आघात पहुँचा, संवेदनशील बनाए जा रही थी।

ज्योंही मैं उसके साथ बाहर निकल कर आया तो गली में देखा कि पास-पड़ोस की महिलाएँ एवं बच्चों की भीड़ तमाशबीन बन तमाशा-सा देख रही हैं। उनका जातीय अहम् उन दोनों को छुड़ाने में आड़े आ रहा था। दूसरी तरफ उसकी माँ दनादन झाड़ू से वायलन-सा उसकी देह पर बजा रही थी। लड़की मूक बनी मार खाती रही।

रोजाना की तरह आज भी श्यामो झाड़ू-पंजर और सिर पर टोकरा लिए, मोहल्ला कमाने आई! और दिन तो अकेले कमाने आती थी। आज वह अपने साथ बड़ी लड़की को भी कमाने लाई थी, बड़े दिन की स्कूल की छुट्टियाँ जो पढ़ गई थीं। उसकी माँ ने सोचा होगा कि काम शायद जल्दी निपट जाए।

श्यामो बार-बार उसे हाँक लगाती रही, अरी लौंडिया कुछ घर कमा ले। काम जल्दी निपट जाएगा।

कभी वह अपनी माँ को देखती तो कभी स्कूल की अकेली ड्रेस को।

श्यामो का मुँह पान की पीक से भर आया था तम्बाकू का 320 नं. का पान जो था! पिचव। और पिचव SSS से थूक कर वह चिल्लाई, “कुतिया को कितनी देर से चिल्ला रही हूँ। कुछ घर कमा ले। बहरी बनी, गूँगी-सी टुकर-टुकर देख रही है, हरामजादी कहीं की।”

साहस बटोर उसकी लड़की पुनः कहती “माँ तू कर ले न।”

और माँ दुर्भिक्ष बाधिन सी पुनः झाड़ू से तड़ातड़ खबर लेने टूट पड़ी। उसकी

बेटी की चेतना चूर-चूर हो कर तमाशबीनों के बीच बिखरने लगी। मानो आकाश से रॉकेट जमीन पर आ पड़ा हो।

तभी मैंने उसे टोका।

“अरी श्यामो, क्यों मार रही है इसे?”

“बाबूजी! कमाने में आना-कानी करती है।” मानो कोई सम्मानित कार्य उससे कराना चाहती हो।

आखिर पढ़ने वाली बच्ची जो ठहरी। उस बच्ची की मानसिकता को भांप कर मैंने पूछा

“क्या बात है। इधर आ बेटी।” सकुचाती, शरमाती सी वह पास आ गई।

मैंने उसे अपने घर में बुला लिया और उसकी माँ को भी। मैंने उस लड़की को कुर्सी पर बैठने के लिए कहा। परन्तु! वह तो शर्म और हया से गड़ी जा रही थी।

उस पर जातिहीनता का बोध।

मैंने उसे बार-बार बैठने का आग्रह किया किन्तु वह खड़ी रही।

वह थोड़ा झिझक-ठिठक कर कुर्सी पर बैठी।

उसकी माँ। दरोगाईन-सी हाथ में झाड़ू लिए खड़ी रही।

मानो उसने कोई गम्भीर अपराध कर दिया हो।

मैंने पूछा “क्या नाम है बेटी तेरा?”

“जी चेतना।”

“कौन-सी क्लास में पढ़ती हो।”

“जी टेन्थ में (यानी 10वीं कक्षा में)”

“इतनी बड़ी होकर माँ का कहना नहीं मानती।”

“अंकल! इस काम के लिए...!” टका-सा जवाब दिया उसने “मुझे नहीं पसन्द ये पुश्तैनी धन्धा। ये ही मरे-खपे इस धंधे में।”

“फिर क्या करेगी?”

“पढ़ूँगी।”

“शाबाश!” और वह देवदार के वृक्ष-सी तनकर खड़ी हो गई। अब जब ‘चेतना’ वापस लौटने लगी तो उसकी माँ ने एकदम लठ्ठ-सा ताना मारा “हाँ, तू तो जरूर कलट्टरनी बनेगी चुड़ैल!”

तभी मैंने कहा “खबरदार! जो आगे बोली। तुझे शरम नहीं आती, स्कूल में पढ़ने वाली लड़की को मोहल्ला कमाने लाती है।”

श्यामो, अब तो, मुजरिम-सी मेरे कठघरे में खड़ी थी।

“नहीं करना चाहती तो, क्यों साथ लेकर आई है मोहल्ला कमवाने।”

“मोहल्ला नहीं कमाएँगे, तो खाएँगे क्या? बाबूजी।”

तभी मैंने उससे पूछा “क्या करता है इसका बाप?”

“सुबह-शाम कच्ची-पक्की दारू पीता है और क्या भांडू झोंकेगा भड्डुआ कहीं का।”

“न घर की फिकर न वर की।” सुबक-सुबककर चेतना की आँखें लाल हो चलीं। अब तो गला भी रूँध चला था श्यामो का।

“चल उठ मुँह-हाथ धोकर आ।”

जैसे ही वह जाने लगी, तो उसकी माँ भी हाथ में झाड़ू लिए उसके पीछे-पीछे जाने लगी। तभी मैंने कहा

“अरी श्यामो इधर आ। जब बच्ची पढ़ना चाहती है तो उसे, पढ़ा। अरी! तुम्हारी तो कट गई। लेकिन, विरासत में इसे तो मत दे ये धन्धा। पगली अब तो सरकार भी सिर पर मैला ढोने वालों की नियुक्ति की योजनाएँ चला रही है और एक तू है। जो बच्ची से...।”

अब तो श्यामो की नजरें भी नीचे झुक गईं।

इतने में, उसकी लड़की हाथ-मुँह धो कर कुर्सी पर आकर बैठ गई।

श्यामो पुनः झाड़ू-पंजर ले कर मोहल्ला कमाने में जुट गई। चेतना की भावना को शायद मैं ही समझ सका।

उसके पास बैठ कर एक सुखद एहसास की अनुभूति होने लगी। अब तो वह शिकायती लहजे में बतियाने लगी।

कभी बाप पर बरसती तो कभी माँ पर गरजती। अचानक किटकिटाने लगती।

“खैर।”

मैंने कहा “पढ़ना चाहती है तो पढ़। बारहवीं नहीं तो ज्यादा-से-ज्यादा शिक्षित हो स्वावलम्बी बन। वरना तो इसी धंधे में खटना होगा।”

तभी उसकी नजर मेरे ड्राइंग-रूम में टँगे बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के चित्र पर जा टिकी।

मैंने कहा “जानती हो ये चित्र किस महापुरुष का है?”

“जी हाँ! डॉ. अम्बेडकर का।”

“और ये कोने में सजी संवरी प्रतिमा।”

“जी भगवान बुद्ध की।”

“गुड! अब तो वैचारिक एकता के पथ पर बढ़ रही थी वह धीरे-धीरे।” फिर पूछा “डॉ. अम्बेडकर को जानती हो।”

“जी, टेलीविजन में टेलीफिल्म देखी थी। इन्होंने ही तो दिया था यह मंत्र कि शिक्षित बनो। संगठित रहो। संघर्ष करो।”

“और कुछ जानती हो इनके बारे में?”

“जी, ज्यादा नहीं।”

मैंने उसे ‘बाबा साहब का जीवन दर्शन’ पुस्तक लाकर दी और कहा “समय मिले तो इसे अवश्य पढ़ना।”

“कोई सलाह देने वाला नहीं ‘अंकल’। हमारी बस्ती तो दारूबाजों, जुआरियों की बस्ती है। आए दिन सुअरों की टोंगें पकड़, पेट में छुरी घुच्च रोज-रोज की चीं-चीं चिल्ल-पों सुन-सुन कर कान पक से गए हैं। कौम की दाढ़ में खून जो लग चुका है मांस-मछली का। झाड़-फूस जला कर गली के बीचों-बीच सूअरों को भूनना, कितना अजीब-सा लगता है अंकल। और हाँ, तुम तो नाक पर हाथ रखकर भी निकल नहीं सकते, मोहल्ले में घुसना तो दूर रहा! मर्दों की टोली हुक्के की गुड़-गुड़ाहट में सारा दिन चिलम के धुएँ में फूँक देती है। कैसी अजीब सी दिनचर्या है? मर भी तो नहीं सकती। मैं तो पढ़ना चाहती हूँ। लगन तो आखिर लगन ही होती है।”

“पढ़ने में कोई समस्या हो तो मुझे बताना।”

“जी,” और उसने राहत की साँस ली। शायद कोई शकुनवर तो मिला। मेरी बातों में वह अपनी मुण्डी हिलाती रही।

इतने में श्यामो ने आवाज लगाई “चेतना!” अरी क्या है। घर नहीं चलना या बैठी रहेगी।”

शायद काम निपट गया लगता है।

और वह कुर्सी से, हाथ में किताब लिए उठ खड़ी हुई “अच्छा अंकल नमस्ते।”

धीरे-धीरे साल दर साल गुजरते गए। यदा-कदा उसके बारे में उसकी माँ से हाल-चाल पूछ लेता। मोहल्ला कमाने जो आती थी प्रतिदिन। एक दिन उसकी माँ बोली “बाबूजी तुमने उसे न जाने कौन सी घुट्टी पिला दी है, पढ़ना ही पढ़ना लगा रखा है उसने। न कोई घर का काम न धाम। चलो इससे तो निपट ले, मगर उसने तो सारे देवी-देवताओं के चित्र, यहाँ तक कि लक्ष्मी-गणेश की मूर्तियाँ तक घर से बाहर निकाल कर फेंक दीं। ऐसा भूत चढ़ा है उस पर।”

मैं मन-ही-मन उसके, उज्ज्वल भविष्य की मनोकामना करता रहा। धीरे-धीरे वह सफलता के सोपान चढ़ती गई। अब तो वह समय-समय पर अपनी माँ के साथ राय-मशविरा करने भी चली आती है।

काफी दिन गुजरने के बाद, एक दिन श्यामो अपने लड़के को साथ लेकर आई। इधर श्यामो भी पन्द्रह-बीस दिन से मोहल्ला कमाने नहीं आ रही थी।

श्यामो घबराई हुई-सी थी। वह कहने लगी, “बाबू जी...चेतना बहुत बीमार है।”

“अरे तो, घबराने की क्या बात है इलाज कराओ, किसी अच्छे डॉक्टर से।”

“बहुत कराया कहीं से कोई फायदा नहीं हुआ। अब तो भगवान के हाथ है। तुम्हें याद करती है बस।”

“अरी घबरा मत, धैर्य रख सब ठीक हो जाएगा।”

“स्याने-सिगाने सबसे दिखवा लिया, कोई फायदा नहीं हो रहा है। रात में खाट से उचट-उचट पड़ती है, बड़बड़ाती है मेरी पढ़ाई। मेरी पढ़ाई का क्या होगा, उसकी परीक्षा जो थी सिर पर।”

मेरी पत्नी ने कहा “जाओ देख कर तो आओ, क्या बात है?” मैं उन दोनों के साथ उसे देखने घर पर गया।

ज्यों ही हम बाल्मीकि बस्ती में घुसे, सामने से आता नशेड़ी मेरे ऊपर गिरते-गिरते बचा। सूअरों का बाड़ों से निकलकर गलियों-नालियों में शूध से गन्द सिपोंड़ना अजीब-सा दृश्य लग रहा था। कहाँ आ गया मैं, अकस्मात् मैं मन ही मन सोचने लगा? कैसे पढ़ती होगी चेतना इस दूषित वातावरण में?

एक तरफ बच्चों की टोली, आपस में पिल्ले लड़ाने में मस्त थी। पिल्लों का घुराना, बच्चों को कितना भाता है बचपने में। तभी मैंने पूछा “श्यामो, कितनी दूर है घर।”

“बस बाबूजी पास ही है।” एक गली मुड़ने पर उसका घर आ गया, मुर्गा फुर से नीम पर चढ़ कर बाँग देने लगा “कुकड़ कू...।”

सिलन, घुटन। घुप्प अँधेरी कोठरी में एक खाट पर पड़ी ‘चेतना’ को देखा। एक कोने में उसकी मेज पर रखी पुस्तकें शायद उसके पढ़ने के कमरे का एहसास करा रही थी। बिजली चली जाने के कारण लालटेन की मद्धिम रोशनी में यह सब नजर आ रहा था।

तभी उसकी माँ ने कहा “चेतना देख बाबूजी आए हैं।” थोड़ा हँ-हँ कर उसने आँखें खोलीं और मुझे देखते ही उसकी आँखों में एक चमक-सी आ गई।

“अंकल, मुझे बचाओ। ये मुझे मार देंगे। मैं बीमार हूँ। कभी झाड़-फूँक, कभी टोका, तो कभी ढोल-डमरूओं की आवाज सुन-सुनकर मेरा माथा फटा जा रहा है। उकता गई हूँ रोज-रोज की झाड़-फूँक से। कोई ‘भूतनी’ कोई ‘चुड़ैल’ का साया बताता है मेरे ऊपर अंकल। मेरे बाल नोंच डाले इन कमीने स्याने-जादूगरों ने। देखो तो सही।” वाह री अविद्या! कहाँ नरक में फँसी पड़ी है ‘चेतना’?”

मैंने उसे अस्पताल चलने को कहा।

“अंकल कहीं भी चलो। मैं यहाँ ठीक नहीं हो पाऊँगी। ये तो मुझे मार देंगे झाड़-फूँक से।”

मैंने उसे सरकारी अस्पताल में दाखिल करवा दिया। उसकी देखभाल की कह कर मैं अपने घर वापिस आने लगा तो वह हाथ जोड़कर बोली-

“अंकल जयभीम।” कुछ दिनों बाद स्वस्थ हो कर वह घर वापिस आ गई।

अब तो उसकी माँ भी काम पर आने लगी थी।

“अरी श्यामो बिटिया का ध्यान रखना बहुत लायक है वह।”
दो तीन माह के बाद एक दिन चेतना मिठाई का डिब्बा लेकर अपनी माँ के साथ घर आई।

“अंकल जयभीम।” मैंने उसे अभिवादन स्वरूप जयभीम कहा। वह मुस्करा कर बोली “अंकल लो,”

“क्या है?”

“मिठाई का डिब्बा।”

“किसलिए।”

“प्रथम श्रेणी से बी. ए. जो किया है।”

“अच्छा!”

अचानक। मेरी आँखों में वह झाड़ू वाली पिटाई और स्कूल की नीली कुर्ती सफेद पाजामे वाली ड्रेस तैरने लगी।

“मिठाई आज मैं खिलाऊँगा तुझे पगली।” इतना कह कर मेरी आँखों में खुशी से आँसू छलछला आए।

मेरा बेटा दुकान से रसगुल्ले लेने चला गया और जब लेकर आया तो रसगुल्ले हम सबने बैठकर चाव से खाए।

अब तो मिठाई का डिब्बा खोल कर उसने मेरे सामने ही रख दिया।

आज श्यामो की आँखों में भी चमक थी और था मारने का पश्चाताप। पान की पीक सटकती हुई श्यामो बोली “बाबूजी न तुम उस दिन बुलाते, न ये नसीहत मिलती, चलो देर से ही सही।”

अकस्मात् सन्नाटा-सा छा गया घर के वातावरण में। एक चुप्पी, ज्वार भाटा-गुजरने सी, तभी चेतना बोली “अब क्या करूँ मैं।”

“बी. एड.”

“कहाँ से।”

“दिल्ली युनीवर्सिटी से।”

“तो, फार्म लाकर दो न।”

बी. एड. में प्रवेश उसे आरक्षण कोटे से नहीं, जनरल से मिला। प्रथम श्रेणी जो थी। और ऐसे माहौल में ‘वह पढ़ गई’।

अब तो मेरी छोटी बेटा, सोनिया भी बड़ी हो चली थी। वह मेरे गले से चिपक गई।

चेतना और उसकी माँ, मेरे बच्चों के साथ घुल-मिल कर बतियाने लगीं। मैं अपने ड्राइंग-रूम से निकल, अपने अध्ययन कक्ष में जा, पुनः असहाय चेतना को तलाशने में जुट गया।

गौरीशंकर नागदंश

जंगल में आग

उस रात फुलतोड़नी अपनी माँ से चिपटकर बहुत रोई, जिसमें पिछले सारे शिकवे-गिले, तेज धूप में रखी बर्फ की सिल्ली की तरह गल गए। लेकिन दूसरे दिन सारे पनचक्की गाँव में यह खबर जंगल की आग की तरह फैल गई कि फुलतोड़नी घर लौट आई है। फिर तो औरतें झुण्ड बनाकर फुलतोड़नी को देखने पहुँचने लगीं, गोया घर से भागी हुई लड़कियों का चेहरा बदल जाता हो।

रात को पनचक्की गाँव के बड़े कदंब पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। लोगों ने कहा, फुलतोड़नी को गाँव से निकालो, नहीं तो सब जवान लड़कियों का चरित्र भ्रष्ट हो जाएगा। कुछ लोगों ने फुलतोड़नी की जात और भात काटने की सिफारिशें भी कीं। फुलतोड़नी को कदंब के पेड़ से बाँध कर इक्यावन करची (बाँस की छड़ी) मारने की बात भी उठी, लेकिन थाने पुलिस के भय ने यह प्रस्ताव पास नहीं होने दिया। अन्त में गाँव भर के चुल्हिया-नेवाड़ (जिसमें किसी भी ग्रामीण के यहाँ चुल्हा नहीं जले, उन सबों का भोजन उक्त कार्यक्रम में ही हो) भात पर फैसला हो गया। पंचों ने फुलतोड़नी को क्वारी मान लिया, फुलतोड़नी फिर क्वारी हो गई।

लेकिन फुलतोड़नी जब सचमुच क्वारी थी और अपनी माँ के साथ बॉर्डर पार के गाँव रौतहट (नेपाल) की दाल मिल में दाल चालने जाया करती थी, तो लोग फूलों से नखरे वाली इस लड़की के नाम के बारे में तरह-तरह की भ्रांतियाँ सुनते-सुनाते। कोई कहता फूल तोड़ते वक्त इसकी माँ को दर्द उठा था और फुलतोड़नी जन्मी थी, कोई कहता इसके नाम का अर्थ है जिसका जी चाहे तोड़ लो। इन्हीं अर्थों के बीच फुलतोड़नी से जुड़ी दो चीजें पूरे मिल-एरिया में मशहूर हो गई थीं दाल चालने की और नजर चलाने की। उन्हीं दिनों गोनाही का एक सजीला पैकार (सौदागर) अपने पहाड़ी टट्टू के सर पर लगी लाल कलगी सहलाता दाल की खरीदारी करने मिल आया करता था। उसकी नजरों के सामने पड़ने के लिए क्वारी क्या, तीन-तीन बच्चों वाली दाल चालनियाँ अपनी साड़ी का पल्लू ठीक करने लगतीं लेकिन पैकार विलासी सिंह

की नजर हर बार पैकारी में दाल की बोरियों के साथ-साथ एक जोड़ी नजरों का भाव भी मोलने लगतीं। जवानी की सीढ़ियाँ चढ़ आई फुलतोड़नी उन नजरों का इन्तजार करती। ठीक वैसे ही, जैसे कभी-कभी किसी मछली को फँसाने वाले मछिरे का इन्तजार होता है। फिर एक रात फुलतोड़नी अकेली गाछी से निकली और दूसरी सुबह सारे पनचक्की गाँव में बात फैल गई कि फुलतोड़नी गोनाही के उसी पैकार के साथ भाग गई।

फुलतोड़नी दस दिनों तक सीतामढ़ी की धर्मशालाओं, सस्ते होटलों में ठहरती हुई एक रात विलासी सिंह के साथ उसके गाँव गोनाही पहुँच गई। विलासी सिंह की माँ ने लालटेन की मद्धिम रोशनी में फुलतोड़नी को ऊपर से नीचे तक देखा। दरअसल वह फुलतोड़नी में वह चीज तलाश करना चाह रही थी, जिसने उसके नजर-बाज और दिलफेंक बेटे को बाँध लिया था। वहीं विलासी सिंह के पिता धरीक्षण को एक ही चिन्ता खाए जा रही थी, धर्म भ्रष्ट होने की। बेटे ने लड़की भगाई भी ओछी जात की।

फुलतोड़नी का देहाती संस्कार वाला मन बार-बार उद्वेलित होकर यही सोचता कि उसने पिछले जन्म में जरूर ही मन से शिवजी की भक्ति की रही होगी, तभी तो विलासी सिंह जैसा दुल्हा मिला था। उसने अपनी सहेलियों के पलदारी करने, बीड़ी बनाने, जुआ खेलने, दारू पीकर मारा-मारी करने वाले दुल्हों को देखा था अब तक।

लेकिन फुलतोड़नी के भाग्य में विलासी सिंह का सुख ज्यादा दिनों तक नहीं लिखा था। विजयादशमी के पर्व पर रौतहट बाजार में खेले जाने वाले छर्ना-काठी में प्रतिद्वंद्वी की तलवार विलासी सिंह के पेट में धँस गई। सीतामढ़ी के चूड़ी बाजार में प्यार से पहनी गई लहटी फुलतोड़नी को इतनी जल्दी फोड़ देनी पड़ेगी, उसे कतई विश्वास नहीं था।

रुद्रिग्रस्त गोनाही गाँव का ही एक खपरैल का घर था विलासी सिंह का भी। इस घर में रहने वाले सभी लोगों की नजर में फुलतोड़नी घण्टे में डायन हो गई। विलासी सिंह के परिवार वालों की नजर में विलासी सिंह को और उसके चलते-बढ़ते कारोबार को फुलतोड़नी चबा-खा गई। तब फुलतोड़नी एक रात फिर भागी लेकिन अपने गाँव पनचक्की लौटने के लिए।

उन दिनों प्रौढ़ शिक्षा का बड़ा हल्ला था। बूढ़े तोते गैसबत्ती की रोशनी में रामागति तीतिया पढ़ते थे। विधवा फुलतोड़नी को वहीं मुखिया चरित्र चौधरी ने बूढ़े छात्रों को पानी पिलाने, गैसबत्ती में हवा भरने, पढ़ाई खत्म होने पर स्लेट, गैसबत्ती और बैठने की चट्टियाँ उठा कर ऑफिस की कोठरी में बंद करने तथा दिन में अपने यहाँ बर्तन, वासन के लिए रख लिया।

प्रौढ़-शिक्षा योजना के तहत पनचक्की स्कूल में पढ़ाने आए प्रौढ़ निर्मल लाल को फुलतोड़नी अच्छी लगती। वे अपना काम स्वयं करने का आदेशयुक्त उपदेश देकर

प्रौढ़ छात्रों की सेवाओं से फुलतोड़नी को जहाँ तक होता बचाए रखते। वे फुलतोड़नी को भी बैठा कर पढ़ाने लग गए और हरफ-हरफ लिखती फुलतोड़नी अपना नाम लिखना जान गई। उन्हीं दिनों राजनीतिक सुधार के लिए महिलाओं को बहुतायत रूप में राजनीति में लाना तय किया गया। पनचक्की सुरक्षित विधान सभा सीट के लिए किसी अनुसूचित जाति की महिला की तलाश होने लगी। निर्मल लाल इसी बहाने फुलतोड़नी को राजधानी पटना ले गए। पटना के एक होटल में फुलतोड़नी जब सुबह उठी, तो उसने अपने बदन में तीखा एहसास पाया, मानो उसके ऊपर से कई इंजन गुजर गए हों। उसने निर्मल लाल के तकिए के नीचे कई अंग्रेजी गोलियाँ भी देखीं लेकिन वह पता नहीं लगा सकती थी कि उनमें बेहोशी की गोली कौन-सी है?

निर्मल लाल एक दो मंत्रियों और कुछ विधायकों के आश्वासन पर बिल्कुल आश्वस्त हो गए कि पनचक्की विधान-सभा क्षेत्र से टिकट फुलतोड़नी देवी को ही मिलेगा। उनके सामने हजार रुपए कमाने वाली विधायिका घूमने लगी। जिन्दगी भर संस्थाओं के सहारे जीने और महिलाओं के मामले में अकेलापन का एक तख्त अनुभव रखने वाले निर्मल लाल को फुलतोड़नी देवी में एक विलक्षण नेत्री की संभावना दिखने लगी।

बेटी की चर्चा, अच्छे लोगों की आमद-रफ्त ने जहाँ फुलतोड़नी देवी के माता-पिता की आँखों में चमक पैदा कर दी, वहीं उनमें यह विश्वास भी पैदा कर दिया कि यह सब निर्मल लाल के निर्मल मन की पैदावार है।

फुलतोड़नी देवी अपने नये पति के साथ पटना साउथ ब्लॉक के विधायक फ्लैट में आ गई। पनचक्की गाँव के लोगों का पटना से कम ही वास्ता पड़ता। फुलतोड़नी देवी के नये पति निर्मल लाल मंत्रियों का वास्ता फुलतोड़नी देवी से जोड़ने की फिराक में लगे रहते। एक वरिष्ठ मंत्री जगन लाल जिनके सुकृत्यों से उनकी तीन पत्नियाँ उन्हें छोड़ चुकी थीं, फुलतोड़नी देवी के फ्लैट में बराबर अड्डा मारने लगे। निर्मल लाल के लिए मुख्यमंत्री के किचन कैबिनेट का आदमी मंत्री जगनलाल ही वह सीढ़ी था, जिस पर चढ़कर फुलतोड़नी देवी सुरक्षित स्थान वाला पद पा सकती थी।

काले जामुन-सी फुलतोड़नी देवी सुविधाओं के झरने के नीचे रोज नहाती हुई काला गुलाब बन चुकी थी और इस गुलाब को अपनी अचकनों में निर्मल लाल से भी ज्यादा अधिकार से मंत्री जगन लाल टाँक सकता था।

विधान सभा के सत्र चलने के दिनों मुंगेर के एक गिरोह के साथ पटने में पकड़ी गई बसमतिया को महिला विधायिका फुलतोड़नी देवी की सुरक्षा में रख दिया गया। फुलतोड़नी देवी ने बसमतिया से अकेले में बातें कीं।

एक ऊँचाई, एक प्रतिष्ठा और एक स्थापित जिन्दगी के लिए पुरुषों के असंख्य जंगल से गुजरने वाली फुलतोड़नी देवी को बसमतिया का दुख कहीं न कहीं से अपना

दुख लगा। उसने बसमतिया के बारे में कुछ ऐसा सोच लिया, जैसे वह अपनी छोटी बहन के बारे में सोचने बैठी हो।

उस दिन वह बिस्कोमान की मैनेजिंग कमिटी की मीटिंग में गई। देर रात लौटी, तो उसने पति निर्मल लाल को सोफे पर ही औंधा पाया। फुलतोड़नी ने महसूस किया कि दूसरे कमरे में किसी की चीख को असफल बनाने की कोशिश की जा रही है। फुलतोड़नी देवी ने दरवाजा खोला और जो देखा वह लोमहर्षक था मंत्री जगन लाल और नग्न अवस्था में विरोधरत बसमतिया।

दूसरे दिन अखबारों की हेड लाईन का समाचार सनसनीखेज था। विधायक फुलतोड़नी देवी द्वारा मंत्री जगन लाल की हत्या। प्रेस वालों ने यह भी लिखा था कि जेल के महिला वार्ड में फुलतोड़नी देवी की ऊटपटांग हरकतों से उन्हें पागल भी करार दिया जा सकता है। मसलन वे जेल में बार-बार एक वाक्य दुहराती जा रही है

“मैंने जंगल में आग लगा दी है मैंने जंगल में...।

भूख

एक समय था जब भुइसरटोला की समूची भूपट्टी हरे-भरे जंगलों से आबाद थी। घरों के नाम पर यहाँ छोटी-छोटी झोंपड़ियों जैसे इधर-उधर चिड़ियों के छत्तों की तरह बिखरे हुए आदिवासियों के छोटे-छोटे दरबों जैसे मकान थे।

जंगलों के उत्पाद, पत्तियों, फूलों, शहद आदि को बेच कर आदिवासी किसी तरह अपना गुजारा करते थे। फिर आई विकास की आँधी, जिससे पेड़ कटते गए और फैक्ट्रियाँ आबाद हुईं। आदिवासियों के विकास का बहाना लेकर चारों तरफ गैर आदिवासियों की गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ खड़ी होती गईं। शोषण का अन्तहीन सिलसिला निरन्तर जारी रहा, पर अब उनका रूप बदल गया था। धीरे-धीरे मोहल्ले-मोहल्ले में शराब के ठेके, लॉटरी की दुकानें, अंग्रेजी स्कूल व पोस्टऑफिस खुलते गए। पैसे से यहाँ कुछ भी, कहीं भी उपलब्ध हो सकता है। मुलिया रम्पा, फूलकुंवरी कोई भी हो, मजबूर होकर पेट की आग से त्रस्त हो बिकने के लिए तैयार रहती हैं। सिनेमा और लॉटरी के प्रकोप ने भी यहाँ की जीवन शैली को पूरी तरह प्रभावित किया है। नगरीय सभ्यता ने भी आदिवासी सभ्यता को पूरी तरह विकृत करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। नगरीय सभ्यता ने आदिवासी सभ्यता को पूरी तरह से हड़प लिया है, और यहाँ अपने खूनी दाँत गड़ा दिए हैं इसके मांस व हड्डी में।

किशनी जो फिरतो की जवान बेटी है, अभी-अभी शादी के बाद अपनी ससुराल विदा हुई है। किशनी नहीं चाहती थी ऐसी जिन्दगी, जहाँ पेट की भूख मिटाने के लिए हाड़तोड़ मेहनत के बाद भी भरपेट रोटियाँ मयस्सर न हो सकें या पेट की क्षुधा मिटाने के लिए किसी गैर-मर्द, गैर-आदिवासी दिक्कू बाबू की वासना का शिकार होना पड़े। किशनी ही नहीं भुइसरटोला की सभी जवान लड़कियाँ यही सपने देखती हैं कि उनकी भी शादी हो और वह यहाँ के गन्दे वातावरण से कहीं दूर चली जाएँ, जहाँ उन्हें अपने मर्द का प्यार भरा दामन नसीब हो। आखिर उन गरीब औरतों के पास है ही क्या। दीन-हीन, भूखे-नंगे बचपन की यादें और बेबस फटेहाल जवानी। फिरतो ने बड़े अरमानों

के साथ पाल-पोस कर बड़ा किया था किशनी को। उसने शुरू से ही किशनी को सामाजिक दुष्प्रभावों से पूरी तरह दूर रखने का प्रयास किया था और अपने पेट की आग में किशनी को स्वाहा होने से सदैव बचाया था। उसने उसे समाज के भेड़ियों से बचाए रखा था बड़े जतन व तरकीब से। यद्यपि वहाँ के माहौल में दूसरों के बिस्तर की शोभा बनना बहुत साधारण-सी बात थी। मान-सम्मान, स्वाभिमान की परख का अवसर ही नहीं होता था, पेट की भूख मिटाने के आगे। भुइसर टोला की यह पट्टी गवाह थी आदिवासियों के बेइन्तहा अन्तहीन शोषण की। पहले ठेकेदार, नेता, हाकिम, गैर आदिवासी, अब नवधनाढ्य, व्यवसायी व अफसर। यही तो थे शोषण के अलम्बरदार।

किशनी को बड़ा सुख मिला था अपने पति मल्लू की गृहस्थी में। मल्लू था तो आदिवासी पर इधर काफी दिनों से शहरी जीवन बिताने के कारण उसमें सभ्यता व सलीका और जीने की नई सोच आ गई थी। पढ़े-लिखों की सोहबत में रह कर स्वाध्याय से वह थोड़ा बहुत लिखना-पढ़ना भी जान गया था। बड़ा प्यार करता था वह किशनी से। किशनी भी खोती गई थी अपने पिया के प्यार-दुलार में। पर यहाँ का रहन-सहन, जीवनयापन का ढंग सभी कुछ बड़ा अजीब-सा लगता था किशनी को। न तो कोई रोक-टोक थी और न किसी का डर-दाब। ऊँच-नीच की भावना का वातावरण भी न था यहाँ। शोषण के सभी उपादानों से मुक्ति ही मुक्ति थी। उसे याद आता उसका भूखा-नंगा बचपन, भुइसरटोला की खट्टी-मीठी यादें, बेगार के लिए प्रताड़ित किए जाते आदिवासी लोग, चारों तरफ दूर-दूर तक फैला अन्धविश्वास, पढ़ाई-लिखाई का अभाव, चिकित्सा के बदले टोना-टोटका, दिक्कू ठेकेदारों की भूखी कामुक नजरें, पूरे काम के बदले कमतर मजदूरी, शारीरिक शोषण, मेट व ठेकेदारों की गाली-गलौच व बदतमीजियाँ, बे-वजह की डाँट-डपट और मारपीट। कितना सकून था यहाँ की हवा में। जहाँ न कोई छोटा था, न बड़ा। सभी एक समान। छुआ-छूत ऊँच-नीच की भावना का नामोनिशान नहीं था। स्वाभिमान व सम्मान की जिन्दगी। देखते ही देखते वह दो बच्चों की माँ बन गई थी। इधर काफी दिनों से इच्छा थी उसकी, भुइसरटोला अपने माता-पिता के पास जाने की, पर मल्लू ने उसे जाने नहीं दिया था। मल्लू को घिन आती थी भुइसरटोला के गन्दे माहौल से। किशनी के बार-बार आग्रह से ऊब कर आखिर में उसे भेजना ही पड़ा था।

उसने किशनी से कहा था “अपना ध्यान रखना, दो-चार दिन रह कर ही चली आना। कहो तो मैं भी साथ चलता चलूँ या बता दो कि मैं कब तुम्हें लिवाने चला आऊँ।”

किशनी झुंझला उठी थी उसके प्रश्नों की इस झड़ी से

“इतने दिनों बाद जा रही हूँ, कम से कम एक हफ्ते तो रहूँगी वहाँ। चार-पाँच साल से तो यहाँ पड़ी ही हूँ अपने कलेजे पर पत्थर रखकर। तुम आदमी हो कि कसाई,

मुझे अपने माँ-बाप से मिलने, उनके साथ कुछ समय बिताने देने का भी मौका देना नहीं चाहते। ऐसा लगता है, जैसे मुझे तुमने मेरे माता-पिता से खरीद कर गुलाम बना लिया हो।”

चुप रह गया था मल्लू, किशनी के आक्रोश व तेवर को देख कर उसने जाते समय उसे बस इतना कहा था “अपना व बच्चों का ख्याल रखना।”

हफ्ते से ऊपर बीत गए थे किशनी को गए हुए। मल्लू का मन अब किसी भी काम में नहीं लगता था। बड़ी मुश्किल से तो वह बिता पाया था इस हफ्ते भर के समय को। दिन व रातें लम्बी होती गई थीं उसके लिए। जब देखते-देखते दो हफ्ते व्यतीत हो गए, तो मल्लू का मन आशंकाओं से घिर उठा। किशनी अब तक वापस नहीं आई अपने मायके से? सुबह-सुबह ही वह अपनी ससुराल भुइसरटोला के लिए चल पड़ा था। ससुराल में उसकी बीवी और बच्चे नहीं थे। ससुर फिरतो से पूछने पर भी उसे कुछ मालूम नहीं हो सका था किशनी के बारे में। बड़ी तहकीकात के बाद पड़ोसियों ने बताया था कि किशनी को फिरतो ने बेच दिया है एक गैर-आदिवासी के हाथ अपने पेट की भूख के लिए! बदले में मिले हैं उसे केवल पाँच सौ रुपए! सुनते ही अवाक रह गया था मल्लू! पूरी धरती घूमती हुई नजर आ रही थी उसे। वह भागता हुआ चलता गया था बताए हुए पते पर। वहाँ पहुँच कर उसने उस बाबू से बड़ी मिन्नत की थी अपनी बीवी व बाल-बच्चों को लौटाने के लिए पर दिकू बाबू टस से मस न हुआ था। पाँच सौ रुपए में किशनी को खरीद कर उसका लाभ ही लाभ था। नौकरानी से लेकर रखैल तक सभी रूपों में वह उसका उपयोग करने की मन में सोचे हुए था। मल्लू के लगातार हाथ जोड़ने पर वह बच्चों को पाँच सौ रुपए में वापस करने को तैयार हो गया था। पाँच सौ रुपए अदा करने पर मल्लू को उसके बच्चे तो वापस मिल गए थे लेकिन उसकी बीवी किशनी अपने बाप फिरतो की भूख की आग में दफन हो गई थी, हमेशा-हमेशा के लिए।

प्रेम कुमार मणि

जुगाड़

पूस का महीना और झपसी का यह तीसरा दिन। ठंड नहीं, ठार पड़ रहा है। पोर-पोर तक कनकनी समाई है। नीचे पुआल, ऊपर कथरी और कोने में सुलगते भूट का ताप है, लेकिन ठार हड्डी को भीतर तक छेद रहा है।

बिन्दा ने करवट ली और उठने के लिए साहस बटोरा। दो घण्टे से कम नहीं हुए होंगे कि वह पेशाब महसूस कर रही थी। कथरी से निकलने का साहस नहीं हुआ। पेशाब रोके-रोके जब माथे में दर्द महसूस होने लगा और झोंपड़े में रोशनी सी पसर गई तब वह उठी और निवृत्त होकर अग-जग सूँघने लगी।

आँगन में सीम की लतर से टप-टप पानी चू रहा था और घर के पीछे की बंसवाड़ी से पत्तों की सरसराहट आ रही थी। हो न हो कुतिया अपने बच्चों के लिए कोई जतन कर रही हो। इस झपसी में जाने किस हाल में होंगे पिल्ले।

बिन्दा की तबियत हुई कि बरतन-बासन कर ले। लेकिन मन आलस से भर गया। वह फिर बिछोने तक लौट आई।

पुआल पर उसका पूरा परिवार कथरी में लिपटा सोया था। हिरवा के बाबू ने बीच में पलभर के लिए आँखें जरूर खोली थीं, किन्तु जल्दी ही सिर के खूब ऊपर तक कथरी तान ली और टाँगें जब उघार होने लगीं तो उन्हें पेट में सटाकर सिमट गए। बिन्दा अपनी जगह पर आई और कथरी में पैर ढंक कर बैठ गई। झोंपड़े के पूरब तरफ घनी बंसवाड़ी थी, बाँसों की खोरी, जिस पर कौए कुहार कर रहे थे। लेकिन उनकी आवाज इतनी थकी-पझाई थी, मानो वे भी ऊँघ रहे हों और कथरी में सिमट जाने का सन्देश दे रहे हों।

बिन्दा बैठी रही, लेटी नहीं। हिरवा के माथे पर हाथ फेरकर उसने उसके उघार पैरों को कथरी में ढंक दिया। उसके मन में निरगुन की पातियों ने राग लेने की कोशिश की, लेकिन तभी मन में अंड-बंड चीजें चक्कर मारने लगीं। निरगुन की पातियाँ कुम्हला कर रह गईं।

हिरवा के बाबू का और सोये रहना अच्छा नहीं है। मलिकार खलिहान में पहुँचे उसके पहले उसको पहुँच जाना चाहिए। इस मौसम में काम क्या होगा, लेकिन दस कट्टे की जोत जो हलवाही में दी है, उसकी लाज भी तो रखनी है। पूरे गृहस्थ टोले में मलिकार-सा एक भी आदमी नहीं है। खाहम्खाह उनका गुस्सा लेना ठीक बात नहीं।

“हिरवा के बाबू, ए हिरवा के बाबू।” उसने आवाज दी। बाबू कुनकुनाया। आँखें मूँदे-मूँदे कानों से ही उसने दुनिया का जायज ा लिया और कथरी का भूगोल बदलकर सिमट गया। मन करता है उठे और ज ोर का एक झापड़ मारे इस मेहरारू को। ससुरी झपसी में भी कोंचे जा रही है। मालिक के काम की तो इसे इतनी पड़ी रहती है कि लगता है मेरी मेहरारू नहीं, मालिक की ही सतवंती हो। उसने एक बड़ी गन्दी गाली का मन में इस्तेमाल किया और गिरह मार ली कि चाहे जो हो पहर भर तो वह नहीं ही उठेगा।

हिरवा और जोन्ही ने पहली पुकार में ही आँखें मटमटाईं। बिन्दा ने जोन्ही के सिर पर हाथ फेरा, तब वह दुलार से पटगा गई और अपना हाथ माँ की गोद में डाल दिया। हिरवा को अचानक कुछ सूझा और फुरती से कथरी फेंक कर वह उठ खड़ा हुआ। तेज ी से वह कोने के भूट तक आया और पझाई राख से आलू निकालने लगा।

“भूट सुलगा ले हिरवा।” बिन्दा ने कहा। वह हिरवा के चेहरे पर उभरने वाले लावण्य का इन्तजार करने लगी, जो आग सुलगाने के आदेश से आता था। कुछ ही दिन हुए हैं कि उसने माचिस की तीली रगड़ना और जलाना सीखा है। हिरवा उल्लास से भर गया और माचिस तलाशने लगा। जोन्ही उठ कर बिछोने की मुट्ठी पर पुआल ले गई। हिरवा ने हुडका “इतना जासती पोरा का होगा, आधा कर आधा, देख मे माई, कितना जासती पोरा धराती है।”

“एको तीली जो खराब हुआ न, तब कहूँगी। इतने पोरा से भी न होगा, आउर लगेगा, समझे।” जोन्ही ने जवाब दिया। इसी बात पर दोनों उलझ पड़े। बिन्दा अपने सोच में मशगूल थी। लड़ाई जब तेज हो गई तब उसने डपटा “सुबह-सुबह कुकुहार मत करो सब। सुबह के टेम से ही लड़ाई शुरू हो गई। आऊँगी तब एक-एक झापड़ दूँगी।”

झापड़ की बात पर बच्चे कुछ शान्त हुए। हिरवा ने भूट यानी बाँस की जड़ें सुलगा दी थीं। जोन्ही को कुछ ख्याल आया। हिरवा के कान में कहा। हिरवा ने ध्यान से सुना और माई की ओर घूरा। माई अपने में मग्न थी। जोन्ही को उसने एक पका आलू दिया। जिसे उसने कृतज्ञता के भाव से लिया। फिर उसने इशारे से कुछ कहा। जोन्ही उठकर बाहर आ गई।

कुछ देर बाद हिरवा उठा और आँख बचाकर झोंपड़े के बाहर आ गया।

बिन्दा बैठी रही। हिरवा के बाबू ने लेटे-लेटे टोह ली कि बच्चे नहीं हैं। एक बार आँख खोल कर इत्मीमान हुआ और बिन्दा के पास ऐसे सरक आया जैसे वह कोई घड़ियाल हो। वह आंचल में मुँह रगड़ने लगा। भूल ही गया कि अभी क्षण भर पहले

इसी के लिए कितनी खराब-खराब बातें अपने मन में ला चुका है।

बिन्दा कमनीयता से भर गई। रात में उसने कितनी बार नहीं चाहा कि वह इसी तरह दुलार लगाए। लेकिन एक छोर पर दुश्मन की तरह सोया रहा यह मरद। अब इस परात पहर में छोह दिखला रहा है। पहर भर पहले जो छोह दिखलाता, तो बच्चों को अभी नहीं जगाती।

प्रकृति की झपसी बिन्दा के मन में भी घिर आई। उसने अनुराग से पति का सिर सहलाया और झिड़की दी “भोर हो गया है भोर। काम-धाम की फिकिर है या नहीं? राशन पताई भी कुछ नहीं हैं मालूम है?”

“दो पसेरी चावल इत्ते दिन में खतम हो गया?”

“बहुत बड़े हो दो पसेरी चावल का हिसाब रखने वाले। कितने दिन चला, जोड़ते भी हो? तीन दिन से झपसी ही लगी है। उधर तुम्हारा बहनोई आया और दो टेम घेंप कर गया। इसका भी हिसाब रखोगे कि नहीं? सेर भर तो सीधा उसके लिए डालती थी। जितना में अपना पूरा परिवार खाता था, उतना वह अकेले चढ़ाता था, पेटू कहीं का।”

“बस करो, बस करो। तुम्हारे भाई से तो कम ही खाता है। अब मेहमान के खाने पर टीका करोगी? ऐसे दिन खराब हो गए हैं हमारे। ऑय! मैं भी कहीं जाता हूँ कि नहीं! कितना खाता हूँ तू क्या जाने। कौन जाने मेरे लौटने पर तेरी भौजाई भी मुझे पेटू कहती होगी।”

“मेरे घरवाले ऐसे नंगे नहीं हैं।”

“तब मैं नंगा हूँ, कि तू, नंगी है बोल। ऐसी टीका-टिप्पणी क्यों करती है?”

“टीका क्या करूँगी। कितने शौक से बनाया-खिलाया। बात पर बात निकली कह दी। पेटू तो हैं ही। स्वाद का भोजन मिलने पर क्या ड्योढ़ा भी न चढ़ाया होगा? खाता था और मेरा मुँह देखता था।”

“वो, तब यह न कहा कि तुम्हारा मुँह देख-देख कर उतना खा गया। तुम्हारे जैसी सूरत वाली सामने बैठी हो, तब कौन नहीं दूना खा जाएगा?”

“चल हट। बड़ी आए मेरी सूरत निहारने वाले। हूँगी किसी के लिए सूरत वाली, तुम्हारे लिए तो सूरत कहीं और बसती है। मलिकार के घर कौन तुमको भेली भर गुड़ देती हैं, सब जानती हूँ।”

हिरवा और जोन्ही गोद में एक-एक पिल्ले को टाँगे झोंपड़े में आ गए। पिल्लों की माँ भी दरवाजे से झाँकने लगी। कूंकू से झोंपड़ा भर गया। माँ ने बहुत खबरदार किया किन्तु बच्चे नहीं माने। भूट के पास पिल्लों को लेकर बैठ गए। जोन्ही ने गोद के पिल्लों को पके आलू खिलाना चाहा। पिल्ले ने साहब की तरह मुँह फेर लिया।

“अगे जोन्हिया, जा आँगन से थोड़ा जड़ौध ले आ। भूट पझा रहा है।” बिन्दा ने बैठे-बैठे हुकुम लगाया।

जोन्ही गई और थोड़ी देर बाद भीगे जड़ोंध लेकर लौटी ।

“माई गे, सभै जड़ोंध ओढ़ा हुई ।” ओढ़े यानि आद्र अर्थात् गीले हो गए । जड़ोंध को भूट के पास रख कर उसने फिर पिल्ले को संभाल लिया । भूट से धीरे-धीरे धुंआ फैलने लगा ।

हिरवा का बाबू उठ कर बैठ गया था । कुछ सोच रहा था वह । बिन्दा उठ कर बरतन-बासन कर रही थी । मन ही मन दोनों जुगाड़ सोच रहे थे, खरची का । मालिक के यहाँ आज जाना ठीक नहीं । ससुरा सेर भर खरची देगा और दिन भर का काम अड़ा देगा । आज तो चाहे जो हो, काम पर निकलेगा वह । बिन्दा से उसने मन की बात बता दी और पूछा “छटाक भर भी चावल नहीं है?”

“छटाक भर क्या, हैं तो आधा सेर । लेकिन आधा सेर से ही दोनों टेम की भूख मिटेगी?”

“ऐसा कर कि बच्चों के लिए गोलहथ पका दे । इन लोगों को खिला दे ।”

“और हम दोनों?”

“अपना जुगाड़ देखते हैं ।”

कमर में खोंसी हुई चुनौटी उसने निकाली और खैनी मलने लगा । वातावरण तो ऐसा था कि मन करता था, न हगे, न मूते । लेकिन दोनों शाम के कौर का तो जुगाड़ करना ही होगा । खैनी होंठ से दबा कर वह ओरी के नीचे गोड़कुनिए बैठ गया । मौसम में फिसिर-फिसिर मची थी । इसकी परवाह किए बिना बिन्दा बरतन धो-खंगाल रही थी । उसका आंचल भीग चुका था । हिरवा के बाबू ने पच्च से थूक फेंका और आँगन में भीगते जड़ोंधों को उठा-उठा कर ओरी के नीचे रखने लगा । पता नहीं कितने-कितने दिन झपसी रहती है । बाँस के ये जड़ोंध न रहें, तो ये जाड़ा उठा ले जाय । किसी को फिकिर ही नहीं है । इन्हें निकालने में नानी याद आ जाती है । कुदाल, टंगारी, खन्ती सब और करो तब निकलते हैं ये जड़ोंध ।

जड़ोंधों को ओरी के नीचे रख कर उसने कमर में गमछी बाँधी, मानो साहस बटोर रहा हो । फिर खंती लेकर बाहर निकल गया ।

बिन्दा ने बरतन-बासन, झाड़-बुहार की और आग सुलगाने चली थी कि याद आया किशुन मलिकार की पतोहू को आठ रोज तेल मालिश किया था पर चार रोज की ही मजूरी मिली थी । चार सेर कच्ची नाज उनके यहाँ बाकी है । आखिर किस दिन देंगे वह? मर-पझा जाएँगे तब! बाप रे, तीन महीना से ऊपर हुआ । भादों की किच्-किच् में जाकर तेल पोता था और ससुरी चार रोज की मजूरी देकर, देखो न कैसी चुप है? मैं भूल गई तब वह भी भूल गई थी क्या? अरे इन मलिकार की मेहरियों के मन में जो बेईमानी रहती है, खूब जानती हूँ । दबा के पड़े हैं, भूल गए तो मजूरी ।

“गे जोन्हिया जाओ तो किसुना मलिकार के यहाँ । उसकी पुतोहिया को आठ

रोज तेल मालिश की थी रे। चार दिन की 'लगाई' बाकी है। जा तो कह निगोड़ी से। इस आपत में भी देगी या पचा ही जाएगी?"

“मैं इस पिछिल्ल में नहीं जाऊँगी। भइया को भेज?"

“अगे भइया की नानी। उस पिल्लवा को गोद में काहे के लिए टाँगी है रे। भतार है तेरा। रखती है कि नहीं। पिछिल्ल है तो मुँह में लेवा लगा कर बैठ। माँगा जो कुछ खाने को, तो मुँह में कलछुल घुसेड़ दूँगी।”

हिरवा ने मौके को हर तरफ से समझा। किसुन मलिकार की पतोहू इंदर की परी है। खूब अच्छी लगती है देखने में। दुर्गा-देवी की मूरत की तरह। दिल की भी अच्छी है। 'गुड़' या 'लाइ' जरूर देगी। 'लाइ' की याद से ही उसके मुँह में पानी भर आया। माँ से कहा “माइ गे, मैं जाता हूँ। कहूँगा कि मामू आए हैं और खरची नहीं है। माइ ने दो सेर चावल माँगा है।”

“दो सेर चावल क्या भीख माँगा है? कहना चार रोज की तेल लगाई बाकी है।”

हिरवा जाने से पहले जोन्ही के कान में कुछ कह गया। फिर तेज से निकल गया। जोन्ही ठुनकने लगी “भइया को लाइ मिलेगा। मैं भी लूँगी लाइ।”

“अगे 'लाइ' की माई। अभी तो पिछिल्ल सूझ रहा था, अब लाइ सूझने लगी। मारूँगी एक झापड़ कि पसर जाओगी।”

हालांकि यह कहते-कहते ही उसे हिरवा के उत्साह का राज मालूम हुआ और वह बेटे की सूझ पर मुस्करा उठी।

“आने दे हिरवा को, तुझे भी आधी 'लाइ' दिला दूँगी। तेरे जैसा नहीं है कि बाहर ही सब भकौस जाय।”

जोन्ही को भाई की आदत और माँ के आश्वासन पर भरोसा हुआ और उसने ठुनकना बन्द कर माँ से पूछा “माँ, मैं झाड़ू लगा दूँ।”

“बुहारे को बुहारेगी। है न! तब से पिल्ला में लगी थी। झाड़ू-बुहार ली तब झाड़ू लगाएगी। आँख फूटी थी क्या, जब बुहार रही थी?”

माँ-बेटी भूट के पास बैठ गईं। माँ आग खोरने लगी। बेटी ने एक और ओदा जड़ौंध डाल दिया। धुँआ होने लगा।

“तनी-सा चपुआ लाकर डाल दूँ माई?” जोन्ही डरते-डरते बोली।

“डाल दे।” माँ को भी आग की गरज थी।

जोन्ही कुछ ज्यादा ही चपुआ लाई। माँ-बेटी उसे डालने लगे, जैसे पुरोहित यज्ञ में हविष्य डालते हैं।

हिरवा भरा पूरा लौटा। उसकी पोटली में चावल, आलू, और 'लाइ' तो थे ही, भेली भर गुड़ भी था। हिरवा ने कहा “कनिया माइ ने लुका कर दिया है। कहा है माई से कह देना एतवार को आएगी तेल मालिश करने।”

बिन्दा ने सब चीजों को देखा। जोन्ही बोली “आलू तो सेर भर से कम नहीं है माई।”

माई ने झिड़की दी “अनजोखा खाएँ मांदल जाए। कैसा होता है तेरा सेर। दो सेर से ऊपर है। चावल भी जादे है।” हाथ में लेकर चावल की किस्म पहचाना। फटका बनाया चावल था। बोली “बेचारी जैसी तन की सुन्दर है, वैसी ही मन की।”

हिरवा ने अपने धोकड़े से एक चीज निकाला और जोन्ही को चुपके से दिखलाया। जोन्ही चिल्लाई “माई गे वह देख, वह देख। भइया काला लड्डू लिए हैं।”

बिन्दा ने डपटा “क्या है रे? ला इधर। कितनी बार कहा कि किसी के यहाँ कुछ मिले पहले दिखा ले। जोग-टोटरम करने वाले भी कम नहीं हैं गाँव में!”

जोग के नाम से हिरवा डर गया। पिछले ही साल तो इसी जोग के कारण उसका साथी बंगट दिन भर की बीमारी में ही मर गया था। माथे के बुखार का हल्ला था। लेकिन माँ कहती थी किसी ने जोग करके कुछ खिला दिया है।

हिरवा ने दोनों लड्डू माँ के सामने धर दिए। माँ ने दोनों से घुन्नी-घुन्नी भर तोड़ा और मुँह में डाल कर बोली “मेथी के लड्डू हैं। कनीवा के नैहर से आया होगा। किसुना-बहू को यह लूर कहाँ है?” उसने दोनों को एक-एक लड्डू दे दिया।

बिन्दा ने तय किया कि क्या बनाना है। आलू-सीम की तरकारी और भात। हिरवा के बाबू आएँगे, तब कितना खुश नहीं होंगे। आज रात को जो एक किनारे सोये, तो कल उपास नहीं रख दिया तब फिर क्या।

उसने चूल्हा सुलगा दिया और भात की हाँडी चढ़ा दी। जोन्ही से बोली, “बैठ कर सीम तोड़।”

भात पका कर रख दिया गया था और तरकारी की कड़ाही खदक रही थी, तब हिरवा का बाबू सिकन्दर की तरह डग भरता आया। वह बहुत खुश था। खलिहान में उसने आठ मूस मारे थे। अपने अंगोछे में उन्हें बाँध लाया था।

जोन्ही और हिरवा खुशी से झूम उठे “मूस-मूस।”

घर में भात और तरकारी की मिली-जुली गन्ध फैली थी। कोने में पड़े चावल और आलू को देखते ही बाबू को घर का हाल मालूम हो गया था। उसकी खुशी का ठिकाना नहीं था। बिन्दा से पूछा “कैसे जुगाड़ किया? मैने तो सोचा कि कुछ न होगा तब हम लोग इसी को पका कर खा लेंगे।” उसने मरे चूहों को अंगोछे से नीचे रखा।

हिरवा और जोन्ही चूहों को पकाने का जुगाड़ करने लगे। उनके मन पकते चूहों की सोंधी गन्ध से अभी से घिरने लगे थे।

बिन्दा ने अपने मरद की आँखों में अपनी नजरें गढ़ाई। वहाँ कृतज्ञता की परछाई डोल रही थी। वह तन-मन से मुस्कुराई। मरद निहाल हो गया।

चन्द्रशेखर कर्ण

सुरंग से गुजरते हुए

बरामदे में बैठा अखबार पढ़ रहा था। समाचार दक्षिण अफ्रीका के श्वेत सरकार द्वारा अश्वेतों पर हो रहे अत्याचारों से सम्बन्धित था। बोथा सरकार किस तरह वहाँ के मूल निवासियों पर तरह-तरह के अमानुषिक अत्याचार कर रही थी। इसको लेकर वहाँ के अश्वेत विद्रोह कर रहे हैं। हजारों लोग मारे गए। कितने जेल की यातनाएँ झेल रहे हैं। मण्डेला वर्षों से जेल में बन्दी जीवन बिता रहे हैं। मैं इस समाचार में डूबा हुआ था कि एक कमजोर आवाज आई “बाबू बू...जी...ई...ई।”

घूमकर देखा। एक बूढ़ा-सा आदमी, झुका हुआ दुबला-पतला, चेहरे पर झुर्रियों का सैलाब, सिर पर चीकट काली टोपी। हो सकता है, टोपी किसी अन्य रंग की रही हो। मैल की पर्त-दर-पर्त जमते-जमते उसका रंग काला हो गया हो। मैंने उसकी ओर देखा। मेरी आँखों के अपरिचय को उसने पहचान लिया था।

“आपने मुझे पहचाना नहीं बाबू?” उसकी आवाज और चेहरे पर एक साथ आत्मीयता, बेबसी तथा आशा के भाव थे।

बरसों पुराना चेहरा सामने आया “कलक्टर सिंह!”

“तुम कलक्टर सिंह तो नहीं हो?”

“हाँ बाबूजी!” मेरे पहचान लेने से उसे बेहद खुशी हुई है। इन दो शब्दों में कितना हुलास था।

कलक्टर सिंह यहीं नगरपालिका में जमादार था। अक्सर मेरे मुहल्ले में इसकी झूटी लगती थी। उसकी अपनी पहचान थी सबसे अलग। घुटने से ऊपर तक अलीगढ़ी पाजामा, कमीज, काली टोपी। पैर में चमरौंधा जूता, जो उस समय आठ-बारह आने में आ जाता था, रेड़ी के तेल से चुपड़ा हुआ। बगल में मेहतर-मेहतरानियों की हाजिरी वाला फटा-पुराना रजिस्टर। यह थे बाबू कलक्टर सिंह, नगरपालिका के जमादार, मेहतर-मेहतरानियों के ‘इमीडिएट बॉस’।

नगरपालिका की ओर से सप्ताह में एक दिन लैन धुलता था। बाबू कलक्टर

सिंह खुद आते, सलाम करते और पूरी मुस्तैदी से किसी मेहतरानी से लैट्रिन को धुलवाते। थोड़ी भी कोताही होने पर मेहतरानी को मोटी भद्दी गालियाँ देते। वह खिलखिलाकर हँस देती। फिर कुछ भला-बुरा कहती। कोई किसी का बुरा नहीं मानता, जैसे उसे इसका अभ्यास हो। कलक्टर सिंह को गालियाँ देने में बड़ा सुख मिलता था। मेहतरानियों के गुप्त अंगों को बेपर्द करने वाली गालियाँ।

“क्यों बाबू कलक्टर सिंह, इतने दिनों पर किधर से?”

आत्मीयता पाकर कलक्टर सिंह मेरी कुर्सी से थोड़ी दूर पर बैठ गया। आत्मीयता की आँच से वह पिघल गया।

“क्या बताऊँ बाबू, जब से रिटायर हुआ, मरन है। यह जिनगी पहाड़ हो गई है। अब तो ढोये भी नहीं चल रही है। जब तक नगरपालिका में रहा किसी तरह गुजर-गुजरान हो जाता था। अब तो जीवन नरक हो गया है। आत्मा दाने-दाने को तरस गई है। शरीर भी साथ नहीं दे रहा है।”

मैंने देखा वह हाँफ रहा है। रह-रह कर खाँसता है। उसने आगे कहा “रिटायर होने के बाद सोचा अपनी जन्मभूमि पर चला जाऊँ। घरवाली यहीं मर गई। जिन्दा रहती तो कोई तकलीफ की बात नहीं थी। किसी तरह पेट भरने का जुगाड़ कर लेती थी। ...मेरा ही अभाग था, जो वह चली गई। बेचारी तो मुक्ति पा गई, मैं ही पापी था, जो नरक भोगने को रह गया।” बोलते-बोलते वह अशक्त हो गया।

थोड़ा दम धरने के बाद उसने कहा, “बाबू हम आपका लैटरिन साफ कर देंगे। आपको कोई शिकायत नहीं होगी। मैंने बाबू अयोध्या सिंह का लैटरिन साफ किया है। वे मेरे काम से बहुत खुश हुए। खाने को दिया।”

मैंने अचरज से उसकी ओर देखा! ऊँची जाति का होकर वह कैसे पाखाना साफ करेगा! मुझे सोचते हुए असमंजस में पाकर उसने कहा “बोरा ओढ़कर लैटरिन साफ करते हैं बाबू। अब आदत हो गई है...थोड़ा खाने को दे दीजिएगा।...कोई शिकायत का मौका नहीं मिलेगा बाबू!” वह हाँफने लगा था।

एक दिन कलक्टर सिंह ने अपनी पूरी कथा सुनाई थी।

उसका घर इसी जिले के एक गाँव में है। उसके पिता बालेसर सिंह गरीब आदमी थे। गाँव में जमींदार के यहाँ बराहिल थे। धन सम्पत्ति के नाम पर घराड़ी और एकाध बीघे खेती लायक जमीन। बराहिली और जमीन की उपज से अकेले आदमी का काम चल जाता था। उनकी उम्र बढ़ती जा रही थी, लेकिन कोई जाति वाला उन्हें अपनी बेटी देने को तैयार नहीं था। कोई भी बेटी वाला एक दरिद्र और अनपढ़ आदमी को अपनी बेटी दे भी कैसे सकता था। वहाँ उसकी बेटी क्या खाएगी, क्या ओढ़े-पहनेगी? घर में कोई था भी तो नहीं। टूँठ-माँगुर के यहाँ कोई लड़की देना नहीं चाहता था। प्रतीक्षा करते-करते बालेसर सिंह की जवानी बीत गई। उनके बाल खिचड़ी

हो गए। चेहरे पर समय के पद-चिह्न उभरने लगे।

गाँव के लोग कहते “का बालेसर सिंह, ई लगन भी बीत जाएगा क्या।”

उन्हें यह बात कचोटती। मगर करते क्या। अपने वश की बात तो थी नहीं। थके-मांदे आते तो घर भायं-भांय करता मिलता। घर काटने को दौड़ता। “औरत के बिना जिनगी बेरथ ही तो हैं। मसल भी है। ‘बिन घरनी घर भूत का डेरा, वंश में कोई पानी देने वाला भी तो होना चाहिए। नहीं तो पुरखों को पेठ कैसे मिलेगी।” जब भी वे अकेले होते यही सब सोचते और बेचैन हो जाते। कभी-कभी तो रात आँखों में कट जाती।

एक बार किसी ने चर्चा की कि तमोलगढ़ में लड़कियाँ मिलती हैं। बालेसर सिंह जाए तो हजार-पाँच सौ खर्च करने पर लड़की मिल सकती है। तमोलगढ़ आदिवासी बहुल इलाका है। वहाँ लोग जायज-नाजायज ढंग से लड़की खरीद-बिक्री का काम करते हैं। जिनकी शादी नहीं होती, वहीं से लड़की खरीद लाते हैं। घर आकर अपनी ही जाति का बताते हैं। जैसे पूछता भी कौन है। नाले का जल भी गंगा नदी में मिल कर पवित्र हो जाता है, ‘सुरसरि’ कहलाने लगता है।

पिछले कई दिनों से बाबू बालेसर सिंह दिखलाई नहीं दे रहे हैं। किसी को पता नहीं कहाँ निकले हैं। एक दिन लोगों ने देखा कि वे लौट आए हैं। उनके साथ एक लड़की भी है। सारा गाँव थोड़ी ही देर में जमा था बूढ़े-जवान, बच्चे-बच्चियाँ। दलान पर भी मर्द लोग जमा थे। ठहाठही लगी थी। औरतें लड़की देखने को उतावली थीं।

लड़की देखने में तो थी काली, मगर पानी था उसके मुँह पर। गोल गुथनी। न लम्बी, ना नाटी। देह पर गिलट के एक-दो जेवर। जो भी देखकर लौटती, अपने-अपने ढंग से प्रतिक्रिया व्यक्त करती।

“पता नहीं बाबू साहब किस जाति की पतुरिया उठा लाए हैं।” रामधनी की घरवाली ने कहा।

“कुछ भी कहो, बेचारे का घर तो बस गया। कोई एक लोटा पानी देने वाला नहीं था। अपने से मुँह-हाथ झोलना पड़ता था। अब तो इससे छुटकारा मिल जाएगा बेचारे को। तेल-पानी की कोई तकलीफ नहीं रहेगी।” रामपुर वाली ने बालेसर सिंह की तरफदारी की।

“सो तो है बहिन, लेकिन जाँत-पाँत भी तो कोई चीज है। है कि नहीं लाल दीदी?” रामधनी की घरवाली ने रामलगन की घरवाली से अपना समर्थन माँगा।

“कहती तो तुम ठीक हो दुलहिन, लेकिन नदी का पानी और औरत की कोई जात नहीं होती। नदी का पानी कहाँ से आया है, कोई नहीं जानता है। जैसे ही जो मर्द की जात, वही औरत की। रामफल की दादी भी तो तमोलगढ़ से आई थी। किस तरह निभाया उन्होंने। आज भी लोग उनका नाम लेते हैं कि नहीं?”

रामलगन की घरवाली को भी अपनी ओर नहीं पाकर रामधनी की घरवाली चुपा गई।

“का बालेसर भाई, आज चेहरा बहुत दमक रहा है।” नदी की तरफ से आ रहे बालेसर सिंह को देखकर रामनिहोरा ने दूर से ही कहा।

“चेहरा दमकेगा क्यों नहीं निहोरा? आखिर बालेसर का घर जो बस गया। हाड़ में हरदी लग गई। खुशी तो तुम्हें भी होनी चाहिए। नई-नवेली भौजाई आई है। इस साल भौजेया के संग होली गहमगट्ट खेलोगे।” रामखेलावन ने चुटकी ली। वे बालेसर सिंह से उम्र और सम्बन्ध, दोनों में ही बड़े हैं।

“सो तो ठीक कहते हो खेलावन चाचा। इस साल भौजेया से जम कर होली खेलेंगे, क्यों बालेसर भाई?”

बालेसर सिंह के चेहरे पर उस उम्र में भी किशोरों जैसी लज्जा उभर आई।

बालेसर सिंह के घर में औरत तो आ गई लेकिन घर की जमीन-जायदाद बिक-बिका गई। अब उनके पास एक अदद जोरू थी, जमीन नहीं। गरीब के पास दोनों चीज हो भी कैसे सकती हैं। यह तो बाबू छबीला सिंह जैसे धनपतियों के लिए ही है, जिनके पास एक साथ घर-जमीन और जोरू सब कुछ हैं।

बालेसर अपनी घरवाली को खूब मानते थे। उसकी छोटी-बड़ी इच्छा पूरी करने की भरसक चेष्टा करते थे। अब वे संतुष्ट थे। जर-जमीन नहीं है तो क्या, शरीर तो है। जब तक शरीर में दम है उसे कोई तकलीफ नहीं होने देंगे।

कई साल बीत गए। घर में कोई खुशी नहीं आई। घर सूना-सूना लगता। गाँव जेवार के लोग भी टोकने लगे। उन दोनों को भी चिन्ता होने लगी। वैद्य-हकीम से दवा करवाई, ओझा गुणी से गण्डे-ताबीज बनवाए, किस देवी-देवता के आगे सिर नहीं पटका, सिरनी-बताशे नहीं चढ़ाए? कुछ लोगों ने बताया कि शहर के अस्पताल में एक लेडी डॉक्टर आई हैं, उसके हाथ में बहुत जस है। लोगों से उधार-पैच लेकर उससे भी दिखलाया। वह उधार कहीं इधर जाकर चुकता हो पाया है।

बारह बरस के बाद घूरे के भी भाग फिरते हैं। बालेसर सिंह के ऊसर घर में भी एक बिरवा उगा। बुढ़ापे में बेटा पाकर वे निहाल हो उठे। जान उपछ कर उन्होंने उसकी छठी में खर्च किया। पुरखों को पानी देने वाला तो हो गया घर में। वंश की बेल तो बढ़ेगी।

लेकिन बालेसर सिंह के भाग्य में बेटे का मुँह अधिक दिनों तक देखना नहीं बदा था। एक दिन काम करके लौटे। धूप अधिक थी। खाली पेट थे। कहीं रस-पानी का जोग नहीं हो सका था। सो लू लग गई। लोग उठा-पठा कर घर लेते आए। बहुत से टोटके, उपचार किए गए लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। साँझ होते-होते बालेसर की मिट्टी उठ गई।

बालेसर की विधवा पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। कोई जमीन-जायदाद तो थी नहीं, जिससे माँ-बेटे गुजर गुजरान करते। बालेसर सिंह की विधवा को रोने-धोने का भी अधिक समय नहीं मिला। उसे छबीला सिंह के घर कुटान-पिसान में लगना पड़ा। बेटा बेहद कमजोर था। कई वर्षों तक अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो पाता था। बोलना भी उसने देर से ही शुरू किया था।

बालेसर सिंह कहते थे कि बेटा हुआ तो उसका नाम कलक्टर सिंह रखेंगे। पता नहीं वह अपने बेटे को कलक्टर बनाना चाहते थे या जानते थे कि अपने बेटे को कलक्टर तो नहीं बना पाएँगे, इसलिए कलक्टर नाम रख कर ही अपनी साध पूरी करना चाहते थे।

कलक्टर की माँ कहती थी कि उसके बाप की बड़ी इच्छा थी कि उसका बेटा खूब पढ़े-लिखे, बड़ा आदमी बने, जैसे मालिक का बेटा। मगर मरे बाप की कोई इच्छा पूरी नहीं हुई। कलक्टर शरीर से रोगी और कमजोर था। माँ दिन भर जांगड़-तोड़ मेहनत के बाद किसी तरह दो वक्त की रोटी जुटा पाती थी। बेटा दिन भर घर पर बैठा या खेलता रहता था।

एक दिन छबीला सिंह के कहने पर उसकी माँ ने उनके जानवर चराने के काम पर लगा दिया।

रात में कलक्टर की माँ बाबू साहब के यहाँ काम निपटा कर आती। वहाँ से खाने का जो सामान लाती दोनों माँ-बेटे खाते। माँ कलक्टर के हाथ-पाँव दबा देती। कभी-कभी किस्से कहानियाँ भी सुना देती। लोकगीत भी वह बहुत अच्छा गाती थी। देर-देर तक कोई न कोई गीत गुनगुनाती रहती। तब तक कलक्टर सो जाता। गाते-गाते गीत का स्वर धीमा पड़ने लगता और वह भी गहरी नींद सो जाती। दिन भर की थकावट उसे नींद की वादियों में ले जाती।

यह सिलसिला कई वर्षों तक चलता रहा। एक दिन कलक्टर की माँ की छाती में दर्द हुआ और वह मूर्च्छित हो गई। वह मूर्च्छा कभी टूटी नहीं। उसे दूसरी दुनिया में ले गई। बाप पहले ही जा चुके थे। अंतिम सहारा माँ थी, वह भी उसे अकेला छोड़ कर चली गई। वह कई दिनों तक रोता रहा। बाप की मृत्यु तो उसे याद नहीं थी, किन्तु माँ की मृत्यु ने उसे भीतर तक हिला दिया था। घर अब भाँय-भाँय करता था। घर का सन्नाटा काटने दौड़ता। घर के एक-एक जर्ने में माँ की याद पेवस्त थी। उसे माँ की बहुत याद आती। नेह-छोह याद आता। उसकी आँखें छलछला आतीं। उस दिन तो वह फूट-फूट कर रोता, जिस दिन उसे थोड़ी-सी भूल के लिए बुरी तरह पीटा जाता। वह बिना खाए-पिए सो जाता। उसे कोई जगा कर खिलाने वाला नहीं था। बिना माँ-बाप के अनाथ को कौन पूछता?

माँ के मरने के बाद ही उसका मन गाँव से उचट गया। उसके गाँव के कुछ

लोग शहर में रहते थे। जब भी वे गाँव आते वह किसी तरह समय निकाल कर उनके पास पहुँच जाता। उनके मुँह से शहर की बातें सुनना उसे बहुत अच्छा लगता था। वे इतनी दिलचस्प होती थीं, जैसी परिकथाएँ। उसका मन भी शहर जाने को हो उठता। उसके लिए अब गाँव में रह ही क्या गया था? माँ की ममतामयी यादें और छोटी-सी भूल के लिए भी मालिक द्वारा दी जाने वाली जली-कटी बातें और मार थी।

प्रतिदिन की तरह उस दिन भी वह जानवरों को चराने ले गया था। जानवरों को चरने के लिए छोड़ कर वह एक पेड़ के नीचे गमछा बिछा कर सो गया। रोज वह इसी तरह जानवरों को चरने के लिए छोड़ कर सो जाता था और शाम में सबको हाँक कर ले जाता था। उस दिन जब वह नींद में था कि शोरगुल सुन कर उसकी नींद खुल गई। उसने देखा कि उसके जानवर कुछ दूर में खेतों में लगे धान के बीहन चर गए हैं। उन्हें रौंद भी डाला है। खेत वाला आग-बबूला था। वह डर गया। मालिक से भी पिटने का भय था। वही हुआ जिसका उसे डर था। उस शाम जब वह जानवरों को लेकर लौटा, तो मालिक ने उसे बेरहमी से पीटा। उस किसान ने पहले ही आकर मालिक से सब कुछ कह दिया था।

अपने मालिक से पिटकर जब वह घर लौटा तो उसकी देह बुरी तरह पिरा रही थी। गत्तर-गत्तर में डण्डे की मार टभक रही थी। उससे खाया भी नहीं गया। देर-रात तक नींद नहीं लगी। उसे अपने पिता, जिन्हें उसने कभी देखा भी नहीं था, की बेपनाह याद आई। वह सोचने लगा यदि वे जीवित होते तो उसकी यह दुर्दशा नहीं होती। वह किसी स्कूल में पढ़ रहा होता, जैसे गाँव के दूसरे लड़के पढ़ते हैं। माँ की याद आते ही वह बिलख-बिलख कर रो पड़ा। देर तक रोता रहा। कब आँखें लग गईं, उसे पता भी नहीं चला।

भोर हो गई। सूरज ऊपर चढ़ आया था। सबके मवेशी खुल गए। कलक्टर अब तक जानवरों को खोलने नहीं आया। छबीला सिंह गुस्से में हैं।

“बुझावन सिंह!”

“जी सरकार।”

“जानवर अभी तक बँधे हैं, कलक्टरवा स्साला कहाँ गया? तुरन्त पकड़ कर लाइए हरामजादे को। हराम की खा-खाकर गदहे की तरह मोटा हो गया है। आज स्साले मादरचो...की चूतड़ की खाल खींच लूँगा।” और वे एक ही साँस में कई भद्दी-मोटी गालियाँ बक गए।

बुझावन सिंह ने जाकर देखा। दरवाजे पर सांकल चढ़ी है और कलक्टर का कहीं पता नहीं है। उसने इधर-उधर देखा। आसपास के कई लोगों से पूछा भी। किसी ने उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं बताया। उसका माथा ठनका। उसने लौट कर छबीला सिंह से कहा, “मालिक, लगता है कलक्टर स्साला भाग गया। उसका कहीं अता-पता नहीं है।”

छबीला सिंह गुस्से से इधर-उधर घूमते रहे। यदि भूल से भी कलक्टर उनके सामने पड़ जाता तो उसे कच्चा चबा जाते।

कलक्टर गाँव से भाग गया। वह उस गाँव में नहीं रहना चाहता था। जहाँ उसकी माँ नहीं थी। सभी उसे कुत्ते की तरह दुरदुराते थे। कोई भी उससे आदमी की तरह पेश नहीं आता था, जैसे वह आदमी नहीं जानवर का बच्चा हो। जानवर के बच्चे को भी लोग प्यार से दुलारते-चुमकारते हैं। लेकिन वह...वह बात उसे कचोट जाती। उसकी आँखें भर आतीं। मन उदास हो जाता। मगर किससे कहे? कौन सुनने वाला था उसके मन की पीड़ा?

भटकता, रास्ता पूछता वह कई दिनों में शहर पहुँचा। इसके पहले वह अपने गाँव से कभी नहीं निकला था। इतनी लम्बी यात्रा भी पहले कभी नहीं की थी उसने। उसके तलुवे लहूलुहान हो गए थे। शहर उसके लिए एकदम अजनबी था। कहाँ रहे, क्या करे, एक साथ इतने सवाल उसके सामने थे? वह घबरा गया। एक बार लगा उसे अपना गाँव छोड़कर नहीं भागना चाहिए था। दुख तकलीफ कहाँ नहीं है। कम से कम वहाँ उसे सभी पहचानते तो थे। यहाँ तो कोई नहीं पहचानता, वह किसी को नहीं जानता।

शहर आए उसे तीन दिन हो गए थे। अन्न का एक दाना भी पेट में नहीं गया था। गाँव का संस्कार किसी से कुछ भी माँगने को रोक रहा था। कई जगह उसने काम की याचना की। एक अपरिचित लड़के को कौन काम देता? काम था भी कहाँ?

इसी तरह एक दिन वह भूखा-प्यासा काम की तलाश में घूम रहा था कि उसी के गाँव का एक आदमी उसे मिल गए। उसने उसे अपना दुखड़ा सुनाया। वह द्रवित हो गया और उसे अपने घर लिवा लाया।

कई दिनों तक उसे अपने पास रखा। कलक्टर के जान में जान आई। यह आदमी उसको देवता लगा। यदि वह नहीं मिलता तो वह इस शहर में भूखा मर जाता। उसका रोआँ-रोआँ उस आदमी के प्रति उपकृत हो रहा था।

एक दिन वह कलक्टर सिंह को अपने कार्यालय में ले गया। वह नगरपालिका कार्यालय में बड़ा बाबू था। उसको लेकर अध्यक्ष से मिला। वैसे वह पहले ही अध्यक्ष से इस सम्बन्ध में बात कर चुका था। उसे जमादार का काम मिल गया। उसे बेहद खुशी हुई। इसके लिए वह अपने ग्रामीण बड़े बाबू का अहसानमंद था। काम पर जाने के पूर्व वह उनके घर के सभी छोटे-बड़े काम कर दिया करता था। जब उसने अलग डेरा रख लिया, उसके बाद भी वह बीच-बीच में उनसे मिलने आता। उनकी पत्नी से पूछ कर जो भी काम होता कर दिया करता था। वे लोग उसे मानने लगे थे।

प्रतिदिन मेहतर-मेहतरानियों की हाजिरी लेना, मुहल्ले की सड़कों, गलियों को साफ रखना, सप्ताह में एक दिन पाखाने धुलवाना, यही तो दिनचर्या थी उसकी। शुरू

में उसे थोड़ी झिझक हुई। दुर्गन्ध से उसकी नाक फटने को हो आती तो वह नाक पर गमछा लपेट लेता। सोचता बाबू साहब होकर भंगियों का काम...उसे कैसा-कैसा लगता। मगर पापी पेट जो न करवाए। आगे चलकर मन में ये भाव धीरे-धीरे ऊँघने लगे। फिर कब सो गए वह जान न सका।

इस काम में वह पूरी तरह रस-बस गया। अधिकार भाव ने उसके अहं को सन्तुष्ट किया। अधिकार कितना ही छोटा और सीमित क्यों न हो उसका अपना नशा है। कलक्टर सिंह पर भी यह नशा छाने लगा। वह मेहतर-मेहतरानियों पर रौब गाँठता। जिस दिन कोई अनुपस्थित होता, उसकी हाजिरी काट देता। दूसरे दिन खूब डाँटता। कोई विलम्ब से आता, तो उसकी कम लानत-मलामत नहीं करता। वेतन काट लेने का भय दिखाता। वैसे सभी को पता था कि जमादार ऐसा नहीं करेगा भले ही वह कितना ही डाँटे-दबारे, मगर है वह दिल का अच्छा आदमी।

मेहतरानियों में फुलिया भी थी। रमधनबा मेहतर की बेटी। धतूरे के फूल की तरह खिली। चाल में एक अजीब मस्ती। आँखों में ऐसा मद था कि कोई भी उसकी एक बूँद पाकर नशे में झूमने लग सकता। रंग तो उसका काला था मगर चेहरे पर गजब का लावण्य था। उस पर बड़ी-बड़ी आँखें, जो रूप को दृष्टि प्रदान करती थीं।

जब वह सुबह-सुबह झूमती हुई दूर से ही आती दिख जाती, तो कलक्टर सिंह में नया जीवन आ जाता। जब वह निकट आती, तो उसकी आँखों में ऊँघता हुआ नशा होता। अल्हड़पन उसके व्यक्तित्व को एक नया आयाम देता। वह चुपचाप एक तरफ खड़ी हो जाती। कमउम्र की सभी मेहतरानियाँ एक तरफ दीवार से लग कर खड़ी हो जातीं। घास-टोंगती हुई फुलिया सबसे अलग दीखती।

फुलिया को जमादार कलक्टर सिंह की तरफ से सात खून माफ थे। सुबह-सुबह जब फुलिया हाजिरी देने आती कलक्टर सिंह को सूरज कुछ अधिक खूबसूरत लगता। फुलिया को पता था कि जमादार पर उसके रूप का जादू चल चुका है।

फुलिया को दूर से आते देख कर ही जमादार अपने कपड़े ठीक करने लगता। गन्दे रूमाल, जो कपड़े का एक टुकड़ा होता, से अपना चेहरा पोंछता। मूँछों पर ताव देता। मन के आइने में अपने को पूरी तरह निहार कर फटी-पुरानी हाजिरी बही को ठीक करता। सभी मेहतर-मेहतरानियाँ जानते थे कि फुलिया के आए बिना हाजिरी लेना शुरू नहीं करेगा। जैसे ही उसकी नजर फुलिया पर पड़ती, सब एक-एक कर जमादार के पास से हटने लगते।

फुलिया आती। तिरछी नजरों से जमादार की ओर देखती। होंठों पर पुटुस के फूल खिले होते। नाक की नथुनी थोड़ा काँपती। फुलिया का यह अन्दाज जमादार के मन में भूचाल पैदा कर देता। हाजिरी लेने में त्रुटि हो जाती। इसे छिपाने के लिए वह अगला नाम और भी ज्यादा जोर से बोलता।

फुलिया की सहेलियाँ उसे चिकोटी काटतीं। उसका मज ठाक बनातीं।
“क्यों री फुलिया, यह जमादार तो तुम्हारे नाम पर साँसें पेल रहा है।”
“धत्!” फुलिया ऐसा मुँह बनाती, जैसे उसे यह मज ठाक अच्छा नहीं लगा।
“बन मत री, यह स्साला, जमादार एक दिन तेरे नाम पर पगला कर गली-गली घूमेगा।”

कलक्टर सिंह का अधिकांश समय मेहतर टोले में बीतता। उसकी अपनी कोई जमात थी भी नहीं। दूसरे जमादारों से भी उसका उतना हेम-छेम नहीं था। मेहतर टोले में उसकी पूछ थी। एक तो वह जमादार था और दूसरे महीने में एक-दो बार ‘बहत्तर’ की एक बोटल आती थी। सभी छक कर पीते। फिर तो हल्ला-गुल्ला, नाच-गान, खेल-कूद, गाली-गलौज सब कुछ होता। कोई मौज में किसी मेहतरानी को, जमादार को लगा कर गालियाँ देता।

“यह क्या कह रहे हो झम्मन!” जमादार उन्हें बरजता। लजा जाता। मगर कहीं भीतर से उसे अच्छा भी लगता।

जब सभी पीकर नशे में धुत रहते वह किसी पेड़ के नीचे एकान्त में फुलिया से बातें करता। वह उसके लिए सबसे छिपा कर अंग्रेजी दारू और चखने के लिए चटपटी चीजें ले जाता। फुलिया खुश हो जाती। उसकी खुशी ही जमादार की सम्पत्ति थी।

बीच-बीच में वह फुलिया के लिए चोंच वाली चोली, गमकौवा तेल-साबुन लाता। फुलिया जब उसकी ओर देख कर मुस्करा देती तो उसकी कीमत वसूल हो जाती। समय ने फुलिया को व्यावहारिक बना दिया था। वह समझती थी कि इससे अधिक अभी उसे देना ठीक नहीं। जितना ललचाया जाए पालतू जानवर की तरह वह उसके पीछे-पीछे घूमता रहेगा।

मेहतर टोले में सभी को पता था कि जमादार का फुलिया से लगाव है। एकाध ने इसका दबी जुबान से विरोध करना चाहा। लेकिन सबने उसे दबा दिया। जमादार से उन्हें कई तरह की सुविधाएँ मिली हुई हैं। उसी के चलते कभी उनकी हाजिरी नहीं कटती। इसके पहले वाला जमादार एक ही राड़ था। बात-बात पर पीटता, हाजिरी काट लेता, बेगार करवाता था। मेहतरानियों को कमरे में बंद कर नंगा करके पीटता था। उनकी इज्जत से खिलवाड़ करता था। वह हर काम में खुच्चर निकालता था।

कलक्टर सिंह एक छोटा-सा कमरा लेकर रहता था। दिन भर का थका-माँदा लौटता। वह उदास हो जाता। दिन भर की व्यस्तता में तो उसका मन रम जाता। रात का अकेलापन उसे अच्छा नहीं लगता। देर-देर तक नींद नहीं आती। अपनी बीती जिन्दगी याद आती। पिता का प्यार उसने जाना नहीं। विधवा माँ दिए की लौ की तरह जुगाए रखती। अकेला छोड़ कर वह भी चली गई। दुत्कार, अपमान, मार और घुटन उसकी जिन्दगी हो गई। फिर उसे शहर आने की बातें याद आतीं। जब भी माँ

की बातें याद आतीं, उसकी आँखें भर आतीं। वह बेचैन हो उठता। कभी-कभी पूरी रात आँखों में कट जाती। सोचता, कितना अकेला होकर रह गया है वह। फुलिया और उसकी बिरादरी के लोग न हों, तो वह बौखला कर मर जाए। कहने को तो वह बाबू साहब के यहाँ पैदा हुआ है मगर उसे इसका क्या सुख मिला? कुछ भी तो नहीं। पिता गरीब थे सो जात वालों ने अपनी बेटी नहीं दी। यह भी उस गरीब बाप का गरीब बेटा है। वैसे कोई भी जात वाला अपनी बेटी नहीं देगा। ठीक ही है, गरीबों की कोई जात, कोई धर्म और कोई देश नहीं होता। गरीबी और भूख उसकी नियति है, वह सिर्फ अपमान और शोषण के लिए पैदा होता है।

एक दिन हाजिरी के बाद जमादार ने फुलिया से कहा “फुलिया तुम तनिक रूकना।” फुलिया के चेहरे पर व्यंग्यभरी मुस्कान थी। फुलिया दूसरी तरफ देखने लगी। उसके काले भरे गालों पर कोयले की आग सी लाली फैल गई। उसमें लज्जा और क्रोध के मिले-जुले भाव थे। हाजिरी के बाद सभी मेहतर-मेहतारानियाँ चले गए। फुलिया रह गई। जमादार अब तक अपनी बही सँभाल चुका था। उसने फुलिया की तरफ देखा। फुलिया से उसकी आँखें मिलीं। फुलिया की आँखों में शरारत थी।

“कहो जमादार साहबू बू...बू! क्या काम है तुम्हें मुझसे?”

जमादार एक क्षण के लिए चुप रहा।

“फुलिया आज तुझसे बहुत जरूरी बात करनी है।” वह थोड़ा हकला गया “साँझ में तुम नदी के किनारे इमली के पेड़ के नीचे मिलना।” फुलिया जानती है कि इमली का पेड़ सबसे किनारे है।

“इमली के पेड़ के नीचू क्या करना है जमादार साहब?” फुलिया के बोलने में चिढ़ाने का भाव है।

“ऐसे कोई खास बात नहीं है।” जमादार मन की बात कह नहीं सका।

“तब काहे को मिलना जमादार साहब?”

“वहीं कुछ बातें करनी हैं तुझसे।”

“यहाँ नहीं हो सकती क्या?”

“नहीं, बात ही कुछ ऐसी है, जो यहाँ नहीं हो सकती। तुम जरूर आना फुलिया! भूलना नहीं। मैं तेरी राह देखूँगा।”

“जो हुकुम सरकार।”

साँझ हुई अँधेरे में उजास घुलमिल रहा है। साँझ और गहरा गई। पूरबी क्षितिज पर चाँद के निकलने का आभास उभरा। थोड़ी ही देर में वृक्षों की घनी शाखाओं से छनकर चाँदनी धरती पर बिखरने लगी थी। इमली के वृक्ष के नीचे बैठा जमादार फुलिया का इन्तजार कर रहा था। हर पल उसके लिए बोझिल हो रहा है। उत्तेजना में एक के बाद एक बीड़ी पीता और सोचता जा रहा है।

फुलिया क्यों नहीं आई अब तक? क्या बात है? कुछ हो गया है क्या? उसके मन में आशंकाओं के भँवर पड़ने लगे। वह नई बीड़ी सुलगाने ही जा रहा था कि चाँदनी के धूमिल प्रकाश में देखा...एक स्त्री की छाया उसकी ओर चली आ रही है। पहले तो वह झिझका। मगर अगले ही क्षण उसे विश्वास हो गया कि वह फुलिया है कोई और नहीं। ऐसी मस्तानी चाल और किसी की हो ही नहीं सकती। उसके निष्प्राण देह में पुनः जीवन का संचार हो गया। वह तो निराश होने लगा था। आज उसे जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण निर्णय जो लेना था।

जवान, मस्तानी फुलिया। उसे देखते ही जमादार का मन अंगड़ाइयाँ लेने लगा। वह तनिक और निकट आई, तो चाँदनी में उसकी नथुनी चमक उठी।

“तुमने बड़ी देर कर दी फुलिया!”

फुलिया मुस्कराई।

“मुझे तो लगा था कि तुम नहीं आओगी।” लगा जैसे जमादार की आवाज दूर से आ रही है।

“आती कैसे नहीं रज्जा! मेरा जालिम जमादार यहाँ मेरे लिए टकटकी बाँधता और भला मैं नहीं आती।” उसकी आवाज में चुहल का चाबुक था।

“बहुत सताती है री फुलिया!” इमली की डालियों से छन-छन कर चितकवरी चाँदनी फैल रही थी। झिंगुर की आवाज चारों दिशाओं में गूँजने लगी थी। चिड़ियों की चहचहाट शान्त पड़ने लगी थी। जमादार और फुलिया पत्थर पर आमने-सामने बैठे थे। दोनों के बीच कुछ देर के लिए खामोशी पसरी रही। जमादार ने एक साथ दो बीड़ियाँ सुलगवाईं। एक फुलिया की ओर बढ़ा दी और एक स्वयं पीने लगा। फुलिया ने एक बड़ी कश खींची। बीड़ी का एक हिस्सा दहक उठा। उस प्रकाश बिन्दु में फुलिया की नथुनी चमक उठी, एक अछूते बिम्ब की तरह। जमादार पर नशा-सा छा गया।

फुलिया ने जमादार की ओर देखा। उसकी आँखों में एक प्रश्न था “क्यों बुलाया है जमादार तुमने यहाँ?”

“फुलिया तुम जानती ही हो...” वह आगे बोल नहीं सका। एक मौन।

“मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ। तुम्हारे बिना मैं...” वह आगे नहीं बोल सका।

फुलिया बीड़ी पीती रही। रह-रह कर उसका साँवला रूप लहक उठता था। वह सोच रही थी। उसकी दृष्टि नदी के उस पार दूर-दूर तक फैले पलाश वन की ओर उठ गई थी। पलाश के फूलों की लाली चाँदनी में और दिलकश लग रही थी। वह भी तो पलाश का ही फूल है। आज चाँदनी में ऊवचूव करती और कल अन्धकार में डूब जाने की अभिशप्त।

“फुलिया, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम दोनों एक हो जाएँ?” अन्त तक

जमादार की आवाज कातर हो आई थी। फुलिया के फैसले पर ही उसका सब कुछ निर्भर था।

जमादार के इस प्रस्ताव पर फुलिया चौंकी। जमादार पगला तो नहीं गया है। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि जमादार ऐसा प्रस्ताव रखेगा। वह दलिद्वर और समाज के सबसे उपेक्षित अछूत जाति में पैदा हुई है। धिनौना काम करके पेट पालती है। बाप के शराब का इन्तजाम करने के लिए क्या कुछ नहीं करना पड़ता है। जमादार को खुश कर थोड़ी बहुत सुविधाएँ हासिल कर लेती है। इससे अधिक उसने कुछ सोचा ही नहीं था। इतना तो सपने में भी नहीं।

“यह आप क्या कह रहे हैं, जमादार साहेब? आप ऊँची जाति के और मैं कहाँ अछूत मेहतरानी। हम दोनों का क्या मेल? हम दोनों तो इस नदी की तरह हैं, जिसके दोनों पाट कभी नहीं मिलते।” फुलिया जमादार के प्रस्ताव से अकबका गई।

“नहीं फुलिया, ऐसा मत कहो। औरत मरद की कोई जात होती है क्या? कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। छोटा-बड़ा तो धन बनाता है। जिसके पास धन है वही बड़ा है, जो गरीब है वह छोटा है। बाबू साहेब होकर भी मैं गरीब घर में पैदा हुआ हूँ। एक गरीब को कोई बाबू साहेब अपनी बेटी देगा क्या? कभी नहीं, कभी नहीं देगा। जात तो रुपए-पैसे से, ओहदे और औकात से बनती री फुलिया! फुलिया तुम्हारी-हमारी एक जात है। हमारी कोई दूसरी जात नहीं है रे!”

फुलिया सुनती रही। जमादार की बातों में उसे दम लगा। लेकिन यह कैसे हो सकता है? दुनिया मानेगी क्या? उसकी जात-बिरादरी वाले मानेंगे?

“क्या सोच रही है फुलिया?”

“यही सोच रही हूँ, जमादार साहेब बात तो आप सत्त कह रहे हैं लेकिन क्या हमारी बिरादरी वाले मानेंगे कि उसकी जात-बिरादरी की कोई लड़की किसी दूसरी जात-बिरादरी वाले के घर जाकर बैठ जाए?”

“मैं चौधरी को मना लूँगा, फुलिया सिर्फ तुम हाँ कह दो।”

“मेरे हाँ कहने भर से क्या होता है जमादार साहेब!”

“तुम्हारी हाँ पर ही दुनिया टिकी है, फुलिया! तुम हाँ कह दो, चौधरी को मना लेना मेरा काम है।”

“इतना ही नहीं जमादार साहेब, चौधरी भोज देने को कहेंगे। भोज में सूअर और दारू पर ही मानेंगे।”

“तुम्हारे लिए मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ फुलिया! कहेंगे तो एक पैर पर खड़ा रहूँगा...।”

इसी समय पेड़ पर कोई चिड़िया बोल उठी।

रात का सन्नाटा बढ़ने लगा है। आकाश में चाँद ऊपर चढ़ आया है। जंगली फूलों की सुगन्ध से वातावरण बोझिल हो रहा है।

जमादार ने फुलिया की तरफ देखा। उसकी आँखों में चाँद झिलमिला रहा था। जमादार ने पहली बार फुलिया के हाथ अपने हाथों में लिए। एक गर्म अहसास! उसकी नसों में बिजली दौड़ गई जैसे। एक अनाम सुखद अनुभूति से भर गया जमादार। माँ की ममता की गर्माहट से वह परिचित था। किन्तु यह गर्माहट कुछ भिन्न किस्म की थी। जीवन में पहली बार किसी औरत की नर्म-गरमाहट की अनुभूति हो रही थी उसे। उसके मन-प्राण तरंगित हो उठे। वह कितनी ही देर तक उस सम्मोहन में डूबा रहा।

कलक्टर सिंह ने मेहतरो के टोले से थोड़ा हटकर अपना एक छोटा-सा घर बना लिया, फुलिया के होंठों पर पान की लाली तो गजब ढाती है। उस दिन जोखना की महतारी ने कहा था, “पान खाने पर फुलिया के होंठ टेसू के फूल जैसे दहकने लगते हैं।”

शादी के कई साल बीत गए। फुलिया की कोख नहीं भरी। वह उदास रहती। जब वह अकेली होती उसे अपनी सूनी कोख सालती। लोगों की बातों से भी कम पीड़ा नहीं पहुँचती। सब तरह-तरह की बातें करते। जितने मुँह उतनी बातें। कौन किसका मुँह बन्द करता।

“अरे, पाप का फल तो मिलता ही है। बाबू साहेब होकर मेहतारानी से सम्बन्ध करना...आखिर भगवान भी तो कहीं है कि नहीं?...कितना जुलूम किया सिंहवा ने।”

“हाँ जी, भगवान सब कुछ देखता है। आदमी के लिए क्या होता है। पाप का कोई न कोई ‘परासचित’ तो करना ही था।”

कलक्टर और फुलिया सब सुनते। पहले तो बुरा लगता था, अब अभ्यास हो गया।

फुलिया इधर बहुत दारू पीने लगी है। कलक्टर बार-बार बरजता है कि वह इतना दारू नहीं पीए, मगर वह बाज नहीं आती। फुलिया के कहने पर वही दारू का इन्तजाम कर देता है। आखिर क्या करे? पीती तो वह पहले भी थी। इधर रात-दिन नशे में रहने लगी है। कलक्टर को भय लगने लगा है।

कलक्टर जब भी मुहल्ले में आता मुझसे अवश्य मिलता। वह देर तक बैठता और अपने सुख-दुख की बातें करता। अपने जीवन के पृष्ठ पर पृष्ठ उलटता रहता।

एक बार उसने बताया कि कुछ ही महीने बाद वह रिटायर हो जाएगा।

पिछले कई सप्ताह से वह मुहल्ले में नहीं आ रहा था। उसकी जगह एक नया जमादार आने लगा था। एक दिन मैंने उससे पूछा “कलक्टर सिंह क्या कहीं बाहर गया है या बीमार है? कितने दिनों से दिख नहीं रहा है?” उसी से मालूम हुआ कि वह रिटायर हो गया है।

रिटायर होने के बाद दो-तीन बार आया। फिर उसका आना बन्द हो गया। मैं

भी उसे धीरे-धीरे भूल गया। वर्षों बाद आया तो उसे एकबारगी पहचान नहीं पाया। उसने अपना नाम नहीं बताया होता, तो शायद मैं पहचान भी नहीं पाता। एकदम बदल गया था वह।

“कहो, कैसे हो कलक्टर?”

“क्या कहूँ बाबू, सब कुछ उजड़ गया।”

“फुलिया कैसी है?” मुझे सहसा फुलिया की याद आई। कलक्टर रोने-रोने को हो आया। उसने आँखें पोंछते हुए कहा “वह कहाँ रही बाबू उसको गुजरे तो कई साल हो गए।” वह आगे कुछ नहीं कह सका।

“क्या हुआ था उसे।”

“कोई बाल-बच्चा नहीं होने से वह बहुत दुखी रहती थी। इसमें आदमी का क्या बस है। वह बाबू अपना दुख भूलाने के लिए बहुत पीने लगी। दारू ने उसे खोखला कर दिया। एक बार बीमार पड़ी तो फिर उठ नहीं सकी।”

उसकी आँखें डबडबा आईं।

“आजकल कहाँ हो?”

“रिटायर होने के बाद यहाँ मन नहीं लगा बाबू! सोचा, सब कुछ छोड़ देता हूँ तो जनम धरती काम आती है। कुछ भी हो जनम धरती माँ समान होती है। जब से गाँव से भागा था पहली बार बुढ़ापे में गया। पहले तो किसी ने पहचाना नहीं। मेरे लिए सब कुछ अपरिचित हो गया था। बूढ़े लोग गुजर गए थे, जो मुझे पहचान सकते थे। नये लोगों के लिए मैं अपरिचित था। मैंने अपना परिचय दिया। लगा कि मेरे जाने से किसी को खुशी नहीं हुई। आश्चर्य भले हुआ हो। वैसे मेरे बारे में गलत सही सभी जानते थे। मेरी घराड़ी पर बाबू छबीला सिंह के बेटे ने गोड़सार बनवा लिया था। बाबू छबीला सिंह तो अपने कब से गंगा लाभ कर चुके थे। गाँव में कोई भी मेरा हक दिलवाने को तैयार नहीं था। मेरा वहाँ रहना भी पसन्द नहीं था। इसमें एक कारण मेरा मेहतरानी से ब्याह करना भी था। यह भी वे सह जाते यदि मेरे पास धन-दौलत, माल-असवाब होता। मेरे पास कुछ तो नहीं था। यदि कोई चीज थी तो वह मेरी कुजात देह थी।...तब मैं कहाँ जाता? अन्तिम आसरे पर आया था। अपनी जमीन के लिए बाबू छबीला सिंह के बेटे से लड़ भी नहीं सकता था। हार-दार कर वहीं गैरमजरूआ जमीन में एक झोंपड़ी डाल ली। पेट पालने के लिए खेतों में मजदूरी करने लगा। अभाग कहाँ साथ छोड़ता है बाबू! इस बार हथिया नछतर बरसा नहीं। गाँव में अकाल पड़ गया। लोग दाने-दाने को मुँहताज हैं। कोई काम नहीं है। कोई किसी को पूछने वाला नहीं। जब अपना ही चूल्हा ठंडा है, तो कौन किसकी सुधि लेता है। भूख से मरने की नौबत आई तो शहर आ गया।” कलक्टर सिंह हाँफने लगा था। उसकी साँस फूल रही थी। कुछ देर बाद वह स्थिर हुआ।

“अब क्या करना चाहते हो?”

“भूख जो न करावे। कहावत है, ‘नींद न जाने टूटी खाट, प्यास न जाने धोबी घाट, भूख न जाने जात-कुजात’। अब पेट के लिए जो भी न करना पड़े। देह में दम भी तो नहीं रह गया हैं। बोरा ओढ़ कर बाबू भैया का पाखाना साफ कर देता हूँ। जो मिल जाता है उसी से यह दोज ख भरता हूँ।” वह अत्यंत कातर हो गया था।

मैंने उसे खाना और एक रुपया दिलवा दिया। उसे दूसरे दिन आने को कहा।

उसे धीरे-धीरे जाते देखता रहा। झुका थका-थका। वह चला गया और मैं उसी के बारे में सोचता रहा।

डॉ. दयानन्द बटोही

सुरंग

मैं जानता हूँ मुझे बराबर उलाहना लोग देते रहे हैं, गोया कि मैं आदमी न होकर अन्य जीव हूँ। फिर भी मैंने हार नहीं मानी है, न ही मान रहा हूँ। मुझे अभी तनिक-सा परिश्रम नहीं करना। बल्कि ढेर सारे संघर्ष करने हैं। मुझे कतई दुख नहीं कि मुझे रिसर्च नहीं करने दिया गया। मुझे जाति-पाति के पचड़े के कारण टकराना पड़ा है। अच्छा भी है एक दूसरे को जब तक हम नहीं जानते, तब तक खूब गोल-गोल बातें होती हैं। ज्योंही जाति की गंध लोगों को मिलती है, लोग सुअर जैसा मुँह निपोरने लगते हैं। जाति की गंध टाइटल से मिलती है। यदि टाइटल नहीं है तो रंग, पहनावे पर धावा बोलते हैं। जाति ठेकेदारों द्वारा जाति पूछने पर मेरे शरीर में जहर फैल जाता है।

इस समय मैं अपने को अकेला समझ रहा हूँ फिर भी दम नहीं तोड़ रहा हूँ। तोड़ूँ भी कैसे? डॉ. विष्णु ने जब पूछा, “आपका एम. ए. का नम्बर कैसा है?”

तब बिना झिझक के झूठ कह दिया “नम्बर तो अच्छा नहीं है।”

उनकी नाक-भौं में कोई बदलाव नहीं आ रहा मैं वह देख रहा हूँ। सिर्फ लिज-लिज ताक रहे हैं। साक्षात्कार सात बजे सुबह से चल रहा है। इस समय दस बजकर बीस मिनट हुए हैं। मुझसे पहले कई लड़के-लड़कियों का इंटरव्यू हो चुका है।

वे मुझसे दूसरा प्रश्न पूछते हैं “आप कुछ लिखते भी हैं?”

“लिखता तो हूँ।” कहकर मैं ऊहापोह में न पड़कर प्रेमचन्द, मुक्तिबोध, डॉ. अम्बेडकर, गाँधी, बुद्ध के चित्रों पर आँखें गड़ा देता हूँ।

“ठीक है!” डॉ. पासवान ने कहा “इनकी कई रचनाएँ पढ़ी हैं, देखी हैं। छोटी-बड़ी पत्रिकाओं में अच्छा लिखते हैं।” डॉ. विष्णु ने इतना अधिक नमक-मिर्च मेरे कान में डाल दिया कि मैं बहरा-सा हो गया।

“लिखते हैं तो क्या हुआ, आखिर हरिजन ही तो हैं?” मेरी नसों में दर्द के कीड़े कुलबुलाने लगे। डॉ. सुखदेव अपनी टोपी टेढ़ी करते हुए कहते हैं “हरिजन हैं आप?”

“जी हाँ” मैं कह देता हूँ।

“आप लोगों को क्या लग रहा हूँ।” मैंने चुटकी लेते हुए कहा, हालांकि मैं कभी रिसर्च के लिए इंटरव्यू बोर्ड के सामने बैठा हूँ।

डॉ. पासवान ने अंगुली दिखाते हुए कहा “हरिजन रहें या दुर्जन, समाज के लोगों ने बहुत धोखा दिया है आज तक।”

डॉ. विष्णु सर हिलाते हुए कहते हैं, “कोई हो, सरकार ने भले कानून बना दिया हो, घोड़े की रस्सी तो हम सभी के हाथ में है। आपका रिसर्च में नहीं होगा।”

मुझे लगा वे मुझे जिंदा जला देना चाहते हैं। मेरा सोया हुआ दर्द पिघलने लगा है और दर्द की बेचैनी में संतुलित रहना मेरे बस की बात नहीं। मैंने भी ईंट का जवाब पत्थर से देना उचित समझा।

“डॉ. साहब आप भूल जाएँ कि मैं हरिजन हूँ, गुलाम हूँ। आज तक आप जैसे तानाशाह ने अँधेरे में हम लोगों को रखा है। अब मैं पूछता हूँ, आप क्यों मुझे रिसर्च नहीं करने देंगे?”

उन्होंने हॉफना शुरू किया। बगैर थूक फेंके घोंट लिए और कहा “क्योंकि आपका एम. ए. का नम्बर अच्छा नहीं है। द्वितीय क्लास है।”

“द्वितीय क्लास आप लोगों ने रखा ही क्यों है?”

“मैंने थोड़े ही रखा है।”

“ठीक है आप जैसे लोगों ने तो रखा है।” बात बढ़नी स्वाभाविक है क्योंकि खौलते कड़ाह में एक बैंगन को डाला जा रहा है। मैं अन्तरमन में महसूस कर रहा हूँ। मैं टेबुल पर हाथ पटकते हुए कहता हूँ “डॉ. साहब आप भूल जाएँ कि आप लोग अँधेरे के बीच कुतर-कुतर कर हम दलितों को खाते डकारते रहे हैं। अब यह पचेगा ही नहीं आपको।”

“शट अप!”

विष्णु चिल्लाते हुए चश्मा उतारने लगे हैं। टाई ठीक कर रहे हैं, चेहरा काँप रहा है, सुर्ख हो गया है।

“व्हाई? प्लीज यू डोंट गिव मी हर्ट...।” मैं इत्मिनान होकर पूछता हूँ।

चेहरे पर पसीने की बूँदें पपड़िया रही हैं। मुझे लगता है अब इनका दिल पसीज रहा है। खामोशी को तोड़ते हुए सुखदेव भी हॉ में हॉ मिला रहे हैं। “आप वाइस चांसलर के पास जाइए।”

“क्यों जाऊँ?”

“क्योंकि आप सेकेण्ड क्लास एम.ए. हैं। मार्क्स कम हैं, रिसर्च नहीं कर सकते।”

“केवल मैं या और कोई। सभी डिपार्टमेंट में थर्ड क्लास रिसर्च कर रहे हैं, मेरा तो सेकेण्ड क्लास है, केमिस्ट्री, फिजिक्स, हिस्ट्री, इकनामिक्स में।”

विष्णु हॉफ रहे हैं। ऐसा मैं महसूस कर रहा हूँ। वह भी भावावेश में आ गए हैं।

“हाँ-हाँ वैसे तो डॉ. रूपेन सक्सेना, डॉ. गजेन्द्र, डॉ. फगुनी सिंह, थर्ड क्लास एम.एस.सी. हैं, एम.ए. हैं किन्तु वे तो ऊँचे परिवार के हैं।” अब उन्हें लगा अधिक कुछ कहना उनका भंडा-फोड़ करना है। वह हाँफ रहे हैं।

मुझे लगा वाइस चांसलर के पास जाने से पहले अपने अन्दर खौलते खून को उगल दूँ तब ठीक होगा। मैंने टेबुल पर जोर से मुक्का मारा। वे लोग घबरा रहे हैं पर कुटिल हँसी भी हँस रहे हैं।

“डॉ. साहब यह भूल जाइए कि आपसे दया या भीख माँग रहा हूँ। मैं पूछता हूँ आप लोग हरिजन कल्याण का ढिंढोरा क्यों पीटते हैं? आरक्षण कहाँ दे रहे हैं आप? जब लोग अच्छा कर रहे हैं, तो आप क्या कल्याण करेंगे? चौदह प्रतिशत सुरक्षित का फतवा क्यों देते हैं? सरकार तथा मानवता की आँख में धूल झोंक रहे हैं। मुझे आप रिसर्च नहीं करने दें, कोई बात नहीं लेकिन कोटा आपको पूरा करना है।” मेरे जहन में खून तेज हो गया है। विभागाध्यक्ष जम्हाई ले रहे हैं। पट-पट अंगुलियों को तोड़ते हैं और कहते हैं

“मुझसे नहीं वाइस चांसलर से पूछिए।”

“ठीक है” मैं कहकर कुर्सी को धकेलता चला आया।

वाइस चांसलर का दरवाजा बन्द है और मैं पीतल के चमकते प्लेट पर पढ़ रहा हूँ ‘आऊट’। ‘आऊट’ शब्द से मेरे अन्दर चिंगारी फैल रही है। विश्वविद्यालय के तमाम तनावों को झेलता हुआ छात्रावास थका-थका आ गया हूँ। मैं सोचता हूँ नब्बे प्रतिशत लोग इसी तरह दबाए जाते रहे हैं कि तभी रसोइया अयोध्या पण्डित आकर हाथ जोड़ देता है “बाऊजी! खाना संझा में खाईब कि नाही, पैसा कुछ देब।”

मैं पसीने में भींग जाता हूँ। पैसे तो परसों ही समाप्त हो गए थे। घर में पिताजी भी बीमारी से लड़ रहे हैं। माँ भी आजकल दिन गिन रही है। पत्नी उलाहना देती है कि दो बच्चों के बाप होकर भी पढ़ रहे हो। मैं पुनः सोचने लगता हूँ आखिर अँधेरी सुरंग में हम लोग कब तक रहेंगे? हाथी और हाथी के सूँड दोनों को सूई के छिद्र से निकालना चाहते हैं।

लोग कहते हैं बीस वर्षों से सुविधा दी जा रही है, जब मैं कई सौ वर्षों तक अँधेरे में रखा गया है। चाहते हैं तुरंत दौड़ने लगे। संस्कार तो धीरे-धीरे ही बदला होगा इन लोगों का भी। ये लोग भी तो कभी अछूत थे। आज बड़े तेज हैं कितने आइ.सी. एस. होते थे। हुँह। आज हरिजन दुर्जन। मुझे लगा अन्दर जहर फैल रहा है। मैंने रसोइया पण्डित से कुछ नहीं कहा तो भी वह भाँप जाता है। मैंने साफ कहा “भाई पैसे नहीं हैं। खाना नहीं खाऊँगा।” “पैसे नहीं हैं?” वह हाथ जोड़ दिया, “सरकार भूखे रहिहौ खाना तो खाई के पड़ी?” मैं बिना खाए रात को यों ही सो जाता हूँ। तमाम चिन्ताएँ हाँ हूँ कर रही हैं। सोने में भी शान्ति कहाँ सिर्फ दुश्चिन्ताएँ।

सुबह हावर्ड हॉल से मैं जयशंकर के साथ गेट के बाहर आ गया था कि इत्फाक से नागेन्द्र वर्मा मिला। हाथ में चुनाव का पम्फलेट लिए हुए था। हम लोग ताड़ गए कन्विसिंग करने आया है। मेरे साथ नहीं के बराबर बात हुई “ठीक! जीत होगी। आपकी, पहले एक काम कराइए, तब तो पूरा हावर्ड हाल आपको वोट देगा।” जयशंकर की बातों से वाकिफ होना लाजिमी समझ कर उसने पूछा “कौन-सा काम है?” “यह हरिजन है इन्हें हिन्दी में रिसर्च करने नहीं दिया जा रहा है। थर्ड क्लास में पास करने वाले लड़के-लड़कियाँ को रिसर्च करने दिया जा रहा है। यूनियन के अध्यक्ष रघुनाथ की बहन एम. ए. में थर्ड क्लास लाई है, लेकिन हिन्दी में रिसर्च करने दिया गया है। जबकि ये हरिजन सेकेण्ड क्लास के हैं तथा हिन्दी की प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कहानियाँ, कविताएँ, साहित्यिक निबन्ध चाव से लोग पढ़ते हैं, किन्तु इन्हें रिसर्च के लिए नहीं लिया जा रहा। आखिर प्रथम श्रेणी कितने हैं और कितनों को अच्छे अंक आते हैं? इनका मापदण्ड क्या है? विष्णुजी को पता नहीं चलता। भाई! सरकार की आरक्षण नीति को तो वे बराबर टालते रहे हैं।”

उसने भी हरिजन जानकर कतराना चाहा। मगर जयशंकर ने साफ कहा “काम पर ही जीत-हार है। हरिजन जन्म से कोई नहीं, हमी बनाते हैं उसे।”

हम तीनों विश्वविद्यालय के अहाते में हैं और वाइस चांसलर की गाड़ी लगी है। वाइस चांसलर मिश्रा कुछ लिख रहे हैं।

“क्या हम लोग आ सकते हैं?” हम लोगों ने कहा।

“हाँ-हाँ आइए, कहिये?”

“बात ये है कि हम लोग जानने आए हैं हरिजन को सुविधा केवल कागजों पर है या व्यवहार में भी?”

मिश्रा जी गौर फरमाते हुए कहते हैं “साफ-साफ कहिए!”

“सर, ये गरीब हरिजन जाति के हैं। हिन्दी में सेकेण्ड क्लास एम. ए. हैं, विभागाध्यक्ष रिसर्च करने नहीं दे रहे, जबकि अन्य लोग (हरिजन छोड़कर) हिन्दी के अलावा विज्ञान में जो थर्ड क्लास हैं, रिसर्च कर रहे हैं।”

मिश्रा ने कहा “क्या इसमें भी थर्ड क्लास रिसर्च कर रहे हैं।”

“जी हाँ लीना और नरोत्तम सिंह थर्ड क्लास हैं, फिर भी वे रिसर्च कर रहे हैं। सेकेण्ड क्लास तो कई हैं जिन्हें इनसे कम अंक प्राप्त हुए हैं।”

वाइस चांसलर मिश्रा ने ना चाहते हुए भी लिखा “हेड प्लोज कंसीडर द केस।” विभागाध्यक्ष के सामने जब मैंने कागज पेश किया, तब उनकी नानी मरने लगी। उनके चेहरे पर अजीब-सी दहशत छा गई। पढ़ने के बाद पूरा सन्नाटा छाया रहा। फिर कहा “क्या कंसीडर करें?” अभी भी उनका राक्षस हृदय नहीं पिघल रहा था। बहुत कहा-सुनी के बाद मुझे बुलाया और आठ दिन बाद मुझे लाइब्रेरी कार्ड के लिए अनुमति

दी। मैंने ज्यादा हा-हो नहीं की, ऐसी बात नहीं। मुझसे जब विश्वविद्यालय यूनियन का सेक्रेटरी मिला, तो उसने कहा “रिसर्च में कर देंगे, लेकिन विष्णु कहते हैं अधिकार की माँग क्यों करता है? वह तो हरिजन होकर पढ़े-लिखे जैसी बातें करता है, भंडाफोड़ कर रहा है आरक्षण नहीं करने का।”

मुझे इस बात का दुख होता है कि ये लोग द्रोणाचार्य की परम्परा कब तक जारी रखेंगे? मैं छात्रावास चला जाता हूँ।

घर से चिट्ठी आई है “अकाल में हालत खराब है। सभी बन्धुआ मजदूर गाँव छोड़कर शहर भाग रहे हैं। मैं खर्च कहाँ से भेजूँ कोई कर्ज नहीं देता? सभी कहते हैं हरिजन होकर इतना पढ़ा दिया।” मैं अपने गाँव वापस आ जाता हूँ।

पुनः जब जनवरी में गया और मैंने कहा अब इनरोल्ड कर दिया जाए, तो उन्हें जहर फैलाने लगा और झट कह दिया जुलाई में आइए। मैंने अधिक टाल-मटोल को बेकार समझा और कहा “आप भी मनु जैसा कान में शीशा उड़ेलना चाहते हैं, द्रोणाचार्य जैसा अगूठे का दान चाहते हैं। मगर याद रखिए। अँधेरे का सैलाव फाड़कर अपना अधिकार लेंगे अब। आप जैसे कुटिल लोगों ने ही तो हरिजन-दुर्जन का भेद बनाने में सहयोग दिया है। आपका हम घेराव करेंगे।”

उन्होंने ताव में कहा “जो चाहे करो। जब तक हूँ, हरिजनों को रिसर्च करने नहीं दूंगा।”

मुझे लगा यह शख्स बहुत काँड़ियाँ हैं। मैंने तुरन्त यूनियन में आकर बातचीत करना मुनासिब समझा क्योंकि अब जो प्रेसीडेंट, सेक्रेटरी बने थे वे उन संस्कारों से मुक्त थे। लेकिन उन लोगों ने भी मुकरना चाहा तभी गंगा झा ने कहा

“नहीं, यह तो हम लोग जात-पात के नाम पर अन्याय कर रहे हैं। साहब यह हरिजन है तो क्या हुआ? हम भी तो हरिजन हैं। इन्हें अभी मौका मिलना चाहिए। लोगों ने हमें मौका दिया तभी, तो आज हम तेज भी हैं, सभ्य भी। पहले कितने तेज और सभ्य थे हम लोग, सबको मालूम है?”

“ठीक है भाई, झा जी लड़कों से घेराव के लिए कहिए, यह मानवता के खिलाफ, नियम के खिलाफ है। दही का रखवाला विलाड़ विष्णु बना बैठा है। हिंदी क्या सभी विभागों में तो कई क्लास रिसर्च कर रहे हैं। सिर्फ गाइड तैयार हो और फिर गाइड तो उनके लिए डॉ. अवस्थी हैं ही।”

देखते-देखते भीड़ उमड़ने लगी। पूरा विश्वविद्यालय शोरगुल से गूँजने लगा। डॉ. विष्णु पैखाना के बहाने कमरे में बन्द हुए, सो सात बजे निकले और माफी माँगते हुए दाँत निपोरते हुए कहने लगे

“आप लोग घेराव क्यों कर रहे हैं? आखिर आप सब हरिजन तो नहीं हैं? आप इनका साथ क्यों दे रहे हैं?”

सबों की आवाज गूँज गई।

“हम सब मानवतावादी हैं। अब पुराना ढोंग नहीं चलेगा। हम सब एक हैं।”

छात्रों ने गरजते हुए कहा “दही का रखवाला बिलाड़।”

“हरिजन होना गुनाह नहीं है, गुनाह तो आप कर रहे हैं पूरी मानवता के साथ।”

दूसरा स्वर उभरा “आप अपने विभाग में थर्ड क्लास रिसर्च करा रहे हैं, हरिजन सेकेण्ड क्लास भी रास नहीं आया। रामनगीना की पत्नी सुरेश की बहन कौन क्लास एम. ए. में लाई हैं।”

अब पूरा शोर तैरने लगा “मुर्दाबाद! मानवता जिन्दाबाद। हम सब एक हैं।”

उन्हें लगा कि यदि वे अब नहीं झुकते हैं, तो पूरी मांस हड्डियाँ ये लोग चपर-चपर चबा जाएँगे। उन्होंने नहीं सोचा था कि आज एकलव्य पूरी बात को जान गया है! उन्होंने मन ही मन कुछ सोचा फिर बतीसी, जिसमें खैनी और पान का मिश्रित टुकड़ा अपनी गंध तथा उपस्थिति दे रहा था, दिखाते हुए कहा

“भाई मैं सरकार की आरक्षण नीति को लागू करना चाहता हूँ। अभी तक तो वास्तव में एक भी हरिजन छात्र रिसर्च नहीं कर सका है। मैं तो चाहता हूँ सभी जातियों के लोग तरक्की करें। आप तो जानते ही हैं कि मैं गाँधीवादी हूँ। मैं उनके आश्रम में कुछ दिन रह भी चुका हूँ।”

तभी दूसरा स्वर खुनाथ सिंह का उभरा “बस-बस रहने दीजिए अपनी फिलासफी, अनुमति देते हैं या आऊँ।”

उन्हें लगा अब लोग पूरा वाकिफ हो गए हैं और फिर टालने पर कुछ भी हो सकता है। धीरे से कहा “ठीक है इन्हें रिसर्च करने की अनुमति देता हूँ, लाइए एप्लीकेशन,” और कुछ ही क्षणों में भीड़ इधर से उधर होने लगी।

दूसरे रोज मुझे रिसर्च के लिए इनरोल की अनुमति मिल गई। रिसर्च के लिए मैंने विषय चुना था “हिन्दी साहित्य में उचित साहित्यकारों का योगदान।”

बीच-बीच में कई बाधाएँ आईं और अन्त में उन्हें एक लड़की के साथ पकड़ा गया और उन्हें सजा हो गई। मैं सोचता हूँ वह सफेद होकर भी कितना काला था। लेकिन दूसरों को साफ रहने की सीख देता था। मेरी पुस्तक ‘सुरंग’ उनके यहाँ समीक्षार्थ गई थी। उन्होंने काफी साफगोई के साथ समीक्षा की है। ऐसा लगता है वे मुझे नहीं पहचानते, नहीं जानते। पी.एच-डी. की डिग्री लेकर अब मैं व्याख्याता हूँ। साक्षात्कार के लिए विश्वविद्यालय में आया हूँ। मुझसे पैतालिस मिनट तक साहित्य के विभिन्न विषयों पर पूछा गया है। डॉ. सुखदेव झेंपकर भी संतुष्ट हैं, ऐसा लग रहा है।

कर्मन्दु शिशिर

डॉंगर

शुकवा को उठे हुए देर हुई। लोटन गवनई से लौटा तो रात बिल्कुल उतर रही थी। चटाई पर पड़ते फिर होश न रहा। बदमिया को लगा मानो मुंदी पलकें ही लौटे हैं। उसने लाख कोशिश की। झिंझोड़कर जगाया। लोटन ने करवट तक नहीं बदली। अन्त में हारकर बदमिया ने छोड़ दिया और कुछ देर तक वैसे ही बैठी रही। ढिबरी की धुंआती रोशनी में उसने लोटन की ओर देखा उसके दोनों हाथ छाती पर टिके हुए थे। अंगुलियाँ हल्की-हल्की ऐंठ रही थीं, मानो पूरे शरीर में वे ही जग रही हों। बदमिया एकटक निहारती रही। उसका मन अन्दर से पसीज गया। मन से देखे भी कितने दिन गुजर जाते हैं।

उसने एक लम्बी साँस ली। उठकर ढिबरी बुझा दी और खिसक कर कोने में चुपचाप लेट गई। रात बिल्कुल उतार पर थी। थोड़ी देर बाद ही बदमिया को लगा कोई दरवाज की कुण्डी खटखटा रहा है। उसने पहले तो मटेर दी। उसे थोड़ी खिन्न भी हुई। अभी तो आँख भी नहीं लगी, मुआ! इतनी सुबह कौन आया? उसे भरम हुआ कहीं सपना तो नहीं देख रही?...कुछ देर लेटे हुए मन ही मन मिलाती रही। कुण्डी खटखटाने की आवाज काफ़ी तेज हो गई।

तो उसका ध्यान टूटा। कोई देबू के बापू को भट्टी गालियाँ दे रहा था। उसकी इच्छा एकदम उठने की नहीं थी। बीमारी से उठी है आराम की ताकीद है। मगर नसीब में चैन हो तब तो? दिन जांगर ठेठाते गुजर जाता और रात में भी नींद मुहाल रहती। गालियाँ लगातार तेज और गंदी होने लगी थीं। बदमिया अब अपने को और नहीं रोक सकी। अनमनाते उठी। पलकें नींद से बोझिल थीं। उठकर बदन तोड़ा, साड़ी करीने से ठीक की और दरवाजा खोला। सामने नागा क्रोध से जला भन्ना रहा था।

“अरे लोटना! तेरी नींद कब से कुंभकरणी हुई रे! अभी तक बबुआन की तरह लेटा है। कब से दरवाज पर खड़ा गुहार लगा रहा हूँ और तू लम्बी ताने पड़ा है?” वह गुस्से में उबल रहा था।

“मालिक आधी रात से ही जगाए रखा। रातभर जगा-जगा परेशान होता रहा। वह आखिर क्या करता? न तो बैल में जान डाल सकता, न ही उसी समय डाँगर होता।” लेकिन बदमिया पर नजर पड़ी तो पलभर को नरम पड़ गया। बदमिया ने तुरन्त दरवाजा भी भेड़ लिया। लोटन निभरम सोया था। बदमिया का मन जगाने को नहीं हुआ। गवनई की थकान से भोर को लौटे हैं, अभी तो ठीक से पलक भी नहीं झँपी। लौट आई। दरवाजे के पास खड़ी होकर धीरे से बोली

“अभी तो घरी भर पहले सोये हैं। पंच यहाँ गवनई में गए थे। जगते ही पठा दूँगी।” इतना ही काफी था। मन पितपिताया था ही पारा एकबारगी चढ़ गया।

“साले मेहर के साथ रंग छील रहे हो और दरवाजा मे पर अन्दर से कहाव भेजते हो? हरामखोर कहीं के! घुसी है रईसी तो कहो निकाल दूँ?” नागा भरा था ही फट गया।

उसने खीझकर एक से एक भद्दी गालियाँ निकालीं। उसे यह बात बिल्कुल अखर रही थी कि चमार-सियार के दरवाजा मे पर खड़े रहो और वह बबुआनी करे। पूरे गाँव में दस घर पर यह दिमाग? घण्टे भर का तो मामला है, जहाँ ताव आया कि फूंक ताप बराबर।

उसने पैर से चौखट पर ठोकर मारी और जेब से लाठी को जमीन पर पीटते हुए बगल में थूका, मानों रात भर से गुस्सा बटोर कर अब थूक रहा हो।

बदमिया का मन हुआ झाड़ू उठाए और जमकर अच्छी तरह पूज दे। लेकिन नागा को कौन नहीं जानता? मालिक कोई मूरख थोड़े ही हैं, जो पाँच बीघा जोत की बँटाई दे रखी है। वह अन्दर से पितपिता कर रह गई। वह लोटन को झिंझोड़ कर जगाने लगी लेकिन वह था कि इधर करवट लेता, कभी उधर। बाहर नागा की गालियाँ लगातार तेज हो रही थीं। उसके कान बेतरह जल रहे थे। उसका सारा शरीर क्रोध और क्षोभ से काँपने लगा। किसी तरह लोटन की आँख खुली तो देखा सामने बदमिया झुकी उसे जगा रही है।

“मालिक के आदमी आए हैं। नागा! कभी से दरवाजा मे पर खड़े फूहरपातर बोल रहे हैं। कब से जगा रही हूँ और तुम हो कि यमराज की नींद लिए पड़े हो?”

गुस्से से वह रूआँसी हो गई थी। वह अन्दर से इतनी भरी थी कि बमुश्किल बोल पाई। झुंझलाहट से उसकी आवाज बेतरह काँप रही थी। लोटन की आँखें नींद से इस तरह बोझिल थीं कि कोशिश के बावजूद खुल नहीं पा रही थीं। किसी तरह जी जांत कर उठने लगा तो मन किया फिर सो जाय। दर्द से बदन टूट रहा था। बैठ कर ऊँघने लगा। लगा जैसे नागा की आवाज वह सुन ही नहीं पा रहा हो। बदमिया उसकी ओर देखती तमतमा रही थी। उसका कलेजा सुलग रहा था। लोटन ने इत्मीनान से बदन उमेठा, अंगुलियाँ तड़काई और आवाज देकर कपड़े ठीक करने लगा। उसके पाँव जमीन पर ठीक से नहीं पड़ रहे थे।

“अरे साले! सरकार के चढ़ाए तू दिमाग न चढ़ा लोटना। कब से बबुआन हुआ रे! मेहर कह रही थी अभी नहीं उठेंगे राजा। टाँग पर टाँग चढ़ाए पड़े हैं।”

सुन तो बदमिया भी रही थी। लगा क्रोध से रो पड़ेगी। जैसे लोटना का भी जी कसकसा गया, लेकिन वह जानता था ऐसा तो अक्सर ही पचाना होता है। वह खिन्न जरूर था। एक तो रात भर सोया नहीं और उठते ही बदजुबान सुनी। फिर भी, उसने हाथ उठा कर सलाम किया। बंसखट डाली और मुँह-हाथ धोने चला गया। लौटा तो हल्की-सी राहत महसूस हुई। आकर चुपचाप नीचे जमीन पर बैठ गया। नागा अब चुप हो गया था। उसे भी लग गया था उसने बेमतलब ही ज्यादा बोल दिया। फिर उसे संतोष भी हुआ कि हड़का कर नहीं रखे, तो मन सहकते कितना दिन लगता है? लेकिन इस बार संयत होकर ही कहा “रात को मालिक का घरगइया सोकना मर गया। डाँगर का कहाव देना था। लाश अभी तक मवेशीखाने में ही पड़ी है। आधी रात से ही नाक में दम किए हुए हैं। बिना उठाए न गोबर होगा, न गंगा जल।”

बदमिया का चेहरा सुलग उठा। डाँगर की बात सुनते ही उसका सारा शरीर एकबारगी झन्ना उठा। पनरहियन मितली जाती है। बरतन बासन तक से बास उठती। मन धिनाए रहता और इनको छूने का भी जी नहीं करता।

लोटन चुप रहा। उसने कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप गरदन भर हिला दी। नागा जाते समय जल्दी आने को चेता गया। लोटन उसके जाते ही उठा और बंसखट पर लेट गया। डाँगर की खटान सोच कर ही उसकी हिम्मत पस्त हो रही थी।

नागा के जाते ही बदमिया बाहर निकली। वह बुरी तरह भन्नाई हुई थी। बस कोई बात मिले कि शुरू हो। उसका स्वभाव लोटन जानता था। उसने अपनी ओर से कोई मौका नहीं देना चाहा क्योंकि बदमिया की लताड़ उसे बर्दाश्त ही नहीं होती। उसके हाथ चमकाने और होंठ फैलाकर मुँह बिचकाने में वह बहुत हड़कता था। बदमिया आकर सिरहाने बैठ गई। लोटन ने मुँह पर गमछी डाल दी और आँखों को बाँहों से ढँककर पड़ा रहा। थोड़ी देर तक बदमिया बैठी सूँघती रही। फिर उठी और निराश ताल की ओर बढ़ गई। लोटन को राहत मिली। वरना घण्टे भर में निचोड़ देती। उसने हाथ हटा लिया और ऊपर देखने लगा। उसका घर चमारटोली के एकदम आखिरी में था। सामने गड्डे के पार वाले टीले पर डाँगर चीरता है। गड्डे के पास ही छोटी-सी बाँसवाड़ी है जिसके बाँसों के आखिरी सिरे काफी ऊँचे हैं। लोटन की आँख उसके झूलते सिरों पर डोलती रहीं। रात चिलम ज्यादा दग गई थी। माथा अभी भी फट रहा था।

...स्साला! डाँगर चीरना एक तो पातकी, दूसरे यह घर में आग बोती अलग से। वह भी क्या करे? पुश्तैनी करार है। उलट जाए तो गाँव दरवाज पर चढ़ जाएगा। बिरादरी में ही खेदू पंच खड़ा हो जाएगा। चमड़े की आढ़ती करता है। अपना दिया माँग ले, तो शरीर बेचे भी न पूरे।

अन्दर से देबू दौड़ता हुआ आया। वह उमंग में था। उसका ध्यान टूट गया। दिन बाँस भर ऊपर चढ़ आया था। अभी तक दिशा-फरागत से भी नहीं निपटा, हड़बड़ा कर तुरन्त उठा और ताल की ओर चल दिया।

डॉंगर को टीले पर रख कर सभी चले गए। खेदू और लोटन कुछ देर वहीं रूके रहे। तब सूरज माथ छू रहा था। सचमुच काफी देर हो चुकी थी। अब तक तो डॉंगर में काम लग जाना चाहिए। लेकिन घण्टे भर की अभी देर थी।

कुत्तों ने कन्धे तो नहीं दिए थे लेकिन सारे गाँव के निमंत्रित थे। खेदू ने देखा तो बच्चों को डॉटकर भगाया, हिदायतें दीं। दो-एक को हल्की चपत भी लगाई। मगर बटालियन पूरे चमारटोली की थी, उसमें मोहना नहीं था। खेदू निश्चित हुआ। लेकिन, कोई टसकने वाला नहीं था। खेदू लौटने को मुड़ा। थोड़ी दूर जाकर थम गया, लोटन चुपचाप वहीं खड़ा था। सारे बच्चे डॉंगर को चारों ओर घेरकर बैठे हुए थे। लोटन उन्हें आपस में बात करते चुपचाप देख रहा था। खेदू तो नाम को आ जाता है। बिरादरी की बात है वरना कंधा भला क्या देगा? उस पर भी कंधे कई बार बदले, लाश भी चार जगह रुकवाई। अलबत्ता, लोटन को अब भी लग रहा था उसका कंधा चवा-भर दब गया है। उसका नेम है वह कभी कन्धा नहीं बदलता।

“बरध डापुट है लोटन! सुबहित चमड़ा उतार लो तो क्या पूछने? चलो सगुन अच्छा बना।” खेदू ने बंसखट पर बैठते हुए कहा।

“सगुन क्या होता है खेदू भाई! देह की चाम तो छिलके-सी उतर आई। उस पर भला डॉंगर की खाल तो चढ़ेगी नहीं।”

खेदू चुपचाप रहा। कुछ देर लोटन खड़ा रहा। फिर लोटन हाथ-मुँह धोने चला गया। लौट कर आया तो खेदू के लिए पानी और कटोरे में मीठा भी लेता आया था। वह तुरन्त गाँजे का दम लगाने के जुगाड़ में लग गया। सचमुच काफी देर हो गई थी। उसने मन ही मन सोचा भी, काम करते अगर रात घिर जाए तो बड़ी दिक्दारी होगी। देर खेदू को भी हो रही थी, इसलिए वह चिलम पीकर ही तुरन्त चला गया।

लोटन दम लगाते ही फुरती में आ गया। तुरन्त पानी का गर्म तसला गमछी से उठाए अन्दर से ले आया। छुरा-छूरी को उसमें डाल दिया। धोती की खूँट ऊपर उठाई और पत्थर पर पानी देकर धार देने तुरन्त बैठ गया। देबू उसकी बगल में बैठा चुपचाप बाबू को देख रहा था।

“बाबू तुम डॉंगर चीरने जाओगे न! हम भी साथ चलेंगे।”

लोटन ने एक पल के लिए अपनी गरदन घुमाई और उसकी ओर देखा। उसने कहा कुछ नहीं। फिर धार देने लगा। देबू कुछ और पूछना चाहता था लेकिन बाबू को इस तरह चुप देखा तो सहम गया। बाबू ने कुछ नहीं कहा तो देबू को लगा वे नाराज नहीं हैं। उसे तुरन्त हल्का उत्साह आया। वह उतावली में था। थोड़ा और समीप खिसक आया।

“घी का क्या होगा बाबू?” देबू ने उत्साह से अपनी गरदन बाबू की ओर मोड़ी। लोटन ने मुड़ कर देखा और इस बार हँस दिया। उसकी चुप्पी टूटने से देबू प्रसन्न हो गया। उसके चेहरे पर जो अनिश्चय था धुल गया।

“बताओ न बाबू!” देबू ने शह पाकर थोड़ी जिद की।

“इसको बदन में मलकर डॉंगर चीरने से गंध नहीं आती समझे!” देबू खुश हो गया। वह बाबू को बहुत ध्यान से निहार रहा था। वे अपनी अंगुलियों से छुरी की धार परख रहे थे।

तभी खेदू का बेटा मोहन भी आकर पीछे से देबू की बगल में खड़ा हो गया। देबू ने उसकी ओर गर्व से देखते हुए कहा “मोहना! हम भी बाबू के साथ डॉंगर चीरने जाएँगे।”

“छी! छी!! घिन नहीं आएगी तुझे! मैं तो...” मोहना कहते-कहते रुक गया। उसने मुँह बिचकाया। देबू का चेहरा उतर गया। उसने पराजित होकर अपने बाप की ओर देखा। लोटन के हाथ रुक गए थे। वह अजीब आँखों से मोहना की ओर देखने लगा था। मोहना सहम गया। कुछ देर तो वह वैसे ही खड़ा रहा फिर पीछे मुड़ा और तेज ि से दौड़ कर भाग गया।

लोटन ने छुरा-छुरी को खाँचे में रखा। लेकर उठा तो नशे से पाँव डगमगा रहे थे। फिर भी, उसे चुस्ती महसूस हो रही थी और वह थकान बिल्कुल भूल चुका था। उसने देबू को आने के लिए मना किया।

“तुम रुक जाओ देबू! जानते नहीं हो बेटा! किस तरह गीध ने बलिया का ओठ बकोट लिया था देखा था न! रुक जा। जब बड़ा होगा तो साथ ले चलेंगे।” देबू पर इन खतरों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने बिल्कुल हठ ही ठान ली थी। लोटन थोड़ा-सा खीझ उठा था।

“जाओ! नहीं तो माई मारेगी बस! सारा डॉंगर ही चीरना निकल जाएगा।” उसने फिर धमकाया। देबू का चेहरा उतर गया। उसने फटी हुई निकर और कमीज पहन रखी थी। उसमें एक भी बटन नहीं था। दोनों पैबंदों से पटे थे। उसने नंगे पेट को गंदी कमीज से ढंक लिया। मानो अपने भीतर का भय ढंक रहा हो। लोटन ने उसका रूआँसा चेहरा देखा तो थथम गया। देबू की आँख ‘लोरा’ आई थी। उसका चेहरा लोटन को इतना मासूम लगा कि वह तुरन्त भावुक हो उठा। उसने गरदन हिला दी। देबू पल भर में खिल गया। उसके चेहरे पर एकबारगी लौट आई खुशी से आँसू भरी हुई आँखें, इतनी प्यारी लगीं कि लोटन से नहीं रहा गया। वह तुरन्त झुका और देबू को चूम लिया।

डॉंगर के पास पूरी बटालियन ही जुम आई थी। नंग-धड़ंग बच्चे तो चमरटोल के ही थे, मगर कुत्तों की जुटान सारे गाँव से हुई थी। देबू ने आते ही सबसे पहले

सगर्व निगाह डाली और सभी को परे खिसकने का आदेश दिया। उसने आँख गड़ा कर ध्यान से देखा मोहना कहीं नहीं था।

देबू ने इस समय अपने पड़ोस के उन सभी बच्चों की भुला दिया था। वह साधिकार उनको अलग धसकने की हिदायतें दे रहा था। जो नाराज होते और जो सिफारिश करते, उसका व्यवहार सभी के प्रति समान था।

सामने पीपल पर दो-चार गिद्धों के बैठते ही, बच्चों का ध्यान उधर हो गया। तुरन्त सबने शोर किया। लोटन तब तक तैयारी कर चुका था। उसने भी गीधों को देख कर जल्दबाजी की। अगर कहीं झुण्ड नीचे उतरा, तो फिर काम करने में दिकदारी हो जाएगी। आकाश में चीलों के मंडराने और कौओं से उसका चिंतित होना वाजिब ही था।

उसने धोती को एक बार फिर खूंट लिया। माथे पर गमछी रच कर बाँध ली और छुरा-छुरी लेकर डाँगर के पास बैठ गया। सबसे पहले पूँछ से मुँह तक, फिर खुर के ऊपर से पाँवों के जोड़ तक चारों ओर चीरा लगा दिया। जब पाँवों में चीरा लगा रहा था तो उसके हाथ हल्के काँप गए थे। वह पल भर को ठिठक गया था। वह पाँवों की थकान को महसूस करने लगा। कितनी बार उसने हल जोते थे, दवनी की थी, बैलगाड़ी में जोत कर बक्सर ले गया था, तब क्या पता था वही एक दिन उनकी खाल भी उतारेगा? लोटन का मन दुखी हो गया। क्या जिन्दगी है? मरने पर आदमी ही गिद्ध बनता है।

उसे इस बात का तनिक भी ख्याल नहीं था कि पीछे बच्चों की पूरी भीड़ चुपचाप उसे ही निहार रही है। उसका ध्यान भंग हुआ। उसने एक नजर पेड़ की ओर डाली। गिद्ध काफी संख्या में जुम आए थे। दो-चार नीचे भी उतरे तो बच्चों की भीड़ कम होने लगी। लोटन के पाँवों के पास देबू सटा दुबका रहा। वह अब अकेला ही रह गया था। चीरा लगाते समय उसका मन काँप गया। उसे लगा कहीं बैल को दर्द तो नहीं हो रहा है? उसका जी भर आया। लोटन चीरा लगा कर छुरे को घुसाता और मुट्ठी बाँध कर हाथ अन्दर घुसेड़ कर खाल ओदार लेता। थोड़ी देर में ही कुत्तों की छीना-झपट और गिद्धों की चढ़ाई शुरू हो गई। पेड़ की डालियाँ गिद्धों से, मैदान कौओं और कुत्तों से भर गया। लोटन को लगा कहीं गिद्धों ने ठोर मार दी, तो खाल बिगड़ जाएगी। उसने डंडे से कुत्तों को मार भगाया। मगर डाँगर सामने हो और कुत्ते भाग जाएँ, तो जरूर कुजात होंगे। उसने भद्दी-भद्दी गालियाँ निकालीं और अपने काम में जुट गया। इस बीच देबू बुरी तरह सहमा उसके पाँवों में दुबका हुआ था। चमड़े के भीतर जब डाँगर की लाल देह, बाहर आई तो देबू को लगा कलेजा मुँह को आया। उसकी आँखें अपने आप बन्द हो गईं। खुलीं तो देखा कि गीध ने अपने उड़ान में ही बैल की आँखें निकाल ली थीं और वह कुछ दूर बैठ कर उन्हें निगल रहा था। दहशत

से उसका सारा शरीर गनगना गया। उसे अब लग रहा था बाबू ठीक ही कहते थे। उसे हरगिज नहीं आना चाहिए था। उसने तय कर लिया कि अब आगे से वह कभी नहीं आएगा। बाप की टाँगों के पास सहमा देबू भय से काँप रहा था।

अब काम उतार पर था। लोटन के हाथ फुर्ती से चल रहे थे। चेहरा तना हुआ था। लेकिन, साफ लग रहा था कि वह बुरी तरह थका है। फिर भी, उसके हाथ पूरी सावधानी से चल रहे थे। वह जानता था अब अगर हाथ तनिक भी अनाड़ी ढंग से पड़ा कि सुबहित चमड़ा नहीं उतरेगा।

लोटन ने रात होने के पहले ही खाल उतार ली। सिर्फ एक जगह गरदन को गिद्ध ने ठोर मार दी थी। बाकी खाल एकदम साफ सुथरी थी एक नम्बर! लोटन ने चैन की साँस ली। वह पसीने से लथपथ था। फिर भी, उसे राहत महसूस हो रही थी।

खाल उठा कर खोंचे में रखते ही एकाएक कई गिद्ध टूट पड़े। उनके पाँखों की तकरार और ठोरों की टकराहट से देबू खौफ खा गया। अब वह एक पल भी वहाँ रुकना नहीं चाहता था। उसने आँखें मूँद लीं। दम साध दौड़ता घर की ओर भागा। दरवाजे पर पहुँच कर उसे लगा कि उसकी साँस वापस हुई है। गिद्ध और कुत्तों का शोर पीछे छूट गया था, फिर भी उनकी आवाज यहाँ तक पहुँच रही थी। वह अब भी बुरी तरह थरथरा रहा था।

लोटन ने आते ही सबसे पहले खाल धोकर जमीन पर फैला दी। अन्दर से नमक लाया और तुरंत खाल पर रगड़ने लगा। अगर आलस कर जाए तो सारी मेहनत बिगड़ जाएगी। बचे-खुचे मांस से खाल काम की नहीं रह जाती।

देबू हाथ-मुँह-धोकर बंसखट पर चुपचाप लेटा हुआ था। वह बार-बार आँख मलता। डाँगर पर एक साथ टूट पड़ते गिद्धों को वह भूल भी जाता लेकिन आँख निकाल कर निगलने वाला दृश्य कभी ओझल नहीं होता। पलकें मूँदे रहा। उसका जी गनगना रहा था। उसे मितली आ रही थी।

लोटन जिस दिन डाँगर चीरता उस दिन खाना नहीं खाता। वह नहा-धोकर बाहर लेटा हुआ था। देबू उसकी बगल में पड़ा था। बदमिया आज जैसे ही खाना नहीं बनाती। वह तभी से अन्दर ही अन्दर इतनी बौखलाई हुई थी कि बिस्तर पर पड़ी तो फिर बाहर झाँकने तक नहीं निकली। लोटन कब नहाया, देबू खाया कि नहीं, उसे कोई खबर नहीं थी।

दूसरे दिन वह सुबह ताल से लौटी तो उसने देखा कि लोटन अभी तक सोया था। देबू जग गया था। लेकिन जैसे ही चुपचाप पड़ा था। उसका मन भारी लग रहा था। रात भर सपने में बड़बड़ाता रहा। बदमिया ने पड़े हुए देखा तो गुस्से से गर्म हो उठी। डाँटकर देबू को ताल की ओर भेजा और खुद बरतन-बासन में लग गई।

लोटन बेर चढ़े तक लेटा रहा। उठा तो ऊँघते ताल की ओर बढ़ गया। लौट

कर आया तो तुरन्त चूने के पानी से खाल निकाली और नीचे पुआल पर रख कर बिछा दी। छोटे-छोटे मांस के टुकड़े जो नमक रगड़ने के बाद भी बच गए अब पूरी तरह गल गए थे। रोंवा भी साफ हो गया था। बदमिया देखते ही कुढ़ गई।

“उठते ही लेकर बैठ गए। अब यही चलेगा।”

उसे लग रहा था जैसे उसे चिढ़ाने के लिए ही अभी काम शुरू किया है। वह गुस्से में बार-बार बाहर निकलती। पलभर खड़ी होकर उसे देखती और झमक कर तेज ि से अन्दर चली जाती। लोटन समझ गया था। सगुन ठीक नहीं है। वह चुपचाप गम खाए रहा। उसने गले मांस के टुकड़ों को पुआल से पोंछ कर साफ कर दिया। फिर रोंवा रगड़-रगड़ कर छुड़ाया। जब अच्छी तरह से धो लिया तो देबू को आवाज देकर पास बुलाया।

“झिल्ली निकालने के लिए अंदर से खुरपी ला दो बेटा।”

देबू का मन बिल्कुल ही उठने को नहीं था, लेकिन वह भारी मन उठा और अंदर जाकर माई से खुरपी माँगने लगा। लोटन राह देखने लगा। थोड़ी देर बाद ही उसने बदमिया के झल्लाने, पीटने और देबू के चीखने का शोर सुना, तो गुस्से से एकाएक तमतमा उठा। उसने खाल को उसी तरह छोड़ दिया और दौड़ता हुआ अंदर गया। बदमिया खुरपी की मूठ से देबू को पीट रही थी। देबू चोट लगते ही बुरी तरह चीखता। लोटन ने दौड़ कर बदमिया का हाथ पकड़ा और उसकी मुट्ठी से खुरपी जबरन छीन ली। बदमिया गुस्से में आपे से बाहर थी। उसने झपट कर देबू को पकड़ने की कोशिश की और हाथ चलाया। देबू भाग कर बाबू के पीछे चिपका हुआ था। वह भय से बुरी तरह थरथरा रहा था। लोटन के बार-बार रोकने के बावजूद बदमिया पागलों की तरह देबू को गालियाँ बके जा रही थी। आखिर में लोटन को भी बरदाश्त नहीं हुआ। उसने बदमिया के बालों को पकड़ कर खींचा और जोर से ढकेल दिया। वह तुरन्त जमीन पर गिर पड़ी। उसे आश्चर्य हुआ कि बदमिया जमीन पर गिरते ही शान्त हो गई। कुछ देर बाद तक वह चुपचाप पड़ी रही। उसका चिल्लाना एकाएक बन्द हुआ, तो लोटन को लगा कहीं कुजगहा चोट तो नहीं आई। सम्भव हो दौँत लग गया हो! लेकिन उसने उठाने की कोशिश नहीं की। थोड़ी देर बाद ही वह सिसकी और फिर फुक्का फाड़ कर जोर-जोर से रोने लगी। लोटन देबू को लेकर बाहर चला गया। उसने देबू को खेलने के लिए बाहर भेजा और खुद झिल्ली उतारने में लग गया। अंदर से बदमिया के रोने की आवाज आ रही थी और काफी तेज थी। उसने तुरन्त झिल्ली उतार कर खाल समेटी और चूने के पानी में डाल दी। घर के अन्दर गया तो देखा बदमिया वैसे ही पड़ी बुरी तरह बिलख रही थी। लोटन का मन बेहद तिक्त हो गया। उसने तुरन्त हाथ-मुँह धोया और बाहर निकल गया।

आज भी घर में खाना नहीं बना। कल से ही बदमिया ने चुप्पी साध रखी थी

कि वह उसे टोकने की हिम्मत नहीं जुटा पाया। देबू भी इतना हड़का हुआ था कि दिन भर बाहर ही रहा। पता नहीं कहीं खाया या नहीं। लोटन दिनभर खाल के काम में लगा रहा, मगर साँझ गिरते ही उसका मन भारी हो गया। कल से कुछ खाया भी नहीं था। घर में रहने की तनिक भी इच्छा नहीं हुई। खेदू की दालान में गया तो वहाँ चिलम दग रही थी। उसके जी में चैन आया। बाद में उसने जिद की तो वहीं खाना भी खा लिया।

उसने आज भरपूर ठान ली थी। उसका माथा एकदम से हवा हो रहा था। पाँव जमीन से चवा-भर ऊपर उड़ रहे थे। जब घर आया तो अँधेरा काफी घिर आया था। कोने में टिबरी जल रही थी लेकिन उसकी बत्ती चुक रही थी। देबू आँगन में ही बंसखट पर पड़ा-पड़ा सो गया था। बदमिया कमरे में नीचे बेसुध पड़ी थी। लोटन कमरे में कुछ देर तक खड़ा चारों ओर देखता रहा। उसे पूरा विश्वास था कि बदमिया हरगिज सोई नहीं होगी। वह उसकी चुप्पी से इतना ऊब चुका था कि उसने पहले ही तय कर लिया कि अब किसी तरह यह सब खत्म करना है। मगर वह जानता था बदमिया इस मामले में बेहद जिद्दी और टेढ़ी है। उसने टिबरी को अपनी ओर खींचा और चुक रही बत्ती को उकसा दिया। बदमिया इस तरह पड़ी थी कि मानो लोटन के आने का उसे भ्रम ही न हो। उसने पड़े-पड़े ही अन्दर आते लोटन को देखा था। तभी उसने आँखों को हाथों से ढाँप लिया था। लोटन ने टिबरी को और समीप लाकर देखा तो बदमिया के माथे पर एक गोला-सा उभर आया था। उसने तुरन्त झुक कर उसे छुआ। बदमिया ने चौंक कर तुरन्त उसके हाथ झटक दिए और करवट बदल ली। लोटन का मन उखड़ गया, मगर उसने धीरज से काम लिया।

जगी तो आखिर! उसने मन ही मन तय कर लिया कि अब धीरे-धीरे टोह लेते हुए वह मामले को रास्ते पर लाएगा। ऐसी स्थिति से बदमिया हमेशा ही बेकाबू हो जाती है। उसने टिबरी कोने में खिसका दी। जाकर बाहर का दरवाजा बन्द किया। देबू को उठा कर अन्दर लाया और करीने से सुला दिया। वह थोड़ा निश्चित था कि देबू ने खाना खा लिया था। खेदू की घरवाली उसे अपने घर ले गई थी। उसे तुरन्त ध्यान आया खाना तो उसने भी खा लिया, लेकिन बदमिया उपवास होगी। आखिर वह कर भी क्या सकता था? उसका मन बेहद बेचैन हो उठा। चुपचाप उसके सिरहाने बैठा और धीरे से बोला 'बदामो...' लोटन की आवाज नशे से लटलटा रही थी और उसके हाथ हल्के काँप रहे थे। बदमिया चुप्पी साधे, वैसे ही पड़ी रही। लोटन का जी भरा हुआ था। उसने फिर बदमिया को आवाज दी और अपना हाथ उसके माथे पर रख दिया। बदमिया का माथा बुरी तरह जल रहा था, उसे तेज ज्वर था। उसने इस बार लोटन का हाथ नहीं हटाया। लोटन उसकी बगल में लेट गया। उसने बदमिया को अपनी ओर खींचने की कोशिश की। बदमिया आँख बन्द किए चुप्पी साधे रही।

लोटन ने उसे अपनी ओर समेटने की फिर कोशिश की। बदमिया पलभर के लिए कसमसाई लेकिन मजबूती से उसी तरह पड़ी रही। लोटन का धीरज जवाब दे गया। उसने जोर देकर उसे अपनी बाँहों में भींच लिया। ढिबरी की काँपती हुई रोशनी इतनी धुँधली हो गई थी कि ठीक से चेहरा भी नहीं दिखाई दिया। लोटन की पलकें थकान और नशे से बुरी तरह बोझिल थीं। वह पिघल कर पानी हो रहा था। उसने धुँधलके में बदमिया की आँखों में एक मार्मिक चमक देखी थी। बदमिया की आँखें सचमुच लोरा गई थीं। लोटन ने जब उसे छाती से लगाया तो फफक कर रो पड़ी।

बदमिया का बदन अब भी काफी गरम था। फिर भी, वह फुर्ती से काम में लगी रही। उसने चुल्हा सुलगा लिया और अदहन का तसला चढ़ा दिया। चावल चुनने बैठी तो उसे लगा जैसे माथा फट जाएगा। उसने हाथ से अपना माथा मलना शुरू किया। दुख रहा था। लोटन बाहर चमरगारन में लगा था।

थोड़ी देर बाद बदमिया को लगा वह ठीक है। उसने मन को और मजबूत किया। चावल चुनने में कुछ दाने नीचे गिर गए थे। सोचा इन्हें भी चुन ले, धोकर डाल देगी। लेकिन थोड़ा विलम्ब हो गया। कुछ सोचने लगी। आखिर जमीन के गिरे चावल हैं। छोड़ ही दे। लेकिन उसका मन नहीं माना। खुद को समझाया। इन चावलों का भला क्या दोष? उतनी ही मेहनत से रोपे गए, सोलह बोझ की एक बोझ मजूरी से घर आए जाँगर खटा मीज-कूट का। उसका जी भरभरा उठा। उसने पीठ पीछे झुक कर दरवाजे के बाहर देखा लोटन चमरगारन में लगा था। उसे बहुत अजीब लग रहा था। जिन्दगी ईख-सी पेर कर छोड़ देती है, कितनी बार घिसती खाल उतर जाती है! फिर भी सारी उमर पेट ही पहाड़ रहा कभी पार नहीं देखा। सोचा तक नहीं। अदहन खौल रहा था। तुरन्त उठ कर चावल मिलाया तो शान्त हो गया। बदमिया किसी न किसी काम में लगी रही। सारा बरतन-बासन किया। घर, आँगन साफ किया। पानी लाई। लोटन चमरगारन में लगा रहा। अकेला था, थक गया तो खेदू के यहाँ जाकर एक चिलम भी दाग आया।

बदमिया दरवाजे के पास बैठी उसी की ओर देख रही थी। कैसी लकलक काठी हो गई है? न चिलम की लत छूटती है ना डाँगर की। असल चिन्ता देबू की थी। इतना बड़ा हुआ। स्कूल की राह नहीं देखी। लगता है वह भी डाँगर ही चीरेगा, गाँजा पियेगा? उसके भीतर बार-बार क्रोध उमड़ता और वह दबा जाती। उसे लगा माथे में जेरेर फिर बढ़ रहा है। उसने तुरन्त मलना शुरू किया। एक साथ उसके भीतर कई बातें घुमड़ती और वह उन्हें मन ही मन तय करती, काटती रही। उसकी चुप्पी बड़ी ही उदास लेकिन बड़ी ही भयानक थी।

उसकी तबीयत सचमुच ठीक नहीं थी। लोटन अब खाल उतार कर मोड़ ही रहा था कि लगा कोई सामने खड़ा है। ऊपर नजर उठाई तो बदमिया चुपचाप उसकी

ओर देख रही थी। वह घबरा गया। उसने तुरन्त अपने को स्थिर किया। चमरगारन में साँस उखड़ गई थी। वह थोड़ा-थोड़ा हाँफ भी रहा था। उसने बदमिया की ओर तेज नजर डाली। उसकी आँखें बदमिया को पार तक छेद रही थीं। उसका मन आशंका से घिर उठा। वह उसकी ओर थोड़ा-सा और बढ़ गया। बदमिया के चेहरे पर कोई तनाव नहीं था, वह बिल्कुल शान्त एकटक उसे देख रही थी। लोटन को लगा बदमिया बदल गई है।

“क्यों? चमरगारन कराने आई हो क्या?” उसने बाहर से सहज बनते हुए मजाक में कहा। बदमिया ने चुपचाप सुन लिया। उसने कोई जवाब नहीं दिया तो लोटन ने उसका हाथ पकड़ लिया। लोटन को लगा उसने कोई गर्म सलाख पकड़ी हो। बदमिया ज्वर में अंगार हो गई थी।

“अरे तुम्हें तो तेज बुखार है और तू?” लोटन को लगा अगर उसने आगे बढ़कर पकड़ नहीं लिया होता तो वह जरूर गिर जाती। उसे दोनों हाथों से पकड़ कर खींचते हुए अन्दर ले गया और बंसखट पर लिटा दिया। वह बाहर आया और देबू को आवाज दी लेकिन वह नहीं था।

बदमिया की तबियत इतनी जल्दी ऐसी हो जाएगी, लोटन को अनुमान तक नहीं था। वह काफी घबरा गया था। कभी बाहर झाँक कर देखता, तो कभी पानी की गमछी भिगो कर उसके माथे पर रखता। उसके चेहरे को सहलाता। उसे तेज ज्वर था, माथा बुरी तरह जल रहा था। उसे मन को समझाने में ही राहत मिली।

तीन दिन बाद अपने आप बुखार उतर जाएगा। जैसे-जैसे रात गहराती जा रही थी, बदमिया का बदन बुरी तरह थरथराने लगा था। उसके दाँत भी कटकटा रहे थे। हंफनी काफी तेज हो गई थी। लोटन उसके चेहरे पर झुका तो साँस इतनी गर्म महसूस हुई कि लगा झुलस जाएगा। लोटन चुपचाप उसके सिरहाने बैठ रात काट रहा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि इतनी रात को आखिर वह क्या करे? इलाज के लिए चार कोस जमीन जानी पड़ेगी। पास में पैसे भी नहीं। अभी तो कोई जाने को तैयार भी नहीं होगा। वह कभी माथा सहलाता, कभी पाँव! उसने चादर के साथ बोरे की चट भी उसके ऊपर डाल दी थी। बदमिया सारी रात करवट बदलती कराहती रही। लोटन बुरी तरह परेशान रहा। थक कर दीवाल से पीठ टिकाई तो तुरन्त आँख लग गई। आँख खुली तो देखा बदमिया बेहोश पड़ी थी।

खेदू ने पैसे तो दिए लेकिन करार पक्की करा ली। खाल पका कर उसे सौंप देनी है। वह जानता था खेदू ने आधी रकम बचा ली है। उस पर जिस तरह अहसान जाताते, पचास निकाले तो लोटन अन्दर ही अन्दर पूरी तरह बुझ गया। खेदू के साथ रोज चिलम पी और कितनी बार खाना भी खाया था। आज भी उसने कितनी हमदर्दी से खटोला तैयार कराया था। मगर वह पैसे के मामले में एकदम व्यापारी ही बना रहा।

हाँ जब दवा में पैसे घट गए, तो पच्चीस और दिए। लोटन का मन तब थोड़ा शान्त हुआ और उसने गाँजे की पुड़िया अपने ही पैसे से खरीदी।

लोटन ने वबुरी के घोल में खाल निकाल लिया था। महुए की पत्ती का चूरन खुद तैयार किया। आज आखिरी चमरगारन थी। उसने खाल को जमीन पर बिछा दिया और ऐंठन सीधी करने लगा। उसने खाल को मूँज से सीकर थैला बना लिया। महुए के चूरन वाला पानी भर कर घर में टाँग आया। नीचे गड्डा पहले ही बना चुका था। सब काम निबटा कर बाहर निकला तो उसका मन काफी हल्का लग रहा था। अब तो तीन दिन बाद खाल उलट कर पानी भर देना है। फिर खलिया-चूना मल कर पका देगा।

लोटन हाथ-मुँह धोकर जब बंसखट पर लेटा तो साँझ पूरी तरह घिर आई थी। खेदू की घरवाली आकर रोटी सेंक गई। उसका मन एकदम खाने को नहीं था। किसी तरह मुँह जूठा किया। पुड़िया में गाँजा थोड़ा-सा बचा था, उसे भी मल कर चिलम भरी। थकान से बदन का रग-रग टटा रहा था।

आज उसका मन बुरी तरह बुझा हुआ था। देबू उसकी बगल में ही लेटा था। उसने उसे प्यार से थपथपाया। कैसा पातकी काम है। कल देबू को भी यही करना होगा! फिर देबू बड़ा होगा, उसके बच्चे होंगे वे भी डाँगर चीरेंगे।

उसका मन बुरी तरह चक्कर काट रहा था। इतने पैसे तो वह मजूरी करके कमा लेता। उसे यह सब छोड़ ही देना चाहिए। मगर वह भी क्या करे? सोचते गुजर जाता है। जब भी पैसे कम पड़ते, खेदू से ही ले लेता और फिर, अगले डाँगर की तैयारी में मन को समझा लेता।

उसे याद आया। माई भी बाबू से बड़ी बकझक करती थी। एक बार इतनी तकरार हुई थी कि लोटन सहम गया था। उसे आज भी बाप की लाल-लाल आँखें और भट्टी गालियाँ अच्छी तरह याद हैं।

“लगता है तू बबुआन की जनमी है। इसलिए डाँगर से घिन करती है।” उसे बाप के भट्टे होंठों से नफरत तभी हो गई थी। माई क्रोध से पनपना गई और जोरों से रो पड़ी थी। लोटन ऐसी बात तो बदमिया को कभी नहीं कह सकता।

उसे अच्छी तरह याद है पहली बार बाबू डाँगर चीरने ले गए थे, तो उसका जी घिनघिना गया था। कुत्तों, कौओं और गीधों के झुण्ड में छुरी चलाते बाबू मशगूल थे। उनके हाथों की कसी मुसलियाँ मछली के आकार की निकल आई थीं। उनका चेहरा तना हुआ था। गीधों को जब भी हुलकाते, भट्टी गालियाँ हवा में तैर जातीं और दाँतों की पीली कील पल-भर को चमक जाती। उसने भी सोचा था बड़ा होकर वह भी दाँतों में कील ठुकाएगा। कानों में बाली पहनेगा। लेकिन, ऐसा अभी तक नहीं हुआ। लोटन को बहुत दिनों बाद यह बात याद पड़ी थी। उसका मन बहुत उदास हो गया।

लोटन इन्हीं बातों में रमा रहा था कि देबू खिसक कर बिल्कुल उससे चिपक गया। पिछली बातों को याद करना कितना अच्छा लगता है। लेकिन खाल उतरते ही डॉंगर की लाल-लाल देह बाहर दिखी तो वह एकदम घबरा उठा। धीरे से खिसक कर घर की ओर भाग गया। बाबू लौट कर आए तो बिना पूछे ही चाँटा जड़ दिए। सुन कर माई दौड़ती हुई बाहर आई और बिगड़ने लगी।

“लगता है तेरे-सा यह भी पेट में ही सीख के आया है नहीं? गंध की बात नहीं थी। चला आया तो हाथ छोड़ता है।”

लोटन आज भी बाबू की दहकती लाल आँखों को नहीं भूला है। उसे बड़ा अजीब लगा। फिर, धीरे-धीरे कैसे उसकी बान (आदत) पड़ती गई थी। छुरी पजाने, खाल उतारने, गारने, ऐंठन सीधे करने से चमड़े पकाने तक सारी तरकीबें एक-एक कर बाप ने उसे सिखा दीं।

वह कभी-कभी लोटन को समझाता भी “बरध का चाम न निकालो तो सराप चढ़ाता है। मानुष के पाँव सटे चाम का महातम है वरना अगला जनम भी सवारथ न हो।”

लोटन ने कभी अगले जन्म के बारे में नहीं सोचा था। खाल भी इसी जनम के लिए उतारता, मगर सवारथ आज तक न लगा। खेदू के काका जबतक रहे लोटन से बराबर उसके बाप की तारीफ करते रहे।

इतनी उमर हुई लेकिन ऐसा साफ हाथ नहीं देखा। महामारी में बीस डॉंगर एक दिन में चीर कर खाल उतार ली थी। उसी में गाँजे की पुड़िया पर बाजी लगी थी। उसने गमछी से आँखों को रच-रच कर बाँध लिया और सुबहित खाल उतार ली। क्या मजाल जो खाल का तनिक भी रेफ लगा हो। न सूत-भर इधर न सूत-भर उधर!” तब लोटन को भी अपने बाप पर गर्व होता।

उसे लगा आवाज अन्दर से ही आ रही है। वह तुरन्त उठा और दौड़ कर अन्दर आया। बदमिया दर्द से बुरी तरह छटपटा रही थी। उसकी चीख से ऐसा लग रहा था मानों कोई जिबह कर रहा हो। उसने अपना पेट हाथ से कस कर दबा लिया था। लोटन सक्रते में आ गया। उसने दौड़कर बदमिया को पकड़ने की कोशिश की। उसके ऊपर से बोरे की चट हटाई। दर्द से उसका चेहरा बुरी तरह ऐंठ रहा था। रह-रह कर पेट में मरोड़ उठती, वह तो बुरी तरह चीखने लगती। पसीने से उसका बदन लथपथ हो गया था। लोटन को समझ में यह बिल्कुल नहीं आ रहा था कि वह आखिर क्या करे? उसने कई बार पूछा भी, पेट भी सहलाया, गमछी से पसीना पोंछा। मगर बदमिया को चैन नहीं मिली। थोड़ी देर बाद उसने पानी माँगा तो दौड़ कर ला दिया। लोटन ने उसे उठा कर अपनी बाँहों में लिटा लिया। उसने अपने हाथ से पानी का कटोरा मुँह से लगाया। बदमिया मुश्किल से दो घूँट पानी भी नहीं पी सकी होगी। उसे उल्टी हो गई।

लोटन ने तुरन्त लिटा दिया। गमछी से सब कुछ पोंछ कर साफ किया। हाथ-पाँव धोकर आया तो बदमिया थोड़ी शान्त पड़ी थी। लोटन बेतरह घबराया हुआ था। वह बार-बार झुककर देखता उसकी साँस चल रही थी। वह थोड़ा निश्चिन्त हो जाता। लेकिन बदमिया की हालत में सुधार नहीं था। वह रट-रट कर पेट को हाथ से दबाती और चीख उठती। उसने फिर उल्टी कर दी। लोटन की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। ऐसे में वह छोड़ कर कहीं जा भी नहीं सकता था। वह चुपचाप सिरहाने बैठ कर सारी रात बदमिया की साँस टोहता रहा। रात आँखों में ही कट गई।

आँगन के पास ही उसने खाल में महुए के चूरन वाला पानी डाल कर टाँग दिया था। नीचे गड्डे से उसका पानी चू रहा था। नीचे पोटली में छुरा-छूरी थी। वह चुपचाप खाल से रिसती बूँदों को देखता रहा उसका मन तरह-तरह की आशंकाओं से घिरा हुआ था। रह-रह कर उसके भीतर कुछ चिलकता और वह उत्तेजित हो उठता। उसके दिमाग में बवंडर समाया हुआ था। उसने बदमिया की ओर देखा वह चुपचाप गहरी नींद में लेटी हुई थी। उसकी साँस चल रही थी इसका अन्दाज उसने थोड़ी देर पहले ही किया था। अब सुबह देखेगा। रात बिल्कुल उतार पर थी। लोटन बुरी तरह उत्तेजित था। उसने बदमिया का चेहरा ध्यान से देखा उसकी आवाज सूखे पत्ते की तरह खरखरा रही थी।

“बदामो, बदामो! तू अच्छी हो जाएगी बदामो! हम कभी डाँगर नहीं चीरेंगे, हम वादा करते हैं बदामो! कभी नहीं चीरेंगे।”

लगता था लोटन पागल हो गया है! उसका गला भर्राया हुआ था और वह बुरी तरह थरथरा रहा था। रात बीत चुकी थी मगर सूरज के उगने में अभी देर थी। खेदू हैरान था। लोटन की आवाज में कोई उत्तेजना नहीं थी और उसका चेहरा बिल्कुल शान्त था। खाल चौकी पर एक किनारे रखी हुई थी। वह अब भी भींगी हुई थी लेकिन पानी नहीं रिस रहा था। लोटन ने ज़ोर देकर कहा

“बदमिया की लाश घर पर पड़ी है। खेदू भाई!” उसकी आवाज में पहले की तरह रिरियाहट एकदम नहीं थी। उसने पूरे विश्वास से कहा

“पैसे वह अगले डाँगर की खाल से जरूर चुका देगा।”

खेदू आँखें फाड़कर उसे अपलक निहारता रहा। वह चुपचाप वैसे ही शान्त खड़ा था।

